ગુજરાત રાજ્યના શિક્ષણવિભાગના પત્ર-ક્રમાંક
મશબ/1215/178/છ, તારીખ : 24-11-2016–થી મંજૂર

समाजशास्त्र

कक्षा 12

प्रतिज्ञापत्र

भारत मेरा देश है ।
सभी भारतवासी मेरे भाई–बहन हैं।
मुझे अपने देश से प्यार है और इसकी समृद्धि तथा बहुविध
परंपरा पर गर्व है।
मैं हमेशा इसके योग्य बनने का प्रयत्न करता रहूँगा।
मैं अपने माता–पिता, अध्यापकों और सभी बड़ों की इज्जत करूँगा–
एवं हरएक से नम्रतापूर्वक व्यवहार करूँगा।
मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने देश और देशवासियों के प्रति एकनिष्ठ रहूँगा।
उनकी भलाई और समृद्धि में ही मेरा सुख निहित है।

मूल्य : ₹ 26.00

गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल
'विद्यायन', सेकटर 10–ए, गांधीनगर–382 010

© गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर
इस पाठ्यपुस्तक के सर्वाधिकार गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के अधीन हैं।
इस पाठ्यपुस्तक का कोई भी भाग किसी भी रूप में गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के नियामक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

विषय-सलाहकार

डो. चंद्रिकाबहन रावल

लेखन संपादन

डो. सारिकाबहन दवे (कन्वीनर)

डो. आनंद के. आचार्य

डो. पंकजभाई पटेल

डो. शैलजाबहन ध्रुव

डो. भूपेन्द्रभाई जे. ब्रह्मभट्ट

डो. कौशिक आर. शुक्ल

डो. अजीतकुमार बी. पटेल

अनुवाद

श्री प्रमोद के. लोढा

श्रीमती निरुपमा पांडेय

समीक्षा

श्री जयंतिलाल जी. मेरजा

श्रीमती तरुलताबहन पटेल

भाषाशुद्धि

श्री राजेशसिंह एस. क्षत्रिय

संयोजन

डो. चिराग एच. पटेल
(विषय-संयोजक : भौतिक विज्ञान)

निर्माण-संयोजन

श्री हरेन शाह
(नायब नियामक : शैक्षणिक)

मुद्रण-आयोजन

श्री हरेश एस. लीम्बाचीया
(नायब नियामक : उत्पादन)

प्रस्तावना

राष्ट्रीय अभ्यासक्रमों के अनुसंधान में गुजरात माध्यमिक और उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षण बोर्ड ने नए अभ्यासक्रम तैयार किए हैं। ये अभ्यासक्रम गुजरात सरकार द्वारा मंजूर किए गए हैं।

गुजरात सरकार द्वारा मंजूर किए गए **कक्षा 12 समाजशास्त्र** विषय के नए अभ्यासक्रम के अनुसार तैयार की गई इस पाठ्यपुस्तक को विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल आनंद अनुभव कर रहा है।

इस पाठ्यपुस्तक का लेखन तथा समीक्षा विद्वान शिक्षकों और प्राध्यापकों से करवाई गई है। समीक्षकों के सुझावों के अनुरूप पांडुलिपि में योग्य सुधार करने के बाद यह पाठ्यपुस्तक प्रकाशित की गई है। गुजराती में लिखी गई मूल पाठ्यपुस्तक का हिन्दी अनुवाद है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक को रसप्रद, उपयोगी और क्षतिरहित बनाने के लिए मंडल ने पर्याप्त सावधानी रखी है। फिर भी शिक्षा में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों से पुस्तक की गुणवत्ता में वृद्धि करनेवाले सुझावों का स्वागत है।

पी. भारती (IAS)
नियामक
ता.16-11-2019

कार्यवाहक प्रमुख
गांधीनगर

प्रथम आवृत्ति : 2017 **पुनः मुद्रण :** 2018, 2020

प्रकाशक : गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, 'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर की ओर से पी. भारती, नियामक

मुद्रक :

मूलभूत कर्तव्य

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -*

(**क**) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(**ख**) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(**ग**) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(**घ**) देश की रक्षा करे और आवाहन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(**ङ**) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो; ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(**च**) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(**छ**) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(**ज**) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(**झ**) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(**ञ**) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले,

(**ट**) माता-पिता अथवा अभिभावक 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु के अपने बालक या पाल्य को शिक्षण के सुअवसर प्रदान करे।

***भारत का संविधान : अनुच्छेद 51-क**

अनुक्रमणिका

1.	भारत की जनसंख्या-विविधता और राष्ट्रीय एकता	1
2.	भारतीय संस्कृति और समुदाय	10
3.	अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग	23
4.	महिला सशक्तिकरण	36
5.	परिवर्तन की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ	47
6.	जनसंचार के माध्यम और समाज	57
7.	सामाजिक आन्दोलन	66
8.	भारत में पंचायती राज	73
9.	सामाजिक मानक भंग, बाल अपराध और युवा बेचैनी	84
10.	सामाजिक समस्याएँ	94
●	परिशिष्ट-1 से 3	108

इस पाठ्यपुस्तक के बारे में...

गुजरात सरकार द्वारा स्वीकृत किए गए समाजशास्त्र विषय की कक्षा -11 के बाद कक्षा 12 के नए पाठ्यक्रम के अनुसार तैयार की गई इस पाठ्यपुस्तक के लेखन कार्य का जो हमें अवसर मिला है, इसके लिए हम हर्ष और गौरव का अनुभव करते हैं।

भारतीय समाज और उसके विविध पक्षों तथा समस्याओं आदि को विद्यार्थी जानें और समाज को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझें यह हमारा मुख्य उद्‌देश्य है। विश्व में भारतीय समाज जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद द्वितीय स्थान पर है। परंतु विद्यार्थी को इसमें रही वैविध्यता के साथ एकता की नई राह दिखाती है। भारतीय संस्कृति और विविध समुदाय जैसे कि ग्रामीण, नगर और आदिवासी आदि के बारे में विद्यार्थी जानकारी प्राप्त करे यह आवश्यक है। भारत में पाई जानेवाली धार्मिक विविधता सर्वधर्म समभाव की ओर ले जाती है।

जाति आधारित स्तर रचना भारतीय सामाज की विशेषता है। विद्यार्थी भारत और गुजरात में पाई जानेवाली विविध जाति समूहों जैसे कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों की जानकारी प्राप्त करके सरकार की ओर से मिलते विविध लाभ, कल्याणकारी योजनाओं और कार्यक्रमों को जानेंगे तो उनके जीवन में जरूर उपयोगी होगा।

भारत में स्त्री सशक्तिकरण की प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इसके विषय में वैज्ञानिक जानकारी समाज के संतुलित विकास में अवश्य उपयोगी होगी। इसके लिए परिवर्तन और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से विद्यार्थियों को परिचित करवा रहे हैं। वर्तमान समय में जनसंचार के माध्यम इसमें अधिक प्रभावशाली बने हैं। समाज में अपने अधिकारों के विषय में चेतना बढ़ी है और यदि मानव अधिकार न मिले तो भिन्न-भिन्न प्रकार के आंदोलन भी होते हैं। समाज में सुधार और क्रांति के लिए आंदोलनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

भारत ग्रामीण समुदायों का बना देश है। ग्रामीण समुदाय के सामाजिक विकास और नेतृत्व के लिए पंचायती राज की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना, इसके सामाजिक प्रभाव आदि की जानकारी से विद्यार्थी भविष्य में ग्रामीण विकास के लिए कटिबद्ध बनेंगे।

भारत में युवा मानक भंग का आचरण न करे, उनकी विविध समस्याओं के विषय में वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध हो इस उद्‌देश्य से बाल अपराध, युवा बेचैनी, असमान लिंगानुपात, एच. आई. वी. एड्स, नशीले पदार्थों का सेवन आदि समस्याओं का पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया है।

समाजशास्त्र विषय को रुचिकर बनाने के लिए आवश्यक उदाहरणों, चित्रों सहित इकाइयों के अंत में स्वाध्याय तथा प्रवृतियाँ भी दी गई हैं। हम सबको विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगी इतना ही नहीं भविष्य के अध्ययन और जीवन-मिर्माण के लिए भी सहायक हो सकती है। इस पुस्तक के लिए आपके सुझावों का स्वागत है।

लेखक

1 भारत की जनसंख्या-विविधता और राष्ट्रीय एकता

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, कक्षा-11 की समाजशास्त्र के पाठ्यपुस्तक में आपने समाजशास्त्र और उनके कई पहलुओं की जानकारी प्राप्त की है। अब आप सबको जानकारी प्राप्त हो गई है कि भारतीय समाज को समझने के लिए भारत की जनसंख्या के स्वरूप की जानकारी आवश्यक है जिसमें से आपको बहुत सारी सूचना उपलब्ध होती है। भारतीय समाज को समझने के लिए अनेक सामाजिक संस्थाओं की जानकारी भी आवश्यक है। इन सभी संस्थाओं में विभिन्नता के साथ एकता भी है। जो भारतीय समाज का प्रमुख लक्षण है।

विद्यार्थी मित्रो, अपने वर्गखण्ड में यदि आप अवलोकन करेंगे तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक की धर्म और जाति भी अलग है। इस तरह की धार्मिक विविधता अपने देश में है, फिर भी भारत एक अखण्ड राष्ट्र है।

भारतीय समाज में पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण प्रत्येक क्षेत्र में लोगों का रहन-सहन, जीवन-शैली, पहनावा, आर्थिक प्रवृत्ति, रीति-रिवाज, उत्सव, त्योहार, भाषा, तीर्थस्थल इत्यादि में अनेक प्रकार की सांस्कृतिक विविधता दिखाई देती है। यह सांस्कृतिक विविधता और विरासत हमको भारत का नागरिक होने का गौरव प्रदान कराती है। आपको इन सभी विषयों को इस पाठ में समझाने का प्रयत्न करेंगे।

सर्वप्रथम हम जनसंख्या का अर्थ समझेंगे।

जनसंख्या का अर्थ

समाज की निरंतरता के लिए जनसंख्या आवश्यक है। समाज में व्यक्तियों की संख्या अर्थात् जनसंख्या को मानव निवास कहा जाता है मानव बगैर समाज नहीं हो सकता, समाज को अपना अस्तित्व और निरन्तरता बनाए रखने के लिए जनसंख्या की सुरक्षा करना अनिवार्य है। जनसंख्या की सुरक्षा यह समाज की प्राथमिक और सार्वभौमिक सामाजिक आवश्यकता है। जन्म, मृत्यु और स्थानन्तरण पर जनसंख्या का आकार निर्भर है।

जनसंख्या का आकार और संरचना समाज पर प्रभाव डालता है। जनसंख्या की संरचना को जनसंख्या का स्वरूप भी कहा जाता है। जिसमें उम्र का समूह, लिंगानुपात, ग्रामीण शहरी अंतर, साक्षरता इत्यादि जैसे विषयों का समावेश होता है। धर्म, भाषा, जातिगत स्तरवाली रचना इत्यादि आधारित जनसंख्या विषयक आंकड़े समाज जीवन को प्रभावित करते हैं। जनसंख्या और समाज पारस्परिक रूप से संबंधित है।

जनसंख्या में विविधता

किसी भी देश के समाज में जनसंख्या की विविधता दिखाई देती है। उदाहरण स्वरूप उम्र समूह, लिंग अनुपात, ग्रामीण-शहरी साक्षरता अनुपात, धार्मिक समूह, भाषाकीय समूह, अनेक जातियों का समूह, जन्मदर, मृत्युदर स्थानान्तरित लोगों का अनुपात इत्यादि।

जनसंख्या की विविधता पर से किसी भी समाज की आर्थिक समृद्धि की जानकारी प्राप्त की जा सकती है इस कारण से आयोजन और विकास में जनसंख्या विषयक आंकड़े आवश्यक होते हैं।

स्थानीय स्तर से लेकर विश्वस्तर तक जनसंख्या के प्रत्येक क्षेत्र में विविधता दिखाई देती है। हम यहाँ पर उनके कई मुद्दे ज्ञात करने का प्रयास करेंगे। विशेषकर भारत और गुजरात के सन्दर्भ में देखेंगे।

धार्मिक विविधता

विद्यार्थी मित्रो, हम सभी जानते हैं कि भारत विविधताओं से भरा हुआ देश है इस विविधता में धार्मिक विविधता भी दिखाई देती है। विश्व के प्रमुख धर्मों के नागरिक भारत में निवास करते हैं। प्रत्येक धर्म की अपनी आचार संहिता होती है। उसी प्रकार धार्मिक स्थानों, धर्म ग्रन्थों, धार्मिक त्योहारों - व्रतों के आधार पर जीवन शैली बनती है।

भारत के सभी धर्मों में भाईचारे की भावनाओं से युक्त संदेश दिया गया है। धार्मिक विविधता के कारण हम सभी भारतीय प्रत्येक धर्म के रीति-रिवाजों को जानते हैं इतना ही नहीं, प्रत्येक धर्म के त्योहार में भाग लेकर के एकता की भावना दिखाते हैं।

भारत और गुजरात में अलग-अलग धर्म पालन करनेवाले लोगों का प्रतिशत देखेंगे :

भारत और गुजरात में अलग-अलग धर्म पालन करनेवाले लोगों का अनुपात (प्रतिशत) : 2011

		अनुपात	
क्रम	**धर्म**	**भारत**	**गुजरात**
1.	हिन्दू	79.80	88.57
2.	इस्लाम	14.23	9.67
3.	ईसाई	2.30	0.52
4.	सिक्ख	1.72	0.10
5.	बौद्ध	0.70	0.05
6.	जैन	0.37	0.96
7.	कोई धर्म नहीं	0.24 (नगण्य)	0.10
8.	अन्य	0.66	0.03

(संदर्भ : जनगणना - भारत सरकार - 2011)

उपर्युक्त सारणी पर से ज्ञात कर सकते हैं कि भारत में हिन्दुओं की जनसंख्या सबसे अधिक है। इस कारण से उसे बहुसंख्यक समुदाय भी कहा जाता है। लघुमति समुदायों के बीच मुस्लिमों की जनसंख्या अधिक है। 'कोई धर्म नहीं है' में ऐसे लोगों का समावेश होता है जो किसी भी धर्म में विश्वास नहीं करते हैं।

गुजरात के आँकड़े की तरफ नजर करें तो उसमें भी लगभग भारत के धार्मिक आँकड़े जैसी स्थिति दिखाई देती है। हिन्दुओं की जनसंख्या सर्वाधिक और अल्प संख्यकों में, मुस्लिमों की जनसंख्या सबसे अधिक देखने को मिलती है।

विद्यार्थी मित्रो, शैक्षणिक वर्ष के दौरान आप सभी धर्म आधारित सार्वजनिक छुट्टियों का आनन्द लेते होंगे? यही धार्मिक एकता सिद्ध करता है।

स्त्री-पुरुष अनुपात की विविधता :

किसी भी समाज का आकार समझने के लिए स्त्री-पुरुष अनुपात की आवश्यकता पड़ती है। समाज के अभिन्न अंग के समान स्त्री-पुरुष की जनसंख्या विषयक सूचना उस समाज के संतुलित जनसंख्या का निर्देश करती है। अर्थात् किसी भी देश में स्त्री-पुरुष का सन्तुलित अनुपात होना चाहिए। इस अनुपात में असन्तुलन होने पर जनसंख्या आधारित कई प्रश्न उभरकर आते हैं।

भारत जैसे विकासशील देश उसी प्रकार गुजरात जैसे गतिशील राज्य में स्त्री-पुरुष के अनुपात को देखें :

भारत और गुजरात की जनसंख्या में स्त्री-पुरुष अनुपात - 2011

देश/राज्य	**कुल जनसंख्या (प्रतिशत)**	**पुरुष**	**स्त्री**
भारत	121,01,93,422 (100%)	62,37,24,248 (51.51%)	58,64,69,174 (48.49%)
गुजरात	6,04,39,692 (100%)	3,14,91,260 (52.10%)	2,89,48,432 (47.90%)

(संदर्भ : जनगणना - भारत सरकार - 2011)

कोष्ठक पर से कहा जा सकता है कि भारत एक अधिक जनसंख्या वाला देश है जिसमें स्त्री-पुरुष के अनुपात में असमानता दिखाई देती है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अनुपात कम है।

गुजरात में स्त्री–पुरष अनुपात में राष्ट्रीय अनुपात की तरह ही अंतर दिखाई देता है।

विद्यार्थी मित्रो, आप सभी जानते हैं कि प्रति हजार पुरुषों के अनुपात में स्त्रियों की संख्या कितनी है इस आधार पर से लिंग अनुपात (Sex Ratio) जाना जा सकता है या ज्ञात किया जा सकता है। भारत के अलग–अलग राज्यों में मिलनेवाला लिंग अनुपात परिशिष्ट–1 में दिखाया गया है।

परिशिष्ट–1में दिखाए अनुसार 2011 की जनगणना के आधार पर भारत में औसत लिंग अनुपात 940 है। सर्वाधिक लिंग अनुपात केरल राज्य का 1084 है। सबसे कम लिंग अनुपात दमन और द्वीव केन्द्र शासित प्रदेश में 618 है। गुजरात में इसका अनुपात 918 है।

भारत में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तरप्रदेश है। जिममें देश की कुल जनसंख्या के 16.49 प्रतिशत लोग निवास करते हैं। जबकि सबसे कम जनसंख्या वाला राज्य उत्तराखण्ड है। जिसमें देश की कुल जनसंख्या के 0.84 प्रतिशत लोग निवास करते हैं।

सांस्कृतिक विभिन्नता :

विश्व में समन्वय और निरन्तरता का उत्तम उदाहरण अर्थात् भारतीय संस्कृति। इतिहास पर नजर डालें तो मोहन–जो–दड़ो और हड़प्पा की सभ्यता से लेकर वर्तमान समय में भारतीय समाज सांस्कृतिक विविधता से भरा हुआ है। ऋग्वेद काल, उत्तरवेद काल, मध्यकाल, अंग्रेजी शासन, स्वतन्त्रता के प्रत्येक चरण में सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्रखर रही हैं। अनेक चरण में शासकों के शौक, व्यापार या प्रशासनिकरूप से आए हुए अनेक समुदायों की जीवन शैली के कारण भारत में परम्परा से आधुनिक समय तक भातिगण संस्कृति हमेशा अंकुरित रही है।

भारत में उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम अर्थात् कश्मीर से कन्याकुमारी और कोलकाता से कच्छ सम्पूर्ण भारत की सीमाओं को लेकर ऐसे विस्तृत क्षेत्रफल में प्रादेशिकता के आधार पर सांस्कृतिक विविधता दिखाई देती है। प्रदेशानुसार संस्कृति अपनी विशेष छबि रखती है। साथ ही अन्य संस्कृति में सहभागी होने का प्रयास करती है। इस कारण से सांस्कृतिक एकता दृढ़ होती है। भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता देश–विदेश में प्रसिद्ध है।

सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक विविधता में उत्सव, आहार, परिधान, जीवन–निर्वाह की शैली भाषा इत्यादि अनेक रूपों में देख सकते हैं। जो निम्नलिखित हैं :

उत्सव : सम्पूर्ण भारत के राज्य और केन्द्रशासित प्रदेशों में प्रत्येक प्रदेश के त्योहार और उत्सव खूब उत्साह से मनाए जाते हैं। दीपावली, होली, दशहरा, ईद–उल–फितर, क्रिसमस, नवरोज (पतेती), गुरुपर्व इत्यादि धार्मिक त्योहारों के पश्चात्, कृषि की फसलों की खुशी पर आधारित उत्सव, असम में बिहु, तमिलनाडु का पोंगल, केरल का ओणम, उत्तर भारत में बैशाखी इत्यादि में लोग उत्साह से भाग लेते हैं। बुद्धपूर्णिमा और महावीर जयंती का पर्व भी उत्साह से मनाते हैं।

भाषा : भारत में भाषा तथा उसी प्रकार बोलियों में भी तो विविधता है, क्या आप नहीं जानते ? हम सभी जानते हैं कि भारत में 22 भाषाओं को संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। जिनमें असमी, बंगाली, बोडो, डोंगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओडिशी, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु, उर्दू इत्यादि भाषा का समावेश होता है।

भाषा संस्कृति की रक्षा करती है साथ ही भाषा की विविधता भारत की अग्रिम पहचान है। विद्यार्थी मित्रो, आप ये भी जानते होंगे कि अलग–अलग भाषाओं के साथ बोलियाँ भी हैं, कहावत है कि 'बारह कोस के बाद बोली बदलती है।'

परिधान (पहनावा) : भारतीय परिधान में भी विविधता दिखाई देती है। परिधान से प्रादेशिक पहचान प्राप्त होती है। उदाहरण, पंजाब की पंजाबी एवं गुजरात की गुजराती साड़ी की शैली ,प्रदेश का परिचय देती है। इसी प्रकार धर्म आधारित परिधान भी सांस्कृतिक विविधता में वृद्धि करता है। उदाहरण में बुरखा, रिछा, पगड़ी इत्यादि।

भोजन : प्रदेशानुसार अन्न उत्पादन का प्रभाव भोजन पर पड़ता है वह स्वाभाविक भी है। समुद्र के किनारे पर चावल और मछली सरलता से मिलती है। इसलिए समुद्र के किनारे के लोगों का भात और मछली मुख्य भोजन होता है। प्रादेशिक भोजन विविधता पैदा करता है। उदाहरण में पंजाबी, गुजराती, साउथ इंडियन फूड इत्यादि। धार्मिक विचारधारा भी भोजन में विविधता लाती है। जैसेकि जैन भाजीपांव, स्वामीनारायण थाली। अब तो प्रादेशिक आहार वैश्विक पहचान बनाती है, ऐसा कह सकते हैं।

जीवन निर्वाह की विधि : धन प्रप्ति के द्वारा मनुष्य अपनी तथा परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। जीवन निर्वाह की अनेक विधि है। व्यक्ति स्वयं के कौशल द्वारा रोजी–रोटी प्राप्ति का प्रयत्न करता है। रोजगारलक्षी कौशल के कारण व्यक्ति एक जगह से दूसरी जगह जाता है। यह स्थानान्तरण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संस्कृति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता। सांस्कृतिक विविधता में वृद्धि करता है। साथ ही साथ राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करता है।

इस प्रकार, भौगोलिक एवं सामाजिक रूप से होनेवाला सांस्कृतिक हस्तान्तरण जनसंख्या पर प्रभाव डालता है। तो इसके विपरीत जनसंख्या विषयक सूचना भौगोलिक और सामाजिक परिस्थिति की तरफ ध्यान केन्द्रित करके, उस प्रदेश की विविधता की विशेष सूचना एकत्रित करने के लिए प्रेरित करती है।

गुजरात का गरबा या पतंगोत्सव वैश्विकस्तर पर सांस्कृतिक विविधता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आदिवासी : स्वतन्त्रता, समानता, बंधुत्व, धर्म निरपेक्षता के मूल्यों से युक्त संविधान समाज के प्रत्येक नागरिक को मूलभूत अधिकार प्रदान करता है। साथ ही साथ समाज के वंचित समूहों के लिए विशेष व्यवस्था करके उनके उत्थान के लिए प्रयत्न करता है।

इन वंचित समूह को विशेषतया तीन श्रेणी में विभाजित किया गया है :

(1) अनुसूचित जाति (SC - Schedule Caste)

(2) अनुसूचित जनजाति (ST - Schedule Tribes)

(3) अन्य पिछड़ी जातियाँ (OBC - Other Backward Class)

विद्यार्थी मित्रो, आदिवासियों को अनेक नामों से जाना जाता है। लेकिन उनका संवैधानिक रूप से अनुसूचित जनजाति के रूप में उल्लेख किया गया है। पाठ–2, पाठ–3 में हम आदिवासियों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे। यहाँ पर उनकी जनसंख्या के विषय में सूचना प्राप्त करेंगे।

भारत में आदिवासियों की जनसंख्या का अनुपात :

भारत में 1951 और 2011 में आदिवासियों का अनुपात निम्नलिखित है :

भारत में आदिवासियों की जनसंख्या का अनुपात

वर्ष	आदिवासियों की जनसंख्या	कुल जनसंख्या में आदिवासियों जनसंख्या का प्रतिशत
1951	1,91,47,054	2.26
2011	10,42,81,034	8.60

(संदर्भ : जनगणना विवरण - 1951, 2011)

उपर्युक्त सारिणी से ज्ञात कर सकते हैं कि 1951 में आदिवासियों की जनसंख्या 2.26% थी 2011 में जनसंख्या बढ़कर 8.60% हो गई है।

भारत में राज्यवार अनुसूचित जाति की जनसंख्या :

भारत के अधिकांश राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में कम या अधिक प्रमाण में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या मिलती है। प्रत्येक राज्य की अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या परिशिष्ट - 2 में देख सकते हैं।

भारत में राज्यवार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या (2011) देखें तो सर्वाधिक अनसूचित जाति की जनसंख्या केन्द्रशासित प्रदेश मिजोरम में (94.97%) मिलती है। जबकि सबसे कम अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या उत्तरप्रदेश राज्य में (0.57%) मिलती है।

भारत में नागालैण्ड, मिज़ोरम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, दादरानगर हवेली तथा लक्षद्वीप में अधिक मात्रा में आदिवासी जनसंख्या निवास करती है।

गुजरात में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या :

गुजरात में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या प्रत्येक जिले में कम या अधिक मात्रा में मिलती है। जिसे परिशिष्ट–3 में देख सकते हैं।

गुजरात में जिलावार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या (2011) के आधार पर सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या वाला डाँग जिला (94.65%) है। जबकि सबसे कम जनसंख्या वाला जिला भावनगर (0.32%) है।

गुजरात में लगभग प्रत्येक जिले में कम-अधिक मात्रा में अनुसूचित जनजाति निवास करती है, फिर भी राज्य के पूर्वी छोर पर अधिक जनसंख्या निवास करती है।

राष्ट्रीय एकता

विद्यार्थी मित्रो, भारत भाषा, धर्म, पोशाक, जीवन शैली लिंग अनुपात इत्यादि की विविधता में एकता रखनेवाला देश है वह आप देख चुके हैं, अब हम राष्ट्रीय एकता के बारे में सूचना प्राप्त करेंगे।

भारतीय उपखण्ड अनेक विविधता से पूर्ण उपखण्ड है। यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक भौगोलिक, धार्मिक, भाषाकीय, प्रादेशिकता इत्यादि मुद्दों पर विविधता दिखाई देती है। इन विभिन्न उपसमूहों के बीच आपस मे सहयोग एवं प्रेमयुक्त सम्बन्ध हो यह आवश्यक नहीं बल्कि अनिवार्य है। भारत के नागरिक आपस में तथा सम्पूर्ण देश के प्रति वफादार हों, यह अनिवार्य है। समस्त भारतीय राष्ट्र के ध्येय को अपना व्यक्तिगत ध्येय माने यह राष्ट्रीय एकता के लिए महत्वपूर्ण है। भारतीय समाज की प्रगति में आजकल संप्रदायवाद, आतंकवाद, जातिवाद, नक्सलवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, विभाजनवाद जैसी अनेक समस्याएँ चुनौतीपूर्ण हैं। इन समस्याओं का समाधान करके राष्ट्रीय एकता प्रस्थापित करना आवश्यक है। इस राष्ट्रीय एकता का अर्थ और उसके सहायक कारकों को समझेंगे।

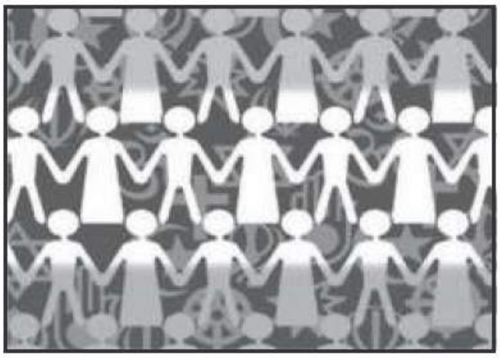

राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता की परिभाषा

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नहेरू ने राष्ट्रीय सम्मेलन में राष्ट्रीय एकता के लिए बताया था कि ''राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा सभी के हृदय में एकता की भावना, समान नागरिकता का अनुभव और राष्ट्र के प्रति निष्ठा और प्रेम की भावना का विकास कर सके।''

जी. एस. धूर्ये राष्ट्रीय एकता को एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक प्रक्रिया के रूप में समझाते हुए लिखते हैं कि ''राष्ट्र के लोगों में एकता, दृढ़ता, संबंध की भावना निहित है। जिसमें लोगों के हृदय में साधारण नागरिक की भावना तथा वफादारी की भावना जुड़ी है।''

विनोबा भावे के मतानुसार ''राष्ट्रीय एकता यह भावनात्मक एकता, भाईचारा और देश प्रेम की दृढ़ भावनाएँ हैं, जो देश के समस्त नागरिकों को अपनी व्यक्तिगत, प्रादेशिक, धार्मिक और भाषाकीय विविधताओं को भूलने में सहायता करती हैं।''

राष्ट्रीय एकता में सहायक कारक

राष्ट्रीय एकता के सहायक कारक निम्नलिखित हैं :

(1) भौगोलिक कारक :

भारत में राजनीतिक एकता का दर्शन और ज्ञान भारत के ऋषि मुनियों और राजाओं द्वारा दर्शित थे। संस्कृत साहित्य में, ऋग्वेद में भारत की राजनीतिक एकता की समझ अभिव्यक्त होती है। भारतवर्ष चक्रवर्ती, एकाधिपति जैसे नाम भौगोलिक एकता का आदर्श बताते हैं। भारत वर्ष के धार्मिक मंदिर, पवित्र नदियों और पहाड़ों से भरे हैं। उनके दर्शन और स्नान की महिमा बनी रहे इस कारण से इन सभी स्थलों का विकास यात्राधाम के लिए हुआ। धर्म स्थलों की यात्रा की संस्कृति, रमणीय और हवाखोरी के स्थल हमेशा भारत वासियों को भारत वर्ष में विविध प्रदेशों के पर्यटन करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इससे भौगोलिक, राजनीतिक एकता मजबूत होती है। लोग मातृभूमि के प्रति प्रेम, देशभक्ति अभिव्यक्त करते हैं। भौगोलिक दृष्टि से भारत की सीमाएँ उत्तर में कश्मीर और हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी, पूरब में असम-मणिपुर से लेकर पश्चिम में गुजरात तक फैली है। सम्पूर्ण भारत 32,87,263 लाख वर्ग किमी वाले विशाल क्षेत्र में फैली है। इस विशाल भूभाग में 121 करोड़ जनसंख्या वाला जनसमूह इस देश में निवास करता है। मैदानी क्षेत्र, पहाड़, नदी, समुद्र, जंगल और मरुस्थल जैसी भौगोलिक विशेषताओं वाला यह अपना भारत देश है।

ऐतिहासिक रूप में छोटे-छोटे राज्यों में बँटा भारत, एक देश के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की है। भौगोलिक विविधता ने लोगों में अलग-अलग परिस्थितियों में अनुकूल होने और आपस में मेलभाव रखकर एकता बनाए रखना सिखाता है। अकाल, बाढ़, आँधी-तूफान के बाद भूकम्प जैसे प्राकृतिक आपदा में विविध प्रदेश, विविध जातियाँ, विविध भाषा, विविध धर्म के लोग आपसी मदद और फंड देकर विविधता में एकता का दर्शन करवाते हैं।

(2) भारत का संविधान

इतने बड़े विविधता पूर्ण देश में राष्ट्रीय एकता का निर्माण करने के लिए कोई जमीनी परिबल (कारक) है तो वह भारत का संविधान है। भारत अनेक राज्यों का संघ है। इन संघ राज्यों को जोड़ते हुए कोई लिखित दस्तावेज है तो वह संविधान है। भारत के संविधान के प्रस्तावना में भारत एक सार्वभौम, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष लोकतांत्रिक और प्रजा तन्त्रीय राज्य है। इस राज्य की नींव न्याय, स्वतन्त्रता और समानता है। भारत के संविधान में समानता के अधिकार में धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थल के कारण से भेदभाव के ऊपर नियम द्वारा प्रतिबन्ध लगाया गया है। भारत का संविधान सभी नागरिकों को व्यक्ति के गौरव तथा राष्ट्रीय एकता और अखण्डता प्रतिबद्धता देते हुए उनके भाईचारे का भाव दृढ़ बनाता है। भारत का संविधान भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य के रूप में स्वीकार करता है अर्थात् भारत राज्य का कोई धर्म नहीं है। सभी धर्मों के लिए समान आदर और रक्षण प्रदान करता है। सभी नागरिकों को स्वतंत्र रूप से धर्म को मानना तथा पालन करना और उसके प्रचार का अधिकार संविधान देता है। भारत में किसी भी जगह पर निवास करनेवाले और भाषा लिपि अथवा संस्कृति रखनेवाले अल्पसंख्यक समूहों को इन सभी की रक्षा के लिए संविधान ने अधिकार दिया है ये सभी अधिकार राष्ट्रीय एकता के विकास में प्राथमिक भूमिका निभाते हैं।

(3) नागरिक के कर्तव्य

भारत के नागरिकों के कर्तव्य में भी राष्ट्रीय एकता निर्देशित होती है। जैसेकि

- राष्ट्र के प्रति वफादारी रखना और उनके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करना।
- स्वतन्त्रता के लिए लड़ाई की प्रेरणा देनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय से सम्मान देना तथा उसका पालन करना है।
- भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता का संवर्धन करके उसकी रक्षा करना है।
- देश की रक्षा के लिए योगदान देना और राष्ट्रीय सेवा प्रदान करना है।
- धार्मिक, भाषायी, प्रादेशिक अथवा साम्प्रदायिक भेद से दूर रहना।
- भारत के सभी लोगों में प्रेम और समान भाईचारा की भावना में वृद्धि करना।
- महिलाओं के गौरव को सम्मानित करे ऐसा व्यवहार करना।

ये नागरिक कर्तव्य राष्ट्रीय एकता के निर्माण में जमीनी भूमिका रखते हैं।

(4) नियम

भारतीय फौजदारी कानून जैसे जाति धर्म या सम्प्रदाय के संघर्ष प्रोत्साहन निषेधक कानून राष्ट्रीय एकता के लिए विघातक आक्षेप लगाकर राजद्रोह निषेधक कानून, अस्पृश्यता निवारण चुनाव आचार संहिता का पालन और उल्लंघन हेतु सजा का डर भी राष्ट्रीय एकता बनाए रखने में सहायक होता है।

(5) **लोकतान्त्रिक व्यवस्था (लोकशाही प्रणाली)**

भारत की लोकशाही शासन व्यवस्था राष्ट्रीय एकता के लिए सहायक परिबल है। भारत की लोकशाही व्यवस्था बनाए रखने के लिए संसद, विधानसभा जैसे गृहों का चुनाव उसी प्रकार स्थानीय स्वराज पंचायत और नगर निगमों का चुनाव का प्रबन्ध किया जाता है। इन चुनावों में देश के 18 वर्ष से अधिक किसी भी नागरिक को मतदान का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार से प्राप्त समान मतदान अधिकार यह राष्ट्रीय एकता के लिए अति आवश्यक परिबल है। यह अधिकार व्यक्ति के धर्म, जाति, भाषा, प्रदेश से ऊपर उठ करके प्राप्त होता है। अर्थात् व्यक्ति समान नागरिकता का अनुभव कर सकता है साथ ही साथ किसी भी चुनाव के लिए स्वयं की उम्मीदवारी प्राप्त करने का अधिकार रखता है। अर्थात् किसी भी राष्ट्रीय पक्ष या विपक्ष द्वारा किसी भी क्षेत्र का नेतृत्व भी कर सकता है। ये राष्ट्रीय पक्ष भी अपने पक्ष में नेता, कार्यकर्ता और मतदाताओं को आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। इन राष्ट्रीय पक्षों की विचारधारा में अन्तर हो लेकिन उनका अन्तिम उद्देश्य किसी भी जाति, सम्प्रदाय, धर्म,

प्रदेश के मतदाताओं को आकर्षित करने का प्रयास करना है। इस कारण से ये राष्ट्रीय पक्ष एक प्रकार की राष्ट्रीय एकता लाने में प्रेरणा प्रदान करते हैं। इस प्रकार देश की संसद, विधान सभा एवं स्थानीय स्वराज की संस्थाएँ लोकशाही व्यवस्था की राष्ट्रीय एकता बनाने में महत्वपूर्ण परिबल हैं।

(6) राष्ट्रीय पर्व और राष्ट्रीय पदक (सम्मान)

गणतन्त्र दिवस, स्वतन्त्रता दिवस जैसे राष्ट्रीय पर्व को मनाने के लिए प्रस्तुत किए जानेवाले सांस्कृतिक कार्यक्रम और भारत की विविध सेना का परेड अद्भुत राष्ट्रीय एकता का प्रदर्शन करते हैं। भारतीय फिल्म उद्योग, राष्ट्रीय फिल्म समारोह, राष्ट्रीय स्मारकों एवम् उद्यानों में राष्ट्रीय एकता की झलक मिलती है। विद्यालय एवं कॉलेजों में स्काउट, राष्ट्रीय सेवा योजना (NSS) एवं नेशनल कैडेट कोर (NCC) जैसी प्रवृतियों की अनेक शिबिरों में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय एकता का सन्देश मिलता है। उसी प्रकार भारतरत्न, पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण जैसे नागरिक एवार्ड, राजीव गाँधी खेलरत्न, द्रोणाचार्य, अर्जुन, ध्यानचन्द जैसे खेल एवार्ड, परमवीरचक्र, महावीरचक्र, वीर चक्र, अशोकचक्र, कीर्तिचक्र, शौर्यचक्र जैसे भारतीय सेना के एवार्ड, बहादुरी साहित्य इत्यादि विविध सर्वोच्च एवार्ड भी देश की सेवा के बदले में दिया जाता है। कुछ विशिष्ठ व्यक्तियों जैसेकि कलाकारों, वैज्ञानिकों, सैनिकों, शिक्षकों एवं समाजसेवकों का सम्मान करके लोगों में राष्ट्रीय चेतना पैदा की जाती है।

(7) खेलकूद की प्रवृत्तियाँ

भारत या भारत के बाहर खेले जानेवाली खेलों में क्रिकेट, हॉकी, वालीबॉल, टेनिस, बैडमिन्टन, कबड्डी इत्यादि में सम्पूर्ण भारत से प्रतिनिधित्व करते समय खिलाड़ी भाषा, प्रदेश या धर्म से ऊपर उठकर एक भारतीय के रूप में प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय खेल महोत्सव, अन्तरप्रदेशीय या अन्तरविश्वविद्यालयों के खेलकूद या विविध टीमखेल, खेल महाकुम्भ में, अनेक खेलों में भी भारतीय रूप में रहकर खेलदिली भावना से खेलते हैं। भारत मे क्रिकेट खेल के प्रति गहरा प्रेम है। उसमें भी अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विजयी होने पर सम्पूर्ण भारत विजय की खुशी मनाता है। इस प्रकार अनेक खेल-कूद राष्ट्रीय एकता में सहायता प्रदान करते हैं।

(8) **जनसंचार के माध्यम**

जन संचार के साधन जैसे समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, संगणक (कम्प्यूटर), सेलफोन इत्यादि राष्ट्रीय एकता निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। दूरदर्शन धार्मिक एकता, सर्वधर्म समभाव, देशभक्ति इत्यादि को लक्ष्य में लेकर धारावाहिक, चलचित्र, समूह गीत, समूह नृत्य इत्यादि कार्यक्रम तथा स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस का पर्व अनेक कार्यक्रमों द्वारा नागरिकों में राष्ट्र प्रेम की प्रेरणा प्रदान करते हैं। आतंकवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, भाषावाद, प्रदेशवाद या नक्सलवाद जैसी समस्याओं को धारावाहिक, फिल्म या समाचार जैसे कार्यक्रम में लेकर देश के नागरिकों को सत्य का ज्ञान कराते हैं। देश के नागरिकों की मनोबल राष्ट्रप्रेम की तरफ करते हैं। इस प्रकार संचार के माध्यमों में प्रकाशित एवं प्रसारित होनेवाले कार्यक्रम नागरिकों में जागरूकता पैदा करते हैं। यह जागरूकता परोक्ष रूप में राष्ट्रीय एकतानिमार्ण में सहायक होती है।

(9) **यातायात के साधन**

भारत भौगोलिक सांस्कृतिक अनेकता वाला राष्ट्र है। लेकिन यातायात के साधनों ने इन सभी को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन साधनों के कारण प्रादेशिक विविधतावाले लोगों के मध्य लेन-देन सरल बना है। इससे एक राष्ट्र के नागरिक होने की भावना मजबूत होती है। संसार का सबसे लम्बा रेलवेतन्त्र (1,15,000 किमी) भारतीय रेल है। प्रतिदिन 2.3 करोड़ यात्री यात्रा करते हैं। जो भारत के सभी क्षेत्रों को जोड़ता है। इसी प्रकार हवाई सेवा द्वारा भी बड़े शहर जुड़े, इससे यातायात की गति तीव्र हुई है। वर्तमान समय में नौकरी, व्यापार, रोजगार, शिक्षा तथा पर्यटन के लिए देश के नागरिक यातायात के साधनों द्वारा एक दूसरे के निकट आते हैं और परोक्ष रूप से राष्ट्रीय एकता में सहयोगी बनते हैं।

(10) **परस्परावलंबन और संयोगीकरण**

आधुनिक खेती, उद्योग, व्यवसायिक सेवा जैसी आर्थिक क्रियाकलापों में यंत्र विज्ञान का उपयोग होने के कारण जातिगत व्यवसाय में कमी, गाँव, शहर तथा अन्य क्षेत्रों में बढ़ रही है। सामाजिक सांस्कृतिक शैक्षणिक परिबल

के कारण ग्रामीण संयोगीकरण के बदले सम्पूर्ण राष्ट्र के शहरों या प्रदेशों के साथ संयोगीकरण के लिए कदम मिलाना पड़ रहा है। इस कारण से अस्पृश्यक जातिवाद तथा सम्प्रदायवाद का क्रम टूटने लगा है। वर्तमान समय में कई व्यवसाय ऐसे हैं, जिनमें हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदाय परस्पर अवलम्बित दिखाई देते हैं। उससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय एकता की भूमिका का निर्माण होता है।

विद्यार्थी मित्रो, इस पाठ में आप सभी ने जनसंख्या विविधता और राष्ट्रीय एकता का ज्ञान पाया। राष्ट्रीय एकता के सहायक परिबलों की सूचना प्राप्त करके भारतीय संस्कृति के विषय में ज्ञान प्राप्त किए।

अनेक समुदायों में दिखाई देनेवाली एकता और अखण्डता भारत की महत्वपूर्ण बात है। उस सन्दर्भ में अब अगले पाठ में भारतीय संस्कृति और समुदाय के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नालिखित प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर लिखिए :

(1) भारत की सांस्कृतिक विविधता बताइए।

(2) भारत की धार्मिक विविधता का वर्णन कीजिए।

(3) राष्ट्रीय एकता का अर्थ समझाइए उसके सहायक परिबल का वर्णन कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) भारत और गुजरात 2011की जनगणना के आधार पर अनुसूचित जनजाति का अनुपात बताइए।

(2) लोकशाही व्यवस्था, राष्ट्रीय पर्व और राष्ट्रीय सम्मान किस रूप में राष्ट्रीय एकता निर्माण में सहायक है, उसका वर्णन कीजिए।

(3) यातायात और संदेश व्यवहार के साधन राष्ट्रीय एकता निर्माण में सहायक हैं, समझाइए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में लिखिए :

(1) भारत में कौन-कौन सी विविधता दिखाई देती है?

(2) भारत में बोली जानेवाली पाँच भाषाओं का नाम लिखिए?

(3) राष्ट्रीय एकता की परिभाषा लिखिए?

(4) भारत के विकास में कौन-कौन सी समस्या अवरोधक है?

(5) प्राचीनकाल में भारत की भौगोलिक एकता के लिए किस नाम का उपयोग होता था?

(6) भारत के नागरिक एवार्ड कौन-कौन से हैं?

(7) भारत में दिए जानेवाले खेल-कूद के कौन-कौन से एवार्ड हैं?

(8) भारत में दिए जानेवाले भारतीय सेना के कौन-कौन से एवार्ड हैं?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) 2011 की जनगणना के आधार पर भारत के स्त्री-पुरुष का प्रतिशत अनुपात बताएँ।

(2) 2011 की जनगणना के आधार पर गुजरात की जनसंख्या कितनी है?

(3) भारत की 2011 की जनगणना के आधार पर सर्वाधिक लिंगानुपात किस राज्य का है?

(4) भारत की 2011 की जनगणना के आधार पर सबसे कम लिंगानुपात किस राज्य का है?

(5) गुजरात में 2011 की जनगणना के आधार पर अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत किस जिले का आधिक है?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) भारत में सबसे कम धर्म वाले लोग कौन हैं? ☐

(अ) हिन्दू (ब) मुस्लिम (क) ईसाई (ड) सिक्ख

(2) भारत की 2011 के जनगणना के आधार पर सर्वाधिक जनसंख्यावाला राज्य कौन-सा है? ☐

(अ) मध्यप्रदेश (ब) हिमाचल प्रदेश (क) आन्ध्रप्रदेश (ड) उत्तर-प्रदेश

(3) भारत की 2011 की जनगणना के आधार पर सबसे कम जनसंख्यावाला राज्य कौन-सा है? ☐

(अ) छत्तीसगढ़ (ब) उत्तराखंड (क) केरल (ड) हिमाचल प्रदेश

(4) भारत की 2011 की जनगणना के आधार पर औसत लिंगानुपात क्या है? ☐

(अ) 942 (ब) 939 (क) 938 (ड) 940

(5) भारत देश का भौगोलिक क्षेत्रफल कितना वर्ग किमी है? ☐

(अ) 32,87,263 वर्ग किमी (ब) 30,00,000 वर्ग किमी

(क) 33,57,263 वर्ग किमी (ड) 31,57,263 वर्ग किमी

(6) भारत में रेलवे का नेटवर्क कितने किलोमीटर है? ☐

(अ) 1,15,000 किमी (ब) 2,15,000 किमी

(क) 3,15,000 किमी (ड) 3,25,000 किमी

(7) विश्व का सबसे बड़ा रेलवे नेटवर्क कहाँ है? ☐

(अ) अमेरिका (ब) भारत

(क) चीन (ड) आस्ट्रेलिया

(8) भारत का सर्वोच्च नागरिक एवार्ड कौन-सा है? ☐

(अ) भारतरत्न (ब) खेलरत्न

(क) पद्मश्री (ड) पद्म विभूषण

क्रिया-कलाप

- अपने वर्ग में पढ़नेवाले विद्यार्थियों का धार्मिक आधार पर वर्गीकरण कीजिए।
- गुजरात के मानचित्र में अलग-अलग जिले का लिंग अनुपात दिखाइए।
- भारत के मानचित्र में सबसे कम एवम् अधिक तथा गुजरात की जनसंख्या को लिखिए।
- भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक उत्सव का चार्ट तैयार कीजिए।

●

2 भारतीय संस्कृति और समुदाय

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, पिछली इकाई में आपने धार्मिक, सांस्कृतिक और आदिवासी की जनसंख्या विविधता की जानकारी प्राप्त की, भारत की विविधता को समझकर राष्ट्रीय एकता के बारे में जानकारी ली। अब इस पाठ में सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति का अर्थ और स्वरूप को समझेंगे इसके पश्चात् समुदाय का अर्थ और प्रकार का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

संस्कृति अर्थात् किसी एक प्रजा की लाक्षणिक जीवनशैली, समाज के सदस्य रूप में हम जो कुछ सोचते हैं, जो कार्य करते हैं, हमारे पास जो कुछ है उस जटिल इकाई को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति के विषय में कक्षा 11में समझ चुके हैं। इस इकाई में हम उसे भारत के सन्दर्भ में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

केवल परिवार के बड़े को ही नहीं, सभी बड़ों को सम्मान देते हैं; ये तो आप देखे हैं न ? 'अतिथि देवो भव:' घर पर आए मेहमान का स्वागत करते हुए आप देखे हैं न ? यही उदाहरण ही भारतीय संस्कृति की छाप प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति के ये सभी मूल्य भारतीय संस्कृति को विशाल बनाते हैं।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का इतिहास हजारों वर्ष प्राचीन है। गंगा की धारा समान सदैव प्रवाहित रहा है। समय बदलने के साथ इसमें नए-नए तत्त्व आ गए हैं और आज 21वीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय संस्कृति अनेक मुद्दों का समावेश करके 'अलग-अलग संस्कृति' के रूप में आई है। भारतीय संस्कृति के निर्माण में अनेक लोगों के सहयोग से दूसरी प्राचीन संस्कृतियाँ नामशेष हो गईं, परन्तु भारतीय प्रजा ने अपनी सांस्कृतिक विरासत बचा रखी है। विश्व में भारतीय संस्कृति प्राचीन और विशाल दृष्टिगोचर होती है और विश्व गुरु बनने की ओर अग्रसर हो रही है।

भारतीय संस्कृति का अर्थ—परिभाषा

भूपेन्द्र ब्रह्मभट्ट - ''भारतीय संस्कृति अर्थात् मानवता, सहिष्णुता, विशाल एकता, धर्म निरपेक्षता और निरंतरता का लक्षण रखनेवाली संस्कृति।''

भारतीय संस्कृति भावनाओं और बुद्धि की पूजा करनेवाली संस्कृति है। उदार भावना और निर्मल ज्ञान के जोड़ से जीवन में सुन्दरता लानेवाली संस्कृति है। ज्ञान-विज्ञान को जोड़कर संसार में संवादिता का प्रसार करने का प्रयत्न करनेवाली संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति अर्थात् लगातार ज्ञान की खोज के लिए हमेशा आगे बढ़ना, संसार में जो कुछ भी सुन्दर, शिव और सत्य हो उसे लेकर विकास करनेवाली संस्कृति है। इसलिए कहा जाता है कि सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्।

भारतीय संस्कृति के लक्षण

(1) **निरंतरता और परिवर्तन :** दुनिया की कई संस्कृतियों का उद्भव और नाश हुआ। लेकिन भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि काफी उतार-चढ़ाव के पश्चात् भी आज सुरक्षित है। इसके कारण निरन्तरता बनी हुई है।

निरन्तरता के साथ परिवर्तन भी भारतीय संस्कृति का लक्षण है। कई आन्दोलन, नवजागरण, जैन, बौद्ध धर्म का प्रसार इत्यादि क्रान्तिकारी परिवर्तन होने के बाद भी संस्कृति के मूल तत्त्वों को बचाकर भारतीय संस्कृति ने समायोजन किया है।

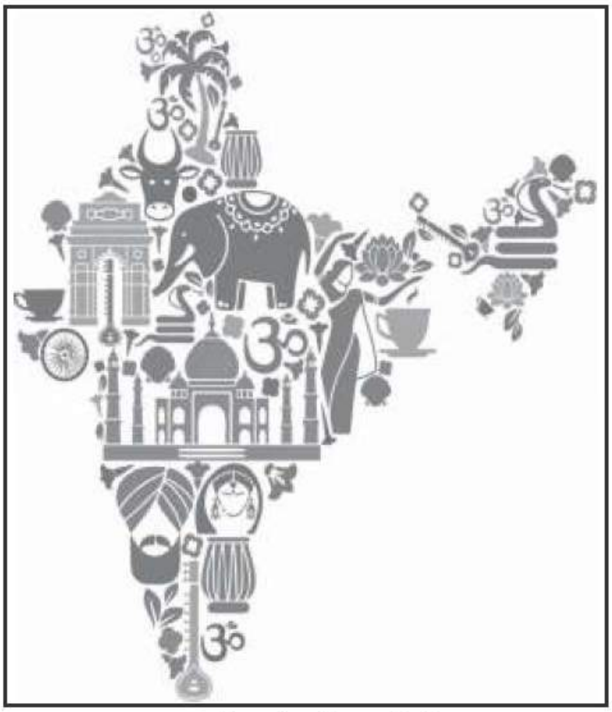

भारत की सांस्कृतिक विविधता

(2) विविधता और एकता : भारतीय संस्कृति जैसी विविधता कम संस्कृति में मिलती है। भारत की संस्कृति में कई जाति के लोग उसी प्रकार अनेक भाषा, धर्म, उत्सव और कला, संगीत, नृत्य दिखाई देता है। इस सबके लिए भौगोलिकता, प्रादेशिकता और जलवायु जिम्मेदार है।

इतनी अधिक विविधता होने के पश्चात् भी एक देश का नागरिक भाव तथा राजनैतिक प्रणाली के कारण एकता दिखाई देती है।

(3) धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण : धर्म निरपेक्षता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी भरा है। भारत में अनेक संस्कृतिवाले समूह मिलजुलकर साथ रहते हैं। भारतीय संस्कृति सहिष्णुता गुणधर्मवाली है।

भारत में सभी लोगों को समान अधिकार और अल्पसंख्यकों के अधिकार रक्षण हेतु खास व्यवस्था है; जो भारतीय संस्कृति की उदारता दर्शाता है। भारतीय संस्कृति में विज्ञान को भी महत्त्व दिया गया है, अर्थात् यह धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण वाली है।

(4) वैश्विक दृष्टिकोण : भारतीय संस्कृति वैश्विक दृष्टिकोण रखती है। उसने पूरे विश्व में शांति और सद्भावना का संदेश फैलाया है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भावना है। विकासशील और विकसित देशों के विकास के लिए भारत कटिबद्ध रहा है। इस प्रकार 'विश्व बन्धुत्व' की जिम्मेदारी निभाते हुए वैश्विक दृष्टिकोण का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

(5) भौतिकवाद और अध्यात्मवाद : भारत अध्यात्मवाद की भूमि माना जाता है। प्राचीनकाल से वर्तमान समय तक भारत का इतिहास देखें तो भौतिकवाद और अध्यात्मवाद की संस्कृति साथ-साथ विकसित हुई है। यदि आपको भारत के मनुष्य को समझना हो तो अध्यात्म से समझ सकते हैं।

(6) व्यक्ति को महत्त्व देनेवाली संस्कृति : भारतीय संस्कृति व्यक्ति में विश्वास रखनेवाली मानववादी संस्कृति है। भारत के अनेक धर्मों ने व्यक्ति का महत्त्व स्वीकार किया है। राज्य और समाज का उद्देश्य व्यक्ति की भलाई के लिए है और उसी प्रकार राज्य और समाज को भूमिका निभाना है। इसका अर्थ यह नहीं की समाज का कुछ महत्त्व नहीं है।

भारतीय संस्कृति का स्वरूप

भारतीय संस्कृति के अनेक रूप हैं; लेकिन यहाँ पर स्पष्ट ज्ञान के लिए तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है :

(1) प्रशिष्ट-भद्रवर्ग या शास्त्रीय परम्परा (Classical Culture)

(2) लोक संस्कृति या देशी परम्परा (Folk Culture)

(3) आदिवासी संस्कृति (Tribal Culture)

(1) **प्रशिष्ट-भद्रवर्गीय या मार्गी परम्परा (Classical Culture) :** भारतीय संस्कृति की प्रशिष्ट परम्परा में अनेक विद्याशाखा, भाषाएँ और कला का समावेश होता है। उसे निम्नलिखित रूप में दिखा सकते हैं :

(1) धर्मशास्त्र (धर्मसम्बन्धी) Religious

(2) नीतिशास्त्र (आचरणशास्त्र) Ethics

(3) ज्योतिषशास्त्र (अंतरिक्षविज्ञान, खगोलशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र) Astronomy and Astrology

(4) दर्शनशास्त्र Philosophy

(5) संगीतशास्त्र Music

(6) नाट्यशास्त्र Dramatics

(7) व्याकरणशास्त्र Grammar

(8) आयुर्वेद (आयुर्वेदशास्त्र) Medical Science

(9) वास्तु और शिल्प विज्ञान Architecture and Sculpture

यहाँ पर दिखाए गए अनेक शास्त्रों का मूल संस्कृत भाषा में मिलता है, इस कारण से इस परम्परा को भद्र

कहा जाता है। अलग-अलग ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति के अनेक पहलू की शास्त्रीय चर्चा की गई है और उसकी निरन्तरता आज भी है। इस परम्परा में अनेक विषयों की कुशलता प्राप्ति के लिए साधन और प्रशिक्षण अनिवार्य था। यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक है कि संस्कृत भाषा जनभाषा न होने के कारण अभिजात्य (भद्र) लोगों तक ही सीमित रही, तत्पश्चात इस परम्परा में अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के तत्त्व जुड़ते गए इस कारण से एक विशेष प्रकार की मिलीजुली संस्कृति का विकास हुआ।

(2) लोकसंस्कृति या देशी परम्परा (Folk Culture) : लोकसंस्कृति मानव समाज जितनी प्राचीन है। लोक संस्कृति को आदि मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति के रूप में जाना जाता है। लोकसंस्कृति लोक समूह का स्वयं का सर्जन है। जन जीवन स्वयं की रस, रुचि, सुविधाएँ और भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार कई प्रणाली की शुरुआत करते हैं जो आगे चलकर रिवाज़ रुचि के रूप में लोकजीवन का मुख्य अंग बन जाता है। लोक संस्कृति एक अत्यन्त विशाल जीवन क्षेत्र है। लोक जीवन, लोक कला और कारीगरी यह लोक संस्कृति के अंग हैं। लोक संस्कृति का सही परिचय प्राप्त करने के लिए लोकजीवन का अध्ययन आवश्यक है।

लोक संस्कृति का अर्थ और व्याख्या – ''जोरावरसिंह जादव, संस्कृति की गोद में समाविष्ट बोलियाँ, कंठस्थ साहित्य संगीत कला, उत्सव, धर्म वस्त्रालंकार, खेती, पशु-पालन, नौकायान, हथियार, घर, झोपड़ी, फर्निचर, देव मंडल, आचार-विचार, संस्कार इत्यादि का लोक संस्कृति में समावेश होता है।''

डॉ. महापात्रे — ''लोगों के रीति-रिवाज, वहम्, मान्यताएँ, प्रचलित लोकगीत, लोककथाएँ, लोरी, शोकरुदन, कहावतें, मुहावरों के उपरान्त वस्त्र, अलंकार, खेल, गृह जीवन उपयोगी वस्तुएँ, लोकदेवता-देवियाँ, खिलौने, हथियार इत्यादि का समावेश लोक संस्कृति में होता है। ''

लोकनृत्य

जैसेकि रीति-रिवाज अनुसार शादी करनेवाले को हल्दी (पीठी) लगाना मऊर बाँधना (मुकुट) दिखाई देता है। 'तीन तिगाड़ा काम बिगाड़ा' जैसे वहम भी होते हैं। कंजूसी करके पैसा गिनता रहे, वह व्यक्ति अगले जन्म में दो मुँहा साँप (अंधा साँप) होता है, ऐसी मान्यता लोक संस्कृति के उदाहरण हैं।

''मेरा प्यारा लड़का प्रभु की सौगात है'' जैसी लोरी, उसी प्रकार ''नहीं बोलने के नौ गुण'', ''जो बोलता है उसके बेर बिकते हैं'' जैसी कहावत; ''अनदेखी करना'', ''गुस्सा हो जाना'' जैसे मुहावरे भी लोकसंस्कृति के उदाहरण हैं।

हसु याज्ञिक — ''लोक संस्कृति यह जनमानस और साहित्य का आधार है। सभ्यता का विकास और संस्कृति की उपलब्धि दोनों की विकासयात्रा के साथ लोक संस्कृति जुड़ी है।''

कृष्णदेव उपाध्याय — ''लोक विद्या को लोकसंस्कृति के रूप में पहचाना जाता है। लोक विद्या अर्थात् लोगों द्वारा अपने जीवन में अर्जित की गई आवश्यक विद्या या ज्ञान है जो लोक समाज में जन्म लेती है।''

भारत की बहुसंख्यक प्रजा सदियों से लोक संस्कृति के साथ जुड़ी है। ये परम्परा मौखिक होने के कारण पुस्तक का आधार उसके विकास में नहीं दिखायी देता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरण द्वारा उसका निरन्तर विकास हुआ है। भौगोलिक रूप से विशाल क्षेत्र और विविध जलवायु वाले भारत में भौगोलिक वातावरण के अनुसार लोकसंस्कृति दिखाई देती है। कुछ अंश कृषि व्यवस्थावाले देश में और ग्रामीण परिवेश में लोकगीत, नाटक और चित्रकला विकसित हुई है। आदिवासी संस्कृति और लोक संस्कृति इस सन्दर्भ में समानता रखते हैं।

अनेक पहनावा, शृंगार के अनेकरूप, प्रतिदिन के भोजन में विभिन्नता और साथ में ही बारह कोस के बाद बोली बदले यह कहावत भारतीय संस्कृति की विविधता को व्यक्त करती है।

गुजरात का गरबा और भवाई, पंजाब का भाँगडा, महाराष्ट्र की लावणी असम का बिहु इत्यादि में उस प्रदेश की लोक संस्कृति का दर्शन मिलता है। इस तरह सामाजिक सन्दर्भ बदलने पर लोक संस्कृति का रूप भी बदलता है।

(3) आदिवासी संस्कृति (Tribal Culture) : आदिकाल से इस भूमि पर रहनेवाले आदिवासियों की संख्या भारत में अच्छी है। आदिवासियों की संस्कृति की महत्त्वपूर्ण पहचान होने के कारण उसका जानना समझना आवश्यक है। आदिवासी संस्कृति को समझना हो तो इसे भारतीय संस्कृति-सभ्यता के सन्दर्भ में ही देखा जा सकता है।

आदिवासी संस्कृति शास्त्रीय या प्रशिष्ट और लोक संस्कृति से अलग है। जबकि आदिवासी संस्कृति, लोकसंस्कृति के कई तत्त्व होते हैं। लेकिन प्रशिष्ट संस्कृति के साथ अपवाद स्वरूप सम्बन्ध रखती है। आदिवासी संस्कृति में प्राचीन और आधुनिक।

आदिवासी संस्कृति ने महत्त्वपूर्ण पहचान वर्षों तक बनाए रखी है। परन्तु ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से तथा आजादी के पश्चात् विकास की योजनाओं के कारण, लोगों का सम्पर्क होने से उनकी विशेष संस्कृति लुप्त होने के कगार पर है।

आदिवासी संस्कृति की परिभाषा :

भूपेन्द्र ब्रह्मभट्ट — ''प्रकृति के साथ सीधा सम्पर्क और पर्यावरणीय संन्तुलन रक्षण करनेवाली जीवनशैली को महत्त्व देना, सामूहिक उत्सव, त्योहार, नाच-गाने और समाजिक जीवन के प्रभुत्ववाली संस्कृति अर्थात् आदिवासी संस्कृति।''

आदिवासियों की जीवनशैली, उनके रिवाज, सरल मान्यताएँ आदिवासी संस्कृति का दर्शन कराती हैं। आदिवासी संस्कृति के चार लक्षण हैं :

(1) आकार में छोटे
(2) विविधता
(3) विशिष्टता
(4) स्वावलम्बन

ये चार लक्षण आदिवासी समाज की भौगोलिक और जनसंख्या विषयक परिस्थिति के साथ प्रबल सम्बन्ध होता है। जिसका मुद्देसर वर्णन पाठ-3 में देखेंगे।

आदिवासी संस्कृति :

आदिवासी जो कार्य करते हैं वह सरल और स्वभाविक होता है। ये लोग कला को सौन्दर्य निर्माण के साधन नहीं समझते हैं। उनके लिए तो ये जीवन का अंग होता है। आदिवासी कला के बारे में स्पष्टतया कहा जा सकता है कि आदिवासी संस्कृति में कला के कई विशेष लक्षण हैं। इन लक्षणों में माध्यम (medium), साधन (tools), प्रक्रिया (process), उपयोग (function), शिक्षण (learning), जीवनतत्त्व (live), निरन्तरता (continuity), सहजीवन (togetherness), विज्ञान (science) इत्यादि का समावेश होता है।

हम यहाँ पर उनकी चित्रकला, गीत-संगीत, नृत्यकला और मिट्टीकला की चर्चा करके आदिवासी संस्कृति के बारे में जानेंगे।

चित्रकला : राठवा के पीठोरा के चित्र, चौधरी के नवा के चित्र, कुंकणी की पसली, भीलों के भराडी, गरासिया का गोत्रज के चित्र ऐसे अनेक रूपों की भेट आदिवासी चित्रकला की भेट हैं। राठवा लोगों के घर की दीवाल पर जो चित्र होता है वह देवपीठोर चिंत्रित होता है उसके साथ वह जीवन व्यतीत करता है। लोग इकट्ठे होकर बनाते हैं, जब चित्र बनते हैं, उपवास करते हैं। चित्र से पहले सात बार कुँवारी कन्या लीपण करती है। संगीत, नाच-गान के साथ चित्र बनाया जाता है। ये चित्र समूह जीवन के उत्सव जैसा है। उनके चित्रों में देव, राजा, किसान, पेड़-पत्ते, सूर्य-चन्द्रमा, जीव, पशु-पक्षी होते हैं, जिसमें चमकीला रंग भरा होता है।

गीत-संगीत-नृत्यकला : गीत, संगीत और नृत्य आदिवासी जीवन संस्कृति का अभिन्न भाग है। उनके आर्थिक रूप से विषम जीवन में नई चेतना, उल्लास और प्राण सिंचन का कार्य गीत, संगीत और नृत्य करता है।

आदिवासी संगीत कला में उनके संगीत के अलग-अलग वाद्ययंत्रों का महत्त्व है। ये वाद्ययंत्र लकड़ी, हड्डी और चमड़े के उपयोग से बनता है। उनके संगीत वाद्य में चर्मवाद्य, ढोल, नगारा आदि होते हैं। तो वायुवाद्य में बाँसुरी, शंख, शहनाई, भूंगल होते हैं। तारवाद्य में तंबूरा, सारंगी तथा बोर होते हैं। डोबरु, त्राँसा, मंजीरा जैसे संगीत वाद्यों के साथ ये लोकगीत ऋतुओं, देव और सामाजिक जीवन से जुड़कर गाते रहते हैं। आदिवासियों के जीवन

में नाच-गाने का अधिक महत्त्व होता है। उनके नृत्य सामूहिक होते हैं जैसे कि घेरैयो नृत्य, डांग जिल्ला का तारका नृत्य, डाकणी नृत्य, डोबरू नृत्य इत्यादि मिलते हैं।

मिट्टी कला : आदिवासियों में विशिष्ट माटी कलावाली संस्कृति दिखाई देती है। वे मिट्टी से बर्तन, खिलौने और देव मूर्तियाँ बनाते हैं। गुजरात के पोशी क्षेत्र में भील-गरासिया लोग मिट्टी के घोड़े, देवों को चढ़ाते हैं। ये लोग उस घोड़े को जीवित घोड़े समान समझते हैं। गुजरात की आदिवासी जातियों में चौधरी, गामित, घोडिया, भील, राठवा सभी मिट्टी के घोड़े, हाथी, बाघ, गाय बैल, स्त्री-पुरुष इत्यादि की मूर्तियाँ बनाते हैं और उस आकृति को देव को अर्पण करते हैं। ये सभी प्रकृति के अंश हैं। ऐसी भावना और विचार आदिवासी संस्कृति में हमेशा महत्त्व रखती है।

भारतीय समुदाय

भारतीय समाज बहुमुखी समाज के सामाजिक-संस्कृति की विविधता वाला है। इसमें अलग समुदाय मिलते हैं जैसे कि धार्मिक समुदाय, ग्रामीण और शहरी समुदाय तथा आदिवासी समुदाय की जानकारी प्राप्त करेंगे।

समुदाय का अर्थ :

''समुदाय अर्थात् निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहनेवाले, समान संस्कृति और अपनेपन की सामूहिक भावना, आपसी संबध रखनेवाले मानव समूह को समुदाय कहा जाता है।''

समुदाय के प्रकार :

(1) धार्मिक समुदाय

(2) ग्रामीण समुदाय

(3) शहरी समुदाय

(4) आदिवासी समुदाय

(1) धार्मिक समुदाय :

विद्यार्थी मित्रो आपने पाठ-1 में धार्मिक समुदाय की आँकड़ाकीय सूचना प्राप्त की है। यहाँ पर हम अनेक धार्मिक समुदाय की विशेषताएँ देखेंगे।

धार्मिक समुदाय की परिभाषा :

धार्मिक समुदाय अर्थात् एक ऐसा निश्चित समूह जिसका अपना महत्त्वपूर्ण तत्त्वज्ञान, पूजा-उपासना प्रणाली, धार्मिक मान्यताएँ, विधि-विधान और आचार संहिता में समान समुदाय होता है।

मित्रो, हमारा देश बहुधर्मी है, इसमें अलग-अलग धार्मिक समुदाय देखें तो हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और यहूदी धर्म मिलते हैं। भारत के प्रत्येक गाँव, शहर में मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर (चर्च), गुरुद्वारा अगियारी जैसे धार्मिक स्थल धर्म के प्रतीक के रूप में मिलते हैं।

भारतीय संविधान की धारा 25(1)में प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म स्वयं स्वतन्त्र रूप से स्वीकार करना है तथा व्यवहार में लाने और उसका प्रचार-प्रसार करने का अधिकार रखता है। विश्व में भारत की धार्मिक विश्वास की सहिष्णुता और विविधता की स्वीकृति उदाहरण के रूप में है। भारत में सभी प्रकार के लोग अपनी धार्मिक मान्यता और उसे संरक्षित रखने के लिए स्वतन्त्र हैं। अलग-अलग धार्मिक समुदायों का परिचय निम्नानुसार है :

(1) हिन्दू समुदाय :

हिन्दू धर्म में व्यक्ति का धर्म अधिकार जन्म से प्राप्त होता है। इसमें ईश्वर नाम की शक्ति किसी भी रूप में स्थित है। व्यक्ति ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है ऐसा दृढ़ निश्चय है। हिन्दू समुदाय एक ईश्वर नहीं मानता है इस धर्म में विविधता मिलती है। धर्म, कर्म और मोक्ष तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। धर्म नैतिक बल है। कर्म व्यक्ति को अच्छा-खराब कर्म फल देता है। मोक्ष कर्म और जन्म-मृत्यु से मुक्ति प्रदान करता है। श्रीमद्भगवद्गीता इनकी धार्मिक पुस्तक, मंदिर धार्मिक स्थल है तथा धर्म स्थल पर सेवा-पूजा करनेवाला पुजारी कहा जाता है।

हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार व्यक्ति को सम्पूर्ण जीवन में 16 संस्कारों में से गुजरना पड़ता है। जिसमें से मुख्य जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार है।

हिन्दू धर्म में शैव, वैष्णव, शाक्त और स्मार्त चार भाग दिखाई देता है। शैव शंकर-शिव की पूजा करते हैं। वैष्णव विष्णु की, शाक्त देवी या माताजी और स्मार्त लोग शिव, विष्णु एवं देवी तीनों की पूजा करते हैं। हिन्दू

धर्म में कई सम्प्रदाय, पंथ, धाराएँ हैं। ये खूब जटिल हैं फिर भी ये विशाल हिन्दू-समुदाय के साथ सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार हिन्दूधर्म विविधतापूर्ण होने के पश्चात् भी आपस में संलग्न है। तीर्थाटन करना, पवित्र नदियों में स्नान करना, दान देना, धार्मिक व्रत करना, ग्रन्थों को पढ़ना, त्योहार मनाना, धार्मिक स्थलों और धार्मिक संतों को दान देना और सेवा करना महत्त्वपूर्ण है तथा दिवाली, होली, नवरात्रि इनके धार्मिक त्योहार हैं।

विभिन्न धर्मों के प्रतीक

(2) मुस्लिम समुदाय :

सम्पूर्ण भारत में इस्लाम धर्म का पालन करनेवाले मिलते हैं। इनकी धार्मिक पुस्तक कुरान शरीफ ईश्वर का शाब्दिक रूप माना जाता है। मुस्लिम धार्मिक क्रियाओं में नमाज, रोजा और हज का महत्त्व है। मुहम्मद पैगंबर द्वारा स्थापित ईस्लाम धर्म एकेश्वरवाद पर आधारित है।

किसी भी मुस्लिम को शरियत के नियम का पालन आवश्यक है। हज यात्रा इस्लाम धर्म में श्रेष्ठ मानते हैं। मक्का में पवित्र काबा का दर्शन हज है। जो पाप से मुक्ति देता है ऐसा ये लोग प्रमुखत : से मानते हैं। इस्लाम धर्म में तौहीद, नमाज, रोजा, जकात, हज एवम् खैरात ये मुख्य धार्मिक विधियाँ है। पाँच वक्त की नमाज करना जरूरी है। आमदनी का कुछ भाग खैरात में देना आवश्यक है। इस्लाम हिजरी पंचाग के हिसाब से धार्मिक विषय, विवाह और उत्सव मनाते हैं। मुर्हरम से नये वर्ष की शुरुआत होती है।

इस्लाम में रमजान सबसे पवित्र महीना माना जाता है। जिसमें स्त्री-पुरूष आत्मकल्याण शुद्धि के लिए उपवास करते हैं। जिसमें चंद्रदर्शन को महत्त्व देते हैं। उनके धार्मिक स्थल को मस्जिद कहते हैं। वहाँ वे सामूहिक नमाज अदा करते हैं। इस्लाम के अनुयायी मृत्यु के बाद दफनविधि करते हैं।

मुस्लिम शिया और सुन्नी दो भागों में बटे मिलते हैं। शिया से अधिक सुन्नी मुस्लिमों की संख्या अधिक है। इनके धर्मगुरु इमाम कहे जाते हैं। रमजान, ईद, मुर्हरम इनके धार्मिक त्योहार हैं।

(3) ईसाई समुदाय :

भारत में हिन्दू-मुस्लिम धर्म की जनसंख्या की अपेक्षा ईसाई कम हैं लगभग 2.30 प्रतिशत हैं। भारत में ये लोग गोवा, महाराष्ट्र, अरुणाचल प्रदेश, केरल और तमिलनाडु में अधिक रहते हैं। भारतीय ईसाई मुख्यता रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टन्ट अन्य साम्प्रदायिक चर्च में विभाजित है।

बाइबल इनकी धार्मिक पुस्तक हैं। ईसाई धर्म में ईशुख्रिस्त को ईश्वर के पैगंबर रूप में माना जाता है। उनके धार्मिक स्थान को चर्च के रूप में जाना जाता है।

ईसाई धर्म के तीन सिद्धान्त हैं :

- ईश्वर के पुत्र और संदेशवाहक के रूप में ईशुख्रिस्त में श्रद्धा और विश्वास।
- सेवा।
- पड़ोसी के प्रति प्रेम और सहिष्णुता।

भारत में कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाई अधिक हैं। ईसाई के धर्म गुरु को पोप कहते हैं। जो प्रत्येक धार्मिक विषयों में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। प्रोटेस्टन्ट संप्रदाय में अलग-अलग चर्च महत्त्वपूर्ण होते हैं। कैथोलिक संप्रदाय के ईसाई धार्मिक तीर्थयात्रा करते हैं। उसके धार्मिक स्थल मुंबई, केरल और अर्नाकुलम हैं। रोमन कैथोलिक ईसाई

चर्च में बिशप द्वारा अलग-अलग पवित्र विधि करते हैं। शादी की विधि चर्च में पादरी द्वारा होता है। क्रिसमस, इस्टर, गुडफ्राइडे इत्यादि इनके त्योहार हैं।

(4) जैन समुदाय :

भारत में जैन धर्मावलम्बी की संख्या कम है। ये मुख्यतया गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान में रहते हैं। भारत के प्राचीन धर्मों में जैन धर्म की गणना होती है। जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हुए हैं। इनमें प्रथम ऋषभदेव और 24वें महावीर स्वामीजी हैं। जैन समुदाय में श्वेताम्बर और दिगंबर (वस्त्रविहीन) दो भाग हैं। हिन्दू धर्म की तरह जैन धर्म आत्मा, कर्म का सिद्धान्त और जीवन-मृत्यु को मानते हैं। उपवास को स्वशुद्धि के लिए तपस्या मानते हैं। वैचारिक शुद्धि के लिए मानसिक अनुशासन का महत्त्व है। इसकी धार्मिक पुस्तक कल्पसूत्र है। यह अनेकश्वरवाद, परलौकिकवाद, अहिंसा, कर्म, धर्म, मोक्ष, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह के दार्शनिक ज्ञान को महत्त्व देते हैं।

(5) सिक्ख समुदाय :

सिक्ख धर्म के अनुयायी मुख्यतया भारत के पंजाब और उत्तर पूर्व प्रदेश में मिलते हैं। सिक्ख धर्म समता मूलक और समन्वयकारी है। उनके धर्म ग्रन्थ को गुरुग्रन्थ साहब और धार्मिक स्थान को गुरुद्वारा कहते हैं। इनमें भी जाति व्यवस्था दिखाई देती है। इनमें जाट, ब्राह्मण, क्षत्रिय, कारीगर वर्ग की जातियाँ होती हैं। सिक्ख धर्म ग्रहण करनेवाले धार्मिक रूप से निम्नजाति के लोगों को धार्मिक पहचान दी जाती है। लेकिन उन्हें सरदार नहीं कहा जाता।

ये लोग जो धार्मिक भजन करते हैं उसे गुरुवाणी कहते हैं। इनमें पाँच 'क' का महत्त्व है। जिसमें केश, कंघा, कड़ा, कच्छा, कृपाण शामिल है। सिक्ख धर्म में लंगर का अधिक महत्त्व होता है। अमृतसर का स्वर्णमंदिर इनका धार्मिक स्थल है।

(6) बौद्ध समुदाय :

भारत में सिक्ख धर्म के अनुयायियों की तरह ही बौद्ध धर्म के लोग कम हैं। अधिक्तर बौद्धधर्मी महाराष्ट्र में बसते हैं। इसके पश्चात् उत्तर-पश्चिम और अरुणाचल प्रदेश में रहते हैं। सम्राट अशोक के समय में भारत में बौद्ध धर्म का विस्तार अधिक था। बौद्ध धर्म में हीनयान, महायान और ब्रजयान ऐसे तीन सैद्धान्तिक अन्तर हैं। बौद्ध धर्म में दो स्तर हैं जिसमें उच्चस्तर के बौद्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय और कुछ प्रमाण में गृहपति भी हैं, जबकि निम्नस्तर के बौद्ध धर्म में धर्मान्तरित आदिवासी और सीमान्त समूह के लोग हैं। सारनाथ, साची, बोधगया बौद्ध धर्म के मुख्य केन्द्र हैं। इनके धर्मगुरु लामा के नाम से जाने जाते हैं। उनके धार्मिक स्थान पर विषव्हील (Wish Wheel) होता है। बौद्ध धर्म के स्थल को बौद्ध मंदिर के रूप में जाना जाता है। इनकी धार्मिक पुस्तक को त्रिपिटक कहा जाता है। ये लोग कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।

(7) पारसी समुदाय :

भारत में पारसी समुदाय अल्प मात्रा में है। ये लोग आठवीं शताब्दी में इरान से समुद्री मार्ग द्वारा गुजरात होकर भारत में आए हैं। (दूध में शक्कर मिले इस प्रकार मिल गए।) भारत के राष्ट्रीय जीवन में घुलमिल गए। भारत में ये लोग व्यापारी वर्ग के रूप में घुल मिल गए हैं। उनके धार्मिक स्थान को अगियारी कहते हैं। हूम्त (अच्छे विचार), हुख्त (अच्छे शब्द), हुवरस्त (अच्छे कर्म) उनके धार्मिक सूत्र हैं। इनकी धार्मिक पुस्तक 'अवेस्ता' है। इनका मुख्य त्योहार 'पतेती' है।

(8) यहूदी समुदाय :

भारत में इनकी जनसंख्या है। यहूदी हिब्रु वंश के हैं। इनके मुख्य दो समूह हैं। जिसका एक समूह कोचीन में दूसरा समूह कोंकण में निवास करता है। इनके धार्मिक स्थल को 'टेम्पल माउन्ट' कहते हैं। उनकी धार्मिक पुस्तक 'तनखवतोराह' है। इनके धर्मगुरु को मोजीस कहते हैं। यहूदी धर्म की उत्पत्ति जेरुसलम में हुई हैं। उनका धार्मिक दर्शन न्याय, सत्य, शान्ति, प्रेम, दया और करुणा है। वे जेहोवा या बहोवाह को भगवान मानते हैं। सभी यहूदी उपासना केन्द्र में साथ-साथ पूजापाठ करते हैं। भारत में कई यहूदी इजरायल में स्थान्तरित हो गए है।

इस तरह, भारत में प्रत्येक धार्मिक समुदायों में भी विविधता है। भारत सरकार ने मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध और पारसी इन पाँच समुदायों को अल्पसंख्यक घोषित किया है। भारत में कुल मिलाकर 17.17 प्रतिशत अल्पसंख्यकों की जनसंख्या है। इन धार्मिक अल्पसंख्यकों के कल्याण हेतु कई विधान किए गए हैं।

(2) ग्रामीण समुदाय :

गाँव प्रकृति के निकट निवास करनेवाले, प्राय: खेती या खेती से जुड़े व्यवसाय करते हुए और विशेष शैलीयुक्त जीवनवाले लोगों से बना छोटा प्राथमिक समुदाय होता है। जिसमें समानता तथा एकता होती है। कृषि और जातिगत आधार पर स्तरीकृत सामाजिक असमानता होती है। अधिकांश लोग परम्परा से जुड़े रहने का लगाव रखते हैं। ये लोग परिवर्तन को धीरे से स्वीकार करते हैं। सामाजिक गतिशीलता कम मात्रा में होती है।

समग्र भारत में एकरूपता वाला ग्रामीण समुदाय नहीं होता है। लेकिन आकार, रहने का तरीका तथा सामाजिक रचना में विविधता दिखाई देती है। ग्रामीण समुदाय में जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषाकीय व्यवस्था, संस्कृति में अन्तर लाती है। फिर भी ग्रामीण समुदाय में प्रदेश और देश के सन्दर्भ में कई तत्त्व समान होते हैं।

ग्राम समुदाय की परिभाषा :

अलग-अलग समाजशास्त्रियों ने ग्राम समुदाय की परिभाषा निम्नलिखित दी है :

एम. एन. श्रीनिवास – ''गाँव एक परस्पर-अवलम्बन वाली इकाई है। गाँव की ग्राम समिति होती है। गाँव के अन्दर प्रत्येक जाति महत्त्वपूर्ण जीवन जीती है। गाँव जाति जैसे अनेक स्तरों से बने क्षेत्रीय और उर्ध्व युक्त इकाई है।''

एस. सी. दूबे – ''गाँव एक स्थानीय समूह है। ये सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विधि-विधानों वाली सामाजिक व्यवस्था की इकाई है। यह संगठित राजनीतिक समाज का भाग है। व्यक्ति ग्राम समुदाय उपरांत जाति, धर्म, स्थानीय समूह के सदस्य होते हैं। गाँव में एक से अधिक जातियाँ होती हैं। जो गाँव की सामाजिक, धार्मिक और व्यवस्थायकीय रूप में संगठित होती हैं।''

डी. एन. मजमुदार – ''ग्रामीण समुदाय को एक जीवन प्रणाली के रूप में परिभाषित करते हैं।''

ग्रामीण समुदाय के लक्षण :

ग्रामीण समुदाय का अर्थ और परिभाषा, उनके लक्षण निम्नलिखित हैं :

(1) प्रकृतिमय जीवन :

भारतीय ग्राम समुदाय के लोग प्रकृति के सानिध्य में जीवन जीते हैं। आजीविका का मुख्य स्रोत खेती होने से खेती से सदैव जुड़े रहते हैं। कृषि के लिए वर्षा, सूर्य, वनस्पति, पशु, नदी, तालाब, हवा इत्यादि प्राकृतिक तत्त्वों के सम्पर्क में रहते हैं तथा जीवन व्यतीत करते हैं।

(2) छोटा प्राथमिक समुदाय :

भारत के अधिक्तर गाँव छोटे आकार के हैं जिस कारण से प्रत्येक ग्रामवासी एक-दूसरे को जानते हैं। इस कारण से उनके मध्य सामाजिक निकटता होती है। जिसे प्रत्येक ग्राम एकता के रूप में जाना जाता है।

(3) बहुमुखी समाज :

ग्राम समुदाय अनेकों समूहों से रचित बहुमुखी समाज होता है। उसमें अलग-अलग जाति का समाज होता है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि का वैविध्य होता है। विभिन्न समूह सामुदायिक जीवन में व्यवस्थित होते हैं।

(4) साम्यता :

ग्राम समुदाय में धर्म, भाषा, पोषाक, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, मूल्य किसी अंश तक व्यवसाय में साम्यता होती है। फिर भी इसमें विविधता और अन्तर दिखाई देता है लेकिन वह सूक्ष्म रूप में होता है। साम्यता ग्राम की एकता में सहयोग देता है।

(5) कृषि आधारित अर्थव्यवस्था :

ग्राम समुदाय की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित होती है। कृषि अर्थात् प्रकृति के पास से प्रत्यक्ष आजीविका प्राप्त करना। कृषियुक्त अन्य व्यवसाय भी दिखाई देता है।

(6) जाति-विभाजन :

ग्राम समुदाय में अलग-अलग जातियों में मध्य स्तर का अन्तर होता है। जाति के आधार पर भेदभाव होता है। लेकिन जातियाँ व्यवसायिक सेवा के द्वारा एक दूसरे पर अवलंबित होती हैं। ग्राम समुदाय में कृषि आधारित वर्ग रचना भी होती है। उसमें समृद्ध, मध्यम और छोटे किसानों का वर्ग तथा कृषि मजदूर भी जुड़े होते हैं।

(7) परिवारवाद :

ग्रामीण समुदाय अधिकतर संयुक्त कुटुम्ब प्रणालीवाला लक्षण रखता है । ग्रामीण समुदाय की नींव की संस्था के रूप में परिवार गाँव के सामुदायिक जीवन पर प्रभाव डालता है । गाँव के सामाजिक संबंधों पर परिवार के संबंध विशेष प्रभाव डालते हैं और ग्रामीण परिवारों में व्यक्तिवाद का प्रवेश होने लगता है ।

(8) ग्रामीण धर्म :

ग्रामीण समुदाय का धर्म प्रकृति प्रधान होता है। सूर्य, जल, जमीन, पशु जैसे प्रकृति तत्त्वों से बना होता है। प्राकृतिक आपत्तियों के कारण ये लोग भाग्यवादी होते हैं । ये प्रकृति के विविध तत्त्वों की पूजा और पाठ करते हैं । साथ-साथ वर्तमान समय में विविध धर्म के उत्सवों और त्योहारों में आधुनिकता के तत्त्व शामिल होते जाते हैं ।

(9) जाति पंच, ग्राम पंच :

ग्रामीण समुदाय में जाति पंच, ग्राम पंच सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करते हैं। जाति पंच जाति के नियमों का पालन कराती है। ग्राम पंच में सभी जातियों का प्रतिनिधित्व होता है। ग्राम पंच जातियों के बीच संघर्ष निवारण करती है। जबकि न्यायालय के कारण ग्राम पंच की सत्ता कमजोर हो गई है।

इसके पश्चात ग्रामीण समुदाय में जाति और कृषि आधारित स्तर रचना होने के कारण गतिशीलता का अवसर कम होता है। जबकि स्वतन्त्र व्यवसाय अपनाकर अपना दर्जा बदल सकते हैं। ग्रामवासी परम्परा से जुड़े होने में विश्वास अधिक रखते हैं। ये परिवर्तन को शीघ्रता से स्वीकार नहीं करते है। जबकि आरक्षण की योजना, एन.जी.ओ. (NGO)की भूमिका, सूचना का अधिकार, सरकारी योजनाओं के कारण स्वतन्त्रता के बाद अलग-अलग कारकों का प्रभाव ग्राम समुदाय पर पड़ा है। कृषि क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति और संचार क्रान्ति के कारण गाँव के लोग वैश्विक और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के भाग (अंश) बनने लगे हैं। ग्रामीण समुदाय के संस्थाकीय व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा है। जिससे ग्रामीण जीवन परिवर्तित होने लगा है। विगत कई वर्षों से गाँव से लोग शहर में आने लगे हैं फलस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या कम होने लगी है।

ग्रामीण समुदाय भौगोलिक रूप से कहाँ स्थित है और विकसित नगर से कितना निकट है या दूर है उसके आधार पर लक्षण दिखाई देता है। यदि नगर समुदाय के समीप तथा यातायात की सुविधावाले मार्ग से जुड़ा है तो उनके लक्षण में अधिक परिवर्तन दिखाई देता है। जबकि विकसित समाज से दूर है तो ऊपर लिखित लक्षण अधिक प्राप्त होते है।

(3) शहरी समुदाय का अर्थ :

भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। फिर भी भारत में प्राचीन काल से सिन्धुघाटी की सभ्यता में (मोहें-जो-दड़ो, हड़प्पा) शहरी सभ्यता मिलती है। भारत की शहरी व्यवस्था भी प्राचीन परम्परा है। अनेक विदेशी यात्री जैसे ह्वेनसांग, फायहन ने अपने लेखों में भारत के अलग-अलग प्रदेशों के विकसित शहरों का वर्णन किया है। उदाहरण स्वरूप काशी (बनारस), मथुरा तथा उनके समीप गाँव से निकटवर्ती सम्बन्ध थे।

विद्यार्थी मित्रो, ऐसे शहरी समुदायों के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

शहरी समुदाय

शहरी समुदाय :

शहर के लिए नगर शब्द प्रचलित है। शहरी क्षेत्र में निवास करनेवाले व्यक्तियों से बने समुदाय को शहरी समुदाय कहते हैं। जिसमें जनसंख्या अधिक और जनसंख्या घनत्व अधिक होता है। अधिकांशतः लोग गैर कृषि कार्य करते हैं। बड़े नगर होने के कारण लोगों के बीच औपचारिक संबंध होता है। धर्म, व्यवसाय, संप्रदाय, जाति, भाषा के बारे में अनेकता होती है। अधिकांशतः प्रकृति से दूर रहते हैं। समाजशास्त्र की नजर से देखें तो शहर

या नगर एक जीवन प्रणाली हैं। नगर में अधिक जनसंख्या और घनत्व होता है। यातायात की सुविधा, क्रय-विक्रय, वैज्ञानिक और शैक्षणिक सुविधा अच्छी होती है। शहरी समुदाय के लोगों की सामाजिक व्यवस्था और मान्यताओं की तरह श्रद्धा में विविधता होती है।

भारत में एक समान रूप वाला नगर समुदाय नहीं है लेकिन उसमें आकार, कार्य, रचना, निवास (रहने) के तरीकों में विभिन्नता दिखाई देती है।

शहर समुदाय की परिभाषा और लक्षण :

लूई वर्थ – ''बड़ा आकार सघन जनसंख्या और विभिन्नता ये नगर समुदाय का महत्त्वपूर्ण विषय होता है''

किंग्सले डेविस के मतानुसार शहरी समुदाय अनेक लक्षणों वाला होता है :

(1) विविधता :

शहरी समुदाय के सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में जैसेकि धर्म, भाषा, जाति, संस्कृति, व्यवसाय इत्यादि में विविधता दिखाई देती है। सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अन्तर दिखाई देता है।

(2) दूरवर्ती संबंध :

नगर यह दूर के संबंधवाला समुदाय होता है। जिसमें इनके सदस्यों के बीच संबंध और सम्पर्क अपनी माँग की पूर्ति हेतु मर्यादित होता है। केवल भौतिक निकटता होती है। समाजिक निकटता कम होती है। संबंध में अधिक दिखावा और औपचारिकता होती है।

(3) व्यक्तिकरण :

शहरी समुदाय में व्यक्ति को अपने हित की पूर्ति के लिए स्वयं साधन का चयन करके लक्ष्य प्राप्ति करना है। उसमें आनेवाली परेशानियों को स्वयं दूर करने के लिए व्यक्ति अकेले प्रयास करता है। इस कारण से व्यक्ति शहरी समुदाय में अकेलापन महसूस करता है।

(4) सामाजिक गतिशीलता :

सामाजिक गतिशीलता शहरी समुदाय की विशेषता बनती जा रही है। शहर में व्यक्ति की गतिशीलता को प्रोत्साहन मिलता है। इसके लिए अलग-अलग प्रलोभन, अवसर और अनेक प्रकार के आकर्षण जो सामाजिक गतिशीलता के लिए प्रेरित करता है। प्राप्त दर्जा महत्त्व का होता है। अलग-अलग व्यवसायों, प्रशिक्षण, शिक्षा की सुविधा का लाभ लेकर अपने पद को ऊपर कर सकता है। सामाजिक जीवन में प्रतियोगिता महत्त्वपूर्ण होती है।

(5) दूरवर्ती सामाजिक नियन्त्रण :

नगर विशाल और दूरवर्ती समुदाय होने के कारण सार्वजनिक जीवन बना उसी प्रकार सामुदायिक संगठन बनाए रखना और लोगों के जानमाल, अधिकार तथा हितों की रक्षा हेतु नियम, पुलिस व्यवस्था, कोर्ट, गुप्तचर विभाग प्रशासनिक विभाग की आवश्यकता हुई। नगर समुदाय में ग्राम समुदाय की तुलना में नियम तोड़ने तथा छिपाने का अधिक अवसर होता है।

(6) सामाजिक सहिष्णुता :

नगर समुदाय में कुछ व्यवहार और विविधता के लिए लोग सहिष्णु होते हैं। अर्थात् व्यक्ति अपने से अलग जाति, लिंग, धर्म, भाषा, सम्प्रदाय, आचार-विचार, व्यवहारों, अभिप्रायों, संस्कृतियों के प्रति समभाव रखकर स्वयं में स्वीकार कर लेता है। नगर समुदाय में दूर के संबंध के कारण यंत्रवत जीवन के पश्चात भी अलग-अलग प्रकार के व्यक्तियों, समूहों, संस्कृति और व्यवहार के प्रति सहिष्णु का भाव सामाजिक अनुकूलता दिखाता है।

(7) स्थानीय पृथकता :

नगर समुदाय अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में बँटा होता है। नगर के कुछ भाग में व्यापार-वाणिज्य, उद्योग, धन्धे होते हैं। कुछ भाग में आवास, मनोरंजन, शिक्षण, प्रशासन, चिकित्सा, धर्म तथा मिलनेजुलने वाले केन्द्रों का विकास हुआ है।

(8) मशीनीकृत जीवन :

मशीनीकृत जीवन नगर समुदाय की विशेषता है। व्यक्ति का जीवन घड़ी की सूई की तरह घूम रहा है। व्यक्ति मानसिकरूप से लगातार व्यग्र, परेशान और संघर्ष का अनुभव करता है।

(9) स्वैच्छिक समुदाय :

नगर समुदाय में सेवा और मानवतावादी संगठन मिलते हैं। ये नगर में स्वैच्छिक संगठनों, अनेक मडल नगर की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार बनते हैं। जो व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक, मानसिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। वर्तमान भारत में शहरीकरण बढ़ता जा रहा है। शहर का आकार और प्रकार बदल रहा है। जनधनता और विभिन्नता में वृद्धि हुई है। साथ ही साथ शहरी समुदाय में अनेक नई समस्या भी आई है जैसे गंदे निवास स्थल, ट्राफिक प्रदूषण इत्यादि।

(4) आदिवासी समुदाय :

भारत में ग्राम समुदाय और नगर समुदाय से अलग एक विशेष सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवनशैली वाला बड़ी मात्रा में प्राथमिक कक्षा का सामुदायिक जीवन जीनेवाले अलग-अलग आदिवासी समुदाय भारत में निवास करते हैं।

आदिम जातियों, आदिवासियों के आदिम समुदाय संविधान के अनुच्छेद 342(1)के आधार पर अनुसूचित जनजाति के रूप में जाने जाते हैं।

इम्पीरियल गजेटियर आदिवासी समुदाय को निम्नरूप से समझाते हैं।

''आदिवासी कई परिवारों का समुदाय है जो समान नाम, समान बोलीवाले अन्तर्विवाही समूह हैं तथा वे समान प्रदेश में रहते हैं या समान प्रदेश के निवासी होते हैं उसी तरह की मान्यतावाले होते हैं।''

आदिवासी समुदाय समाज के अन्य लोगों की सामाजिक व्यवस्था और अन्य विषयों में अलग होते हैं। समुदाय के सन्दर्भ में आदिवासी समुदाय के लक्षण निम्नानुसार दर्शाए जाते हैं :

(1) निश्चित भौगोलिक स्थान :

समुदाय की परिभाषा में ये महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं। प्रत्येक आदिवासी समुदाय निश्चित भू-भाग पर निवास करते हैं। उदाहरण स्वरूप गुजरात में साबरकांठा से शुरू होकर आहवा डांग तक उत्तर-पूर्व विस्तार में अधिक संख्या में आदिवासी समुदाय रहता है। उनका निश्चित निवासस्थान मूल वतन के रूप में जाना जाता है।

(2) विशेष नाम :

प्रत्येक समुदाय विशेष नाम से पहचाना जाता है। इसी प्रकार अलग-अलग आदिवासी समुदाय का स्वयं विशेष नाम होता है। जैसे कि गुजरात में भील, वूबला, बावचा इत्यादि विशेष नामों से जाना जाता है।

(3) समानबोली-भाषा :

प्रत्येक आदिवासी समुदाय का निश्चित और सर्वसामान्य भाषा तथा महत्त्वपूर्ण बोली होती है। भारत के आदिवासी समूह में लिपि नहीं मिलती है; परन्तु सामान्य भाषा व बोली होती है।

(4) समुदाय के सदस्यों के बीच परस्पर अवलंबन :

आदिम समाज अधिक सरल और एक विविधता वाले दिखाई देते हैं। ऐसी विविधता भाषा के पश्चात व्यवसाय, कुटुम्ब व्यवस्था, विवाह व्यवस्था, आनन्द-प्रमोद के साधनों में दिखाई देता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाईलदरर्वाइम ऐसे सामाजिक समुदाय को यांत्रिक एकता के रूप में वर्णित करते हैं। यह समुदाय इस अर्थ में यांत्रिक है कि उनके समूह एक दूसरे के साथ यन्त्रवत रूप से जुड़े होते हैं। जो प्राय: समान व्यवसाय करते हैं। उदाहरण स्वरूप सामुदायिक खेती, पशु-पालन, प्राकृतिक खाद्य संकलन इत्यादि। प्रत्येक परिवार अपना जीवन निर्वाह सामुदायिक आर्थिक प्रवृत्ति द्वारा करता है। इनमें साधारण श्रम विभाजन होता है।

आदिवासियों में सामूहिक भावना बनी रहे उसके लिए अनेक त्योहार, उत्सव उसी प्रकार आनन्द प्रमोद के मनोरंजन की प्रवृत्तियाँ समुदाय के सदस्यों के साथ मिलकर मनाते हैं। उनके नृत्य भी व्यक्तिगत नहीं होते हैं।

जैसे – असम का बिहु नृत्य, गुजरात का डाँगी नृत्य विश्व का कोई भी आदिवासी नृत्य सामुदायिक स्वरूप में ही दिखाई देता है।

सामाजिक रीति–रिवाज, परम्परा व्यक्तिवादी न होकर समुदाय को महत्त्व देती है। धार्मिक आचरण में समुदाय की विधियाँ महत्त्वपूर्ण होती हैं। आदिवासी समुदाय में परिवार सगे सम्बन्धों को आधिक महत्त्व देता है। अपनेपन की व्यवस्था अधिक विकसित होती है।

इनके धर्म में अधिकतर प्राकृतिक देवताओं की पूजा होती है। भूत–प्रेत, डॉकण जैसी अनेक प्रकार की अंधश्रद्धा में विश्वास करते हैं। सामुदायिक भावना की वृद्धि में धार्मिक उपासना, मान्यता, मूल्यों का महत्त्व होता है।

(5) युवागृह :

कई आदिवासी समुदाय में युवकों के लिए अलग युवागृह होते हैं। वहाँ पर उनको सामुदायिक शिक्षण दिया जाता है। शिकार, जीवन निर्वाह का प्रशिक्षण, समाज के कक्षा अनुसार सामाजीकरण किया जाता है।

(6) सामाजिक नियन्त्रण :

आदिवासी समुदाय में संचालक के रूप में एक प्रमुख व्यक्ति होता है। जो समूह का बड़ा या सरदार होता है। वह समग्र समुदाय का नियंत्रण करता है। वह स्वयं समुदाय के लिए नियम बनाता है जो समुदाय के सदस्यों को व्यवहार नियन्त्रण करता है। समुदाय के सभी सदस्यों को स्तर का पालन करना पड़ता है। समुदाय का कोई भी व्यक्ति समाज का स्तर तोड़ता है तो समग्र समुदाय को क्षति पहुँचती है ऐसा माना जाता है, परिणामस्वरूप समुदाय के स्तर का पालन न करने पर कई कठिन सजा दी जाती है। कुछ संयोगों में व्यक्ति को समुदाय से अलग कर दिया जाता है।

इसतरह, आदिवासी समुदाय जो प्राथमिक सरल समुदाय है उसकी विशिष्ठ महत्त्वपूर्ण संस्कृति, प्राथमिक कक्षा का श्रम विभाजन, सगे सम्बन्ध अधिक मजबूत, समुदाय की सत्ता किसी एक व्यक्ति के हाथ में होती है।

इस पाठ में आपने भारतीय संस्कृति और उसके रूप तथा भारतीय समाज के विविध समुदाय के बारे में जानकारी प्राप्त की। अगले पाठ में आप अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्गों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नालिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखिए :

(1) भारतीय संस्कृति के लक्षण समझाइए।

(2) 'भारत बहुधर्मी देश है' इस तथ्य को समझाइए।

(3) ग्रामीण समुदाय का अर्थ और लक्षण समझाइए।

(4) शहरी समुदाय के लक्षण समझाइए।

2. निम्नालिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) भारतीय संस्कृति का अर्थ–परिभाषा स्पष्ट कीजिए।

(2) आदिवासी कला संस्कृति का वर्णन कीजिए।

(3) आदिवासी समुदाय को विस्तृत जानकारी लिखिए।

(4) भारतीय संस्कृति का प्रशिष्ठ–मार्ग रूप समझाइए।

(5) हिन्दू समुदाय का वर्णन कीजिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर लिखिए :

(1) भारतीय संस्कृति के स्वरूप क्या हैं ? समझाइए।

(2) लोक संस्कृति का उदाहरण दीजिए।

(3) आदिवासियों की मिट्टीकला की जानकारी दीजिए।

(4) मुस्लिम समुदाय का वर्णन कीजिए।

(5) पारसी समुदाय का वर्णन कीजिए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर दीजिए :

(1) संस्कृति अर्थात् क्या ?

(2) लोक संस्कृति के कौन–कौन से अंग हैं ?

(3) आदिवासी संस्कृति की विशेषता बताइए।

(4) ईसाई धर्म के मुख्य सिद्धान्त बताइए ?

(5) सिक्ख धर्म के पाँच 'क' किसे कहते हैं ?

(6) भारतीय संस्कृति किस संस्कृति के रूप में आई है ?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) भारतीय संस्कृति की विशेषता क्या है ? ☐

(अ) विविधता में एकता (ब) अलगाव (क) असहिष्णुता (ड) एक भी नहीं

(2) भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण कैसा है ? ☐

(अ) वैश्विक (ब) स्थानीय (क) संकुचित (ड) एक भी नहीं

(3) लोक संस्कृति ये कैसा सर्जन है ? ☐

(अ) व्यक्तिगत (ब) प्राकृतिक (क) सहकार (ड) एक भी नहीं

(4) लोक संस्कृति की परम्परा कैसी होती है ? ☐

(अ) लिखित (ब) मौखिक (क) वर्णानात्मक (ड) एक भी नहीं

(5) आदिवासी संस्कृति में क्या दिखाई देता है ? ☐

(अ) जीवन की रीतियाँ (ब) मान्यताएँ (क) रिवाज़ (ड) उपर्युक्त सभी

(6) भारत के संविधान की कौन–सी धारा व्यक्ति को अपने धर्म की स्वतंत्ररूप से पालन करने की छूट देता है ? ☐

(अ) 25 (ब) 340 (क) 15 (ड) 118

(7) पारसियों के धार्मिक पुस्तक का क्या नाम है ? ☐

(अ) भागवत गीता (ब) अवेष्ता (क) कुरानेशरीफ (ड) त्रिपिटक

(8) युवागृह किस समुदाय में दिखाई देता है ? ☐

(अ) ग्रामीण (ब) शहरी (क) आदिवासी (ड) एक भी नहीं

(9) ग्रामीण अर्थ व्यवस्था किस पर आधारित है ? ☐

(अ) कृषि (ब) व्यापार (क) उद्योग (ड) आयात और निर्यात

(10) भारत में धार्मिक अल्पसंख्यक जनसंख्या के कितने प्रतिशत हैं ? ☐

(अ) 18.2 (ब) 17.17 (क) 20.0 (ड) 12.5

क्रिया–कलाप

- भारतीय संस्कृति की विविधता का चार्ट तैयार कीजिए।
- लोक संस्कृति के भाग स्वरूप में लोक कहावतों की सूची बनाइए, उसी प्रकार लोक गीतों के पठन का कार्यक्रम आयोजित कीजिए।
- आदिवासी कला संस्कृति के बारे में फोटो एल्बम बनाइए।
- अपने नजदीक के क्षेत्र में आदिवासी गाँव की मुलाकात का आयोजन कीजिए।
- अलग–अलग धार्मिक समुदाय के बारे में चार्ट बनाइए।

●

3 अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग

प्रस्तावना :

विद्यार्थी मित्रो, स्वतन्त्रता से पहले ही भारतीय समाज में जातियों के बारे में अध्ययन समाजशास्त्रियों के लिए ही नहीं प्रशासनिकों के लिए भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। भारत के सामाजिक जीवन में जातियों का निश्चित कोटिक्रम जन्म के आधार पर जुड़ा हुआ है।

कक्षा–11 में आपने जाति व्यवस्था और उनके लक्षणों को जाना। हम सभी जानते हैं कि जाति व्यवस्था में भी कोटिक्रम व्यवस्था है। जिसमें कई जातियों के समूह को उच्च तथा कुछ को निम्न दर्जा प्राप्त है। इस कारण से निम्न जातिसमूहों को संवैधानिक पहचान प्रदान की है। इन जाति समूहों को पिछड़ा वर्ग के रूप में जाना जाता है।

पिछड़ा वर्ग

भारत में पिछड़े वर्ग को वास्तविक रूप में जानने के लिए भारतीय समाज के मूलभूत अनेक दर्जे और जुड़े जाति समूहों को जानना आवश्यक है। 'पिछड़ा वर्ग' एक समूह या समष्टि नहीं है लेकिन अनेक समाज में अनेक स्थान और दर्जावाले सामाजिक दृष्टि से चढ़ते-उतरते क्रम से व्यवस्थित सामाजिक समूह है।

पिछड़े वर्गों में (1) अनुसूचित जातियाँ (2) अनुसूचित जन जातियाँ (3) अन्य पिछड़े वर्गों को समावेश करते हैं।

संवैधानिक रूप से 'दलितों' को अनुसूचित जाति में 'आदिवासियों' को अनुसूचित जनजाति में तथा 'अन्य पिछड़े वर्गों' को सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े समूह में समावेश किया गया है।

एक विद्यार्थी के रूप में आपके मन में प्रश्न जरूर उत्पन्न होगा कि इन सभी जातियों की उत्पत्ति कहाँ से हुई है। इनके लक्षण क्या हैं तथा अपने संविधान में जातियों को क्या पहचान दी गई है। इन सभी जातियों के विकास के लिए क्या कार्यक्रम हैं। इस सबकी जानकारी प्रस्तुत पाठ से प्राप्त करेंगे।

1. अनुसूचित जाति (Schedule Caste)

हम लोग प्रतिदिन के जीवन में इस शब्द का प्रयोग करते हैं। भूतकाल में वर्णव्यवस्था के बाद जाति व्यवस्था के अन्तिम कोटिक्रम में समाहित जातियों को 'अस्पृश्य जाति' के रूप में जानते हैं। इन जातियों को अलग-अलग समय पर अलग-अलग प्रदेशों में अनेक नाम से जानते हैं। गाँधीजी ने इनका नामकरण 'हरिजन' किया तो कुछ लोग 'कुचले वर्ग' (depressed class) के रूप में नाम दिया। लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान में इन जाति वर्गों को 'अनुसूचित जाति' (Schedule Caste) नाम दिया गया है।

अनुसूचित जाति यह किसी एक जाति के लिए प्रयोग किया जानेवाला नाम नहीं है लेकिन कई जातियों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन के आधार पर एक समूह में लेकर जिस वर्ग अर्न्तगत (अनुसूची) में रखा गया, उसे समूह वाचक नाम दिया है।

अनुसूचित जाति का वर्गीकरण

भारत में अनुसूचित जाति किसी एक प्रदेश में रहती है, ऐसा नहीं। निश्चित समूहों के रूप में अलग-अलग राज्य और केन्द्रशासित प्रदेशों में निवास करते हैं। एक ही राज्य में एक से अधिक प्रकार की अनुसूचित जाति निवास करती है। इनमें कई प्रादेशिक और सांस्कृतिक भिन्नता होती है। इनकी सूची अधिक है। यहाँ पर हम भारत और गुजरात में इनका क्या अनुपात है, उसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

भारत वर्ष में कई साल तक अनुसूचित जाति को सामाजिक कोटिक्रम के निम्न दर्जे में रखा गया था। उनके व्यवसायों में भी चमड़े का कार्य, सफाईकाम, बुनाई काम इत्यादि के कारण आर्थिक लाभ कम मिलता था। वे इसके नागरिक होते हुए भी कई असुविधाओं के भोग बनते थे। जिस कारण से 1955 में भारत सरकार ने अस्पृश्यता निवारण कानून बनाया।

तत्पश्चात शिक्षण, नए व्यवसाय और नौकरी, सार्वजनिक यातायात बढ़ जाने के कारण, संचार माध्यम, शहरीकरण और औद्योगीकरण, संस्कृतिकरण के कारण अनुसूचित जाति के लोगों के साथ व्यवहार में परिवर्तन आया।

विशेषकर अरुणाचल, नागालैण्ड, लक्ष्यद्वीप और अन्दमान-निकोबार में अनुसूचित जाति के परिवार नहीं मिलते हैं।

सारणी - 1

भारत और गुजरात की कुल जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जाति का अनुपात (प्रतिशत में)।

क्र.न.	वर्ष	भारत	गुजरत
1	1961	14.64	6.33
2	1971	14.60	6.84
3	1981	15.65	7.15
4	1991	16.48	7.41
5	2001	16.20	7.10
6	2011	16.02	7.10

(सन्दर्भ सेन्सस रिपोर्ट - 2011)

ऊपर की सारणी पर से ज्ञात होता है कि वर्ष 1961 में अनुसूचित जाति का अनुपात कुल जनसंख्या का 14.64 था। जो वर्ष 2011 में 16.02% प्रतिशत दिखाई देता है जबकि गुजरात में इसका अनुपात क्रमानुसार 6.33 और 7.10 प्रतिशत रहा है।

भारत में 2001 और 2011 में अनुसूचित जाति में स्त्री-पुरुष अनुपात निम्नानुसार है :

सारणी - 2

भारत में अनुसूचित जाति का अनुपात (मिलियन में)

	2001	2011	अन्तर
कुल व्यक्ति	166.6	201.4	+ 20.8 %
पुरुष	86.1	103.5	+ 20.3 %
स्त्री	80.5	97.9	+ 21.5 %

(सन्दर्भ सेन्सस रिपोर्ट - 2011)

इस सारणी पर से कहा जा सकता है कि पिछले दशक में अनुसूचित जाति का प्रमाण 21% जितना बड़ा है लेकिन पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अनुपात कम दिखाई देता है।

भारत की अनुसूचित जातियों में सबसे अधिक संख्यावाली जाति रोहित है जो अनुसूचित जातियों का चौथा भाग है। अनुसूचित जाति का सबसे अधिक अनुपात (31.9%) पंजाब राज्य में है और सबसे कम जनसंख्या (0.1%) मिजोरम राज्य में है।

गुजरात राज्य में अनुसूचित जातियों में सबसे अधिक जनसंख्या वाली चार जातियाँ हैं। (1) माह्यावंशी (2) भाम्भी, चमार, चामड़िया (3) बाल्मिकी, मेहर, रुखी (4) मेघवार, मेघवाल का समावेश होता है।

अनुसूचित जाति की नई पहचान

स्वतन्त्रता पश्चात अनुसूचित जातियों के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए संविधान में व्यवस्था और कल्याण के लिए, उठाए गए अनेक कदम सामाजिक सुधारकों के द्वारा किए गए प्रयत्नों द्वारा भारत की जाति आधारित सामाजिक रचना के स्वरूप में परिवर्तन आाया है। अनुसूचित जातियों ने इसका लाभ भी लिया है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया, बौद्ध धर्म को स्वीकारना, आरक्षण प्रथा, शिक्षण, व्यवसायिक परिवर्तन ने इनको नई पहचान दी है। इसके लिए कई आन्दोलन भी किए गए हैं। धीरे-धीरे भेदयुक्त व्यवहार और तिरस्कार से मुक्त होकर उत्कर्ष की तरफ अग्रसर हैं। समाज की मुख्य धारा में आए लोगो ने सकारात्मक पहचान प्राप्त किया है। ऐसा कहा जा सकता है।

(2) अनुसूचित जनजातियाँ (Scheduled Tribes)

अनुसूचित जाति की तरह दूसरा समूह अनुसूचित जनजाति है। जिसे Scheduled Tribes के रूप में पहचाना जाता है। सार्वभौमिक रूप से सहमत हो ऐसी परिभाषा 'आदिवासी' या 'अनुसूचित जनजाति' की नहीं मिलती है। इसके लिए अनेक प्रकार के ज्ञान और लक्षण दिए गए हैं।

विश्व में सर्वाधिक आदिवासी वाला देश अफ्रीका है, भारत दूसरे क्रम पर आता है।

विद्यार्थी मित्रो, अनुसूचित जनजाति का अर्थ आप प्रथम पाठ में जान चुके हैं।

भारत के आदिवासी

सामान्य रूप से भारतीय संविधान की धारा 342 (क) में राष्ट्रपति द्वारा दी गई सूची में समाविष्ट होता है, उसे अनुसूचित जनजाति कहते हैं :

भारत के अनुसूचित जाति के लक्षण :

डॉ. मजमुदार और मदन ने अनुसूचित जनजाति के सर्वसामान्य लक्षण निम्न दिए हैं।

(1) निश्चित प्रदेश :

अनुसूचित जनजाति को प्रादेशिक समूह के रूप में मान सकते हैं। इनके निश्चित क्षेत्र होते हैं। कुछ आदिजातियाँ पूर्ण रूप से अपने क्षेत्र से जुड़ी रहती हैं। मूंडा, हो, गारो, पूर्णतया क्षेत्रीय हैं। जबकि संथाल, भूमिज, भील इत्यादि लोग विकसित समाज के साथ रहते हैं। लेकिन कुछ अंश में 'स्वयं' के क्षेत्र में पूर्ण जीवन जीने की लालसा होती है।

(2) निश्चित नाम :

प्रत्येक अनुसूचित जनजाति का स्वयं में एक विशेष नाम होता है। निश्चित नाम उनके निश्चित समूह को सूचित करता है। भारत की आदिम जातियों में जाति नाम की विभिन्नता दिखाई देती है। गुजरात में भील, गामित, राठवा में इस तरह की स्थिति बनी है। उनके समूहगत नाम का विशेष महत्त्व दिखाई देता है।

(3) निश्चित बोली :

इन समूहों की निश्चित बोली या भाषा होती है। कई आदिम जातियों ने प्रादेशिक भाषा को स्वीकार कर लिया है। उदाहरण स्वरूप भील, भूमिज इत्यादि। जबकि आदिम जातियाँ स्वयं की बोली और भाषा के प्रति ममता रखते हैं।

(4) सगे-संबंधियों के बीच संबंध :

सगे–सम्बन्धियों के मध्य में प्रत्येक अनुसूचित जनजाति अपना जीवन बिताते हैं। सगे–सम्बन्धियों का वैज्ञानिक अध्ययन दिखाता है कि आदिम जातियों के जीवन में महत्त्वपूर्ण प्रसंग सगे–सम्बन्धों पर आधारित रूढ़ियों, आचार, नियम और रिवाज़ों द्वारा व्यक्ति के व्यवहार पर नियन्त्रण तथा एक दिशा में प्रभावी किया जाता है।

(5) आदिम जाति पंच :

आदिम जातियों में पंच का प्रभावशाली असर होता है। ''पंच जो कहे वही परमेश्वर'' की दृष्टि से उनके समाज में न्यायधीश और कोर्ट का कार्य पंचायत करती है। किसी को दण्ड देना हो, अपराधी को दण्ड, तलाक (विवाह–विच्छेद) लेना हो इन सभी विषयों पर 'आदिम जाति पंच' की सर्वोच्च सत्ता है। राजनीतिक दृष्टि से राज्य सरकार का नियन्त्रण होने के बाद भी आन्तरिक व्यवस्था, सामाजिक नियन्त्रण पर पंच–प्रथा को महत्त्व दिया जाता है।

(6) युवागृह :

युवा संगठन किसी भी आदिम जाति के केन्द्र बिन्दु में होता है। ऐसे संगठन युवागृहों (Youth Organization) के रूप में जाने जाते हैं। सभी आदिम जातियों में ऐसे युवागृह नहीं होते हैं। लेकिन कई आदिम–जातियों में ये युवागृह होते हैं। संयुक्त और विभक्त युवा गृहों द्वारा आदिम जाति के अविवाहित युवक–युवतियों का समाजीकरण (Socialization) और उनकी सांस्कृतिक का आत्मसातीकरण (Encuturation) भी होता है।

(7) अर्थव्यवस्था का स्वरूप :

आदिम जातियों में अर्थव्यवस्था का स्वरूप विकसित समाज की दृष्टि से कम विकसित होता है। साहूकारों के उपरांत बैंक व्यवस्था द्वारा कर्ज देने का कार्य होता है।

(8) अदृश्य शक्तियों में श्रद्धा :

अनुसूचित जन–जातियाँ अदृश्य और अलौकिक शक्तियों में श्रद्धा रखती हैं। कोई टोटेम के साथ अपनी अलौकिक शक्ति का सम्बन्ध है, ऐसा ये मानते हैं। इसी तरह इस मान्यता के साथ जुड़े अनेक वहम और मान्यता भी ये लोग मानते हैं। ये अंधश्रद्धा का पोषण करती है। शामन, बडवो या भगत जैसी चमत्कारिक व्यक्तित्ववाले व्यक्ति को ये लोग विशेष प्रधानता देते हैं।

(9) विशेष नैतिक नियमावली :

प्रत्येक आदिम जाति की विशेष नैतिक नियमावली होती है। इस नीतिमत्ता को छोड़ते नहीं है। प्रत्येक लोग कड़ाई से पालन करते हैं। समूहजीवन में नीतिमत्ता को प्रधानता देते हैं।

(10) सामाजिक-धार्मिक निषेधावस्था :

अनुसूचित जनजातियों में सामाजिक क्षेत्र एवं धार्मिक क्षेत्र में अनेक निषेध (Taboos)का पालन करना होता है। सामाजिक सम्बन्ध में 'परिहार सम्बन्ध' इनका सामाजिक निषेधावस्या दर्शाता है। जबकि धार्मिक विधियों और क्रियाओं में 'पवित्रता का ध्यान' स्पष्ट होता है। शामन के लिए स्त्रियों को काफी निषेधों का पालन करना पड़ता है, ऐसे निषेध व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करता है।

(11) गूढ़ शक्तियों की प्रधानता :

आदिम जाति के लोग कई प्रकार के गूढ़ शक्तियों में विश्वास करते हैं। टेकरी की गूढ़ शक्तियों, जंगल की गूढ़ शक्तियों, पूर्वजों की गूढ़ शक्तियों, मृत–वीरों की गूढ़ शक्तियों, उसी प्रकार भूत, चुड़ैल, डाकण जैसी विनाशकारी शक्तियों पर विश्वास करते हैं।

(12) मृत्यु के पश्चात् जीवन में श्रद्धा :

अनुसूचित जनजाति के लोग मृत्यु के बाद भी जीवन में श्रद्धा रखते हैं। पूर्वज पूजा और प्रकृति पूजा, शरीर से मुक्त होने के बाद आत्मा का अस्तित्व बना रहता है ऐसा दर्शन दिखाई देता है। मृत्यु प्राप्त व्यक्ति को खुश करने के लिए 'समूह श्राद्ध' किया जाता है तथा मृतक व्यक्ति के साथ उनके द्वारा प्रयोगित वस्तु भी रखी जाती है। ये सभी रिवाज मृत्यु पश्चात् जीवन की श्रद्धा प्रगट करती है।

(13) गोत्र प्रतीक (Totem), निषेध (Taboo), गोदना (Tatoo)का महत्त्व :

भारत की कई अनुसूचित जनजातियाँ गोत्र प्रतीक में श्रद्धा रखते हैं। गोत्र प्रतीक से जुड़ी व्यावहारिक प्रणाली से गोत्र प्रतीकवाद जन्म लेता है। इसी प्रकार इसमें निषेधों की प्रधानता विशेषकर मिलती है। इसमें गोदना गोदवाने का रिवाज थोड़ा-बहुत लगभग सभी आदिम जातियों में पाया जाता है।

इस तरह 'टोटम', 'टेबू' और 'टेटू' - इन तीनों का प्रभाव सभी आदिम जातियों में मिलता है।

गोत्र प्रतीक (Totem)

(14) वस्त्र-परिधान :

आदिवासी अधिकतर प्रकृति से प्राप्त होनेवाले संसाधनों से बने वस्त्र पहनते हैं । विकसित समाज के संपर्क में आने से वे आधुनिक वस्त्र-परिधान भी पहनने लगे हैं । तो दूसरी तरफ जो आदिवासी जंगल के आन्तरिक भाग में रहते हैं, वे लोग आज भी कम कपड़े पहनते हैं। जैसे कि, अंदमान-निकोबार में रहनेवाले जारवा आदिवासी ।

(15) मादक पेय का उपयोग :

कुछ आदिवासियों में सामाजिक-धार्मिक प्रसंगों पर उनकी परंपरा के भाग स्वरूप महुआ, ताड़ी आदि मादक पेय का उपयोग होता है । जब कि अब विविध धर्म -संप्रदाय और सुधारकों के संपर्क के कारण ऐसे नशीले पदार्थों के सेवन में कमी आई है ।

(16) शिक्षा का अनुपात कम :

शहरी समाज की तुलना में अनुसूचित जनजाति में शिक्षा का प्रमाण कम है। विशेषकर वहाँ पर जहाँ कालेज उपलब्ध नहीं है और आन्तरिक विस्तारों में।

(17) समूह नृत्य, समूह गीत का प्रभाव :

अनुसुचित जनजातियों में विशेष समूह नृत्य होता है। क्षेत्रवार विभिन्नता दिखाई देती है। समूहनृत्य के समय विशेष वादन यंत्र और संगीत बजाया जाता है। समूह गीत की यहाँ प्रधानता होती है। आख्यान, दंतकथाएँ, भजन इत्यादि सामूहिक रूप से गाया जाता है।

(18) मेला और उत्सव का महत्त्व :

इस समूह जीवन में मेला और उत्सव द्वारा उल्लास, आनन्द और उत्साह दिखाया जाता है अपने जीवन में अनेक ऋतुओं में मनाया जानेवाला उत्सव, त्योहार और मेला उन्हें उत्साही बनाता है।

(19) समूह एकता और समूह संज्ञानता :

अनुसूचित जनजातियों में समूह एकता (Group Solidarity) अधिक दिखाई देती है। पूरा समूह एकता में बंधा होता है। ये दिखाई देता है। इस तरह उसमें समूह संज्ञानता (Group Consciousness)का विकास होता जाता है। ये राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना चाह रहे हैं, कई आदिम जातियाँ विद्रोह भी कर रही हैं। ये अपने संगठन शक्ति तथा संघशक्ति को बढ़ाकर स्वायत्ता भी लेना चाह रहे हैं। इनमें भी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलन भी प्रभाव में आ रहा है।

विद्यार्थी मित्रो, यह भी जानना आवश्यक है कि भारत की आदिम जातियों के ये सभी लक्षण जीवनशैली

का ज्ञान कराते हैं। सभी आदिम जाति में ये लक्षण हों अनिवार्य नहीं है। इन सबको मिलाने के बाद भी आदिम जातियाँ कम हैं। मजमुदार और मदन द्वारा दर्शाई गई आदिवासियों की उपर्युक्त लाक्षणिकताओं में समय के साथ-साथ कई परिवर्तन आए हैं।

भारत की आदिम जातियों का वर्गीकरण

भारत की आदिम जातियों का वर्गीकरण इस तरीके से कर सकते हैं। :

(1) भौगोलिक निवास के आधार पर :

निम्नलिखित तीन भौगोलिक क्षेत्रों में आदिवासी जनसंख्या मिलती है। :

- **उत्तर-उत्तरपूर्व का भाग :** इसमें लद्दाख (जम्मू-कश्मीर), हिमाचल प्रदेश, उत्तर का उत्तर प्रदेश, सिक्किम तथा उत्तर पूर्व भाग (अरुणाचल, आसाम) मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, मणिपुर और त्रिपुरा ये सात राज्य समाहित हैं।
- **मध्यवर्ती या केन्द्रीय भाग :** इसमें पश्चिमी बंगाल, ओडिशा, बिहार, दक्षिण उत्तर प्रदेश, दक्षिण राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र शामिल हैं।
- **दक्षिण भाग :** इसमें आन्ध्रप्रदेश-तामिलनाडू, कर्णाटक, केरल, अन्दमान तथा निकोबार के दो केन्द्रशासित भाग और लक्ष्यद्वीप समाविष्ट हैं।

मध्यवर्ती भाग सबसे अधिक जनसंख्या वाला क्षेत्र है। यहाँ के निवासी आदिवासी अन्य भागों से अच्छे पहचान (प्रसिद्ध)वाले हैं।

(2) जनसंख्या के आधार पर :

डॉ. वृजराज चौहाण आदिम जातियों की जनसंख्या के दो भाग करते हैं :

- खूब कम जनसंख्या वाले क्षेत्र और राज्य
- खूब अधिक जनसंख्या वाले प्रदेश और राज्य

(3) संस्कृति के आधार पर :

डॉ. वेरियर एल्विन और प्रो. दास तथा सामाजिक कार्यकर्ता परिषद ने संस्कृति के आधार पर वर्णन किया है।

डॉ. वेरियर एल्विन सांस्कृतिक दृष्टि से चार विभाग बताते हैं :

प्रथम विभाग : इसमें साझेदारी जमीनवाले होते हैं। ये पिछड़ा जीवन जीते हैं। अनजाने के पास आने पर डरते हैं उदाहरण स्वरूप बस्तर के मुरिया, ओडिशा के बोदो और जुआंग।

दूसरा विभाग : ये जंगलों और पहाड़ों पर रहते हैं, समूह जीवन जीते हैं, बाहरी संपर्क कम रखते हैं।

तीसरा विभाग : इस विभाग के लोग अधिक हैं, स्वयं की संस्कृति में बदलाव ला रहे हैं। इनमें से कई परम्परागत संस्कृति को छोड़कर परिवर्तन तरफ बढ़ रहे हैं।

चौथा विभाग : इस विभाग में भील, सरदार, मुरिया जैसे जमीनदार समाहित हैं। ये आर्थिक रूप से मजबूत और समृद्ध हैं।

(4) आर्थिक दृष्टि से :

कई मानवशास्त्री आदिम जाति का वर्गीकरण आर्थिक रूप से करते हैं। जिनमें शिकार, पशुपालन, खेती, कारखाना उद्योग में वर्गीकृत किया है।

(5) भाषा की दृष्टि से

भारत की सभी आदिम जातियों को भाषाकीय दृष्टि से तीन भाषा परिवार में वर्गीकृत किया गया है। :

- **आस्टिक भाषा परिवार :** इस भाषा परिवार में ओस्ट्रो-एशियाटिक जिसमें मुंडा और कलि बोली का समावेश होता है। मध्य और पूर्वभारत में आदिवासी आस्टेनेशियन जिसमें अपने देश के आदिवासियों की भाषा नहीं आती है।
- **द्रविडियन भाषा परिवार :** इसमें तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम आता है। आंध्र में रहनेवाले गोंड दक्षिण भारत के कादर, इसला, चेचुं, टोडा जातियाँ आती हैं।

- **सीनो तिबेटियन भाषा परिवार :** इसमें तिब्बत-वर्मा और स्यामी-चीनी का समावेश होता है। दार्जिलिंग और हिमालय में रहनेवाली आदिम जातियाँ यह भाषा बोलती हैं।

(6) जातितत्वों के आधार पर

इनमें निश्चित शरीर लक्षण जैसे सिर, नाक, कपाल का आकार, आकार, रक्त समूह के आधार पर रखते हैं। भारत में कई विद्वानो ने इस रूप से वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। निश्चित शरीर लक्षण में त्वचा तथा आँख का रंग, बाल की बनावट, रोएँ, होंठ इत्यादि का समावेश किया जाता है।

अनुसूचित जनजाति-सांस्कृतिक विविधता

विद्यार्थी मित्रो, अनुसूचित जनजाति की विवाहव्यवस्था, सगाई संबंध, संपत्ति की व्यवस्था, धर्मसंस्था, जादू, न्यायतंत्र, कला और संगीत, दंतकथाओं आदि उनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को दर्शाते हैं। यहाँ भारत की अनुसूचित जनजाति समूह की कुछ विशेष सांस्कृतिक विविधता को देखें।

भारतीय आदिम समूह प्रकृति गोत्र प्रतीक, जादू, नृत्य, लोकसंगीत कला में मानते हैं। प्रकृति के अनेक रूप जैसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, वनस्पति इनके सांस्कृतिक जीवन के साथ जुड़े हैं। प्रकृति पूजा इनके जीवन का अभिन्न अंग है। आदिवासी में गोत्र प्रतीकवाद-टोटेमवाद है। ये सामूहिक चेतना का प्रतीक है। इसमें गोत्र के सदस्य कई गूढ़ और पवित्र सम्बन्ध रखते हैं। टोटेम के प्रति समूह के सदस्य आदर, श्रद्धा-भक्ति उपरान्त भय का भाव रखते हैं। आदिम जाति समाज में धर्म और जादू सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। इसके बारे में इससे पता चलता है।

जादू में ये मंत्र और तंत्र का उपयोग करते हैं। सफेद जादू रक्षात्मक और कल्याणकारी है जबकि काला जादू तांत्रिक विद्या और भूत-प्रेत के साथ जुड़ा है। ये मानते हैं कि जादू द्वारा अलौकिक शक्ति के ऊपर अधिकार कर सकते हैं। जबकि इसमें हमेशा सिद्धि मिले, ऐसा नहीं है।

कला

आदिवासी वर्षों से कला और सौन्दर्य के साथ जुड़े हैं। उनकी कला में सौन्दर्य और संवेग के साथ सामाजिक तत्व भी जुड़ा है। उनके विवाह, मूल्य, धर्म, परम्परा, सामाजिक और भौगोलिक परिस्थिति के साथ उसकी उपयोगिता जुड़ी है। उदाहरण स्वरूप कलात्मक कांसकी, बाँस की टोकरी।

कला की अभिव्यक्ति शैली इनके संगीत, ताल, सुर से अभिव्यक्त होता है।

डॉ. वेरियर एल्विन बताते हैं कि इस प्रकार भारतीय आदिम जाति की कला में यथार्थवाद और प्रतीकवाद दोनों का समावेश होता है उसमें मूर्तिकला और चित्रकला दोनों समाहित हैं। उनकी दीवारों, औजारों के उपरान्त आभूषणों में व्यक्त होता है। आदिवासी त्योहार, उत्सव और लग्न प्रसंग घर की दीवारों पर सुशोभित करते हैं। भीत चित्रों में यह व्यक्त होता है। उदाहरण स्वरूप गुजरात के राठवा का पीठोरा, इसी प्रकार भूरिया लोग हाथी, घोड़ा और मनुष्य की मूर्ति देवता को अर्पण करते हैं। संथाल लोग विवाह के समय डोली को सजाते हैं। भारत के आदिवासियों में संगीत और नृत्य में ताल, सुर और वाद्य-यंत्र का त्रिवेणी संगम दिखाई देता है। इनके वाजित्र इलेक्ट्रानिक नहीं होते, लेकिन फूँक मारने पर हवा भरने से, थाप मारने से होती है। सारंगी, बाँसुरी, तूर, तंबूर, बीन, ढोल, घंट, मृदंग इत्यादि शामिल हैं।

विवाह, धार्मिक प्रसंग, त्योहार, उत्सव में नृत्य करते हैं। कई बार राजा, शिकारी पशु का मुखौटा भी धारण करते हैं। वे समूह नृत्य करते हैं। लोकगीतों के द्वारा समूहजीवन की एकता दिखाते हैं। उनकी भाषा, शैली, लोककथा भी इसमें संलग्न रहती है।

(3) अन्य पिछड़ा वर्ग (The Other Backward Classes - OBC)

विद्यार्थी मित्रो, आपने देखा कि संविधान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधान है। इन दोनों समूहों के पश्चात् भारत के संविधान में अन्य पिछड़े वर्गों का भी उल्लेख है। जिसमें सामाजिक शैक्षणिक और आर्थिक पिछड़े वर्गों को लिया गया है। अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सम्पूर्ण भारत की कोई सूची नहीं है। लेकिन शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारों ने यह सूची बनाई है। इस सूची में कई विसंगतियाँ दिखाई देती हैं।

भारत में काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में सर्वप्रथम 1953में कमीशन (आयोग) बना, इस कमीशन ने देश में 2399 जातियों को पिछड़ी जातियों की सूची में समाहित किया। इन जातियों का अनुपात उस समय देश में 70% था। इस कमीशन ने सामाजिक दर्जे का कोटिक्रम और पिछड़ेपन के मापदण्ड को स्वीकारा परन्तु इनकी संस्तुति स्वीकार नहीं की गई।

भारत सरकर ने संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 के अनुलक्ष्य को लेकर 1979 में दूसरा आयोग बनाया, इस आयोग के अध्यक्ष श्री वी. पी. मण्डल थे इस आयोग को 'मण्डल आयोग' के रूप में जाना जाता है। इस आयोग के विशेषज्ञों में समिति के अन्तरराष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त भारत के समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास थे। मण्डल कमीशन को निम्नलिखित कार्य सौंपा गया था :

(1) सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को निश्चित करने के लिए मापदण्ड बनाना।

(2) सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के विकास के लिए संस्तुति करना।

(3) सार्वजनिक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं, ऐसे पिछड़े वर्गों के लिए नौकरी में आरक्षण की व्यवस्था के लिए संस्तुति करना। मण्डल आयोग के द्वारा सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन निश्चित करने के लिए किए गए मापदण्ड।

मंडल आयोग द्वारा सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन के लिए निश्चित किए गए मानदंड।

मंण्डल आयोग ने सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन निश्चित करने के लिए सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक ऐसे तीन विभाग में निम्नलिखित मापदण्ड अपनाए थे। ये मापदण्ड निम्नलिखित हैं :

(1) सामाजिक मापदण्ड

सामाजिक पिछड़ापन निश्चित करने के लिए चार मापदंड निश्चित किए गए थे :

- वे जातियाँ और वर्ग जो सामाजिक रूप से पिछड़े माने जाते हैं।
- वे जाति या वर्ग जिनकी जीविका शारीरिक श्रम के ऊपर आधार रखती है।
- जिन जातियों या वर्गों के गाँव में रहनेवाले 25 % स्त्री और 10 % पुरुष और शहर में रहनेवाले 10 % स्त्री और 5 % पुरुष राज्य की औसत अधिक संख्या में 17 वर्ष के नीचे की विवाह करनेवाले लोग।
- वे जातियाँ और वर्ग जिनकी औसत से 25 % अधिक स्त्रियाँ आजीविका के लिए काम करती हैं।

(2) शैक्षणिक मापदण्ड :

शैक्षणिक पिछड़ापन निश्चित करने के लिए तीन मापदण्ड अपनाए गए थे।

- राज्य की औसत 25 % से अधिक जातियों और वर्गों के 5 से 15 वर्ष के उम्रवाले बालक विद्यालय ही नहीं गए हों।
- राज्य की औसत 25 % से अधिक जाति या वर्ग के 5 से 15 वर्ष के बीच के बालक बीच में ही पढ़ाई छोड़ दिए हों।
- राज्य के औसत 25 % से कम जाति या वर्ग के मैट्रिक पढ़े हों।

(3) आर्थिक मापदण्ड :

सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन निश्चित करने के लिए तीन आर्थिक मापदण्ड अपनाए गए थे।

- राज्य की औसत जिन जाति/वर्ग के परिवारों की संपत्ति की कीमत 25 % से कम होती है।
- राज्य की औसत से वे जाति/वर्ग 25 % से अधिक परिवार कच्चे मकान में रहते हों।
- वे जाति या वर्ग 25 % से अधिक परिवारों को प्रतिदिन की आवश्यकता के लिए कर्ज लेना पड़ता है।

मण्डल आयोग ने विशेषज्ञों की समिति बनाकर सर्वेक्षण कराया था। इस सर्वेक्षण के सूचना द्वारा सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन का जाति के मापदण्ड के रूप में उपयोग किया और अन्य पिछड़े वर्ग की सूची तैयार

करके स्वयं की संस्तुति के साथ 1980 में भारत सरकार को प्रदान किया, 1982 में इनके वृतांत की चर्चा संसद में हुई।

अमल, प्रत्याघात, न्याय और कार्यवाही

13 अगस्त, 1990 में सार्वजनिक रूप से भारत सरकार मण्डल आयोग ने संस्तुति को स्वीकार किया। इस सार्वजनिकीकरण से भारत सरकार की प्रशासनिक जगह और सेवाओं में अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए (OBCs) 27 % जगह आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई। आरक्षण की इस व्यवस्था के पर विरोध हुआ और सर्वोच्च न्यायालय में आरक्षण की व्यवस्था को लेकर विरोध रीट पिटिशन भी हुआ। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 16 नवम्बर 1992 में बहुमत से निर्णय दे दिया। इस निर्णय में ऐसी शर्त रखी गई थी कि आरक्षण के विषय में सार्वजनिकीकरण करने में अन्य पिछड़े वर्गों में जो व्यक्ति सामाजिक रूप में विकसित है, उन्हें आरक्षण के लाभ से दूर रखा जाय। तत्पश्चात सर्वोच्च न्यायालय ने भारत सरकार और सभी राज्य सरकारों को अन्य पिछड़े वर्गों की सूची के बारे में लोगों की शिकायत और प्रस्तुतीकरण को लक्ष्य में लेकर उसमें आवश्यक सुधार या वृद्धि करने के लिए स्थायी तंत्र बनाने का आदेश दिया। इस आदेश के परिपालन से 1993 में पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग की रचना की गई। प्रसंग अनुसार उसकी रचना की जाती है। 1999 में भारत ने विशेषज्ञों की समिति बनाई थी। इस समिति ने अन्य पिछड़े वर्गों में विकसित व्यक्तियों को पहचानकर वर्ग को मिलनेवाले आरक्षण के लाभों से दूर रखा जा सके और जरूरतमन्द व्यक्ति वंचित न रह जाय।

गुजरात का अन्य पिछड़ा वर्ग

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सिवाय समाज के दूसरे कौन-कौन से स्तर के लोग सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े हैं। उसे निश्चित करने के लिए गुजरात सरकार ने 1972 में गुजरात हाईकोर्ट के निवृत्त मुख्य न्यायधीश और न्यायपंच के अध्यक्ष श्री ए. आर. बक्षी की अध्यक्षता में आयोग का गठन किया। इस पंच को बक्षीपंच के रूप में जाना जाता है। इस पंच ने विशषज्ञों की समिति बनाई। इस समिति के सदस्यों ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध गुजरात के समाजशास्त्री आई. पी. देसाई 'टेक्नीकल एरीया कन्सलटन्ट' के रूप मानद सेवा दी थी। गुजरात युनिवर्सिटी समाजशास्त्र विभाग की अध्यक्ष ताराबहन पटेल और उनकी टीम का योगदान महत्त्वपूर्ण था। बक्षीपंच निश्चित करने के लिए 'जाति' को इकाई के रूप में लिया गया था।

बक्षीपंच अलग-अलग समूहों की सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक परिस्थिति का अध्ययन करके अलग-अलग समूहों की प्रस्तुतीकरण सुनकर विविध धर्म की 82 जातियों को सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा मानने की संस्तुति की, 1976 में बक्षीपंच ने अपना विवरण गुजरात सरकार को प्रस्तुत किया। बक्षीपंच ने जिन जाति/वर्ग समूहों को सामाजिक और शैक्षणिक रूप में पिछड़ा माना उसे अंग्रेजी में Socially and Educationally Bakward Class (SEBC) कहते हैं। इस सूची में प्रसंगवश सुधार होते रहते हैं। इस अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए ''बक्षीपंच की जातियाँ'' जैसे शब्द भी प्रचलित हुए हैं। बक्षीपंच निश्चित करके ही 82 पिछड़ी जातियों को राज्य सरकार गुजरात में सरकारी अर्धसरकारी विभागों तथा शिक्षण संस्थाओं में आरक्षित स्थान दिया है। कई पिछड़ी जाति जिन्हें बक्षीपंच की सूची में समाहित नहीं किया गया है। वे जातियाँ स्वयं पिछड़ा होने का दावा प्रस्तुत करके स्वयं को सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ी जातियों की सूची में समाहित करने की माँग की है। इस कारण से गुजरात ने 1981 में सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन निश्चित करने के लिए न्यायमूर्ति श्री राणे की अध्यक्षता में पंच को नियुक्त किया। इस पंच को 'राणे पंच' के नाम से जाना जाता है।

इसके पश्चात् गोपालकृष्ण कमीशन और सुज्ञाबहन भट्ट कमीशन का समावेश होता है। 2004 तक गुजरात में 135 जितनी जातियों को अन्य पिछड़े वर्ग में समाहित किया गया है। वर्तमान में लगभग 145 जितनी जातियाँ इसमें समाविष्ट हैं। जिन्हें 27 % के आधार पर शिक्षण, नौकरी और राजनीतिक क्षेत्र में आरक्षण मिलता है। इन सभी क्षेत्रों में आमदनी की मर्यादा को ध्यान में रखा जाता है। अर्थात् कृमिलेअर में आनेवाले SEBC को आरक्षण का लाभ नहीं मिलता है।

इस प्रकार अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति अन्य पिछड़ा वर्ग के अलावा विचरती-विमुक्त जाति, अल्पसंख्यक समुदाय भी समाज में दिखाई देता है।

भारत का संविधान और अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग

लोकतांत्रिक भारत ने अपना महत्त्वपूर्ण संविधान स्वीकारा है। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर संविधान के ड्राफ्ट कमेटी के अध्यक्ष के रूप में अपनी भूमिका निभाई थी। संविधान को बनानेवालों ने भारत को एक सार्वभौम, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक और प्रजासत्तात्मक के रूप में संस्थापित करने के लिए गंभीरतापूर्वक संकल्प किया था। प्रत्येक नागरिक को न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारा मिलता रहे इसकी व्यवस्था की है।

संविधान में कई समूहों को विशेष लाभ लेने के लिए अलग व्यवस्था दी है। जैसेकि (1) अनुसूचित जाति (2) अनुसूचित जनजाति (3)सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े समूह। इसके पश्चात अल्पसंख्यकों के लिए भी कई विशेष व्यवस्था की गई है।

संविधान और अनुसूचित जातियाँ

अनुसूचित जातियों को संविधान में विशेष सुविधा दी गई है। सामाजिक अन्याय और शोषण में से संवैधानिक रूप से छूट दी गई है, इतना ही नहीं इसके लिए राज्य को जिम्मेदारी भी दी गई है।

संविधान के तीसरे भाग के उपरान्त नागरिकों को मूलभूत अधिकारों की कई व्यवस्था की गयी है इसके विषय में आप कक्षा-10 में पढ़ चुके हैं।

संवैधानिक व्यवस्था :

धारा : 14 से 17, 46, 330, 332, 334, 335

धारा : 14-कानून के समक्ष समानता

धारा : 15-धर्म, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के कारण भेदभाव का निषेध

धारा : 16-सार्वजनिक नौकरियों में अवसर की समानता

धारा : 17-अस्पृश्यता निवारण

धारा : 46-अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों की अभिवृद्धि

धारा : 330-लोकसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की आरक्षित सीट

धारा : 332-राज्यों की विधान सभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीट

धारा : 334-राजनीतिक आरक्षित बैठकों का 70 वर्ष के बाद समाप्ति।

धारा : 335-अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की सेवाओं और जगहों के लिए एक दावा

अनुसूचित जाति कल्याण योजनाएँ

भारत सरकार और गुजरात सरकार ने अनुसूचित जाति कल्याण योजनाएँ और कार्यक्रमों द्वारा उत्कृष्ट प्रवृत्तियों को हाथ में लिया है। विद्यार्थी मित्रो, आपको यह अवश्य जानना चाहिए कि सरकार द्वारा अनुसूचित जातियों की शिक्षा के लिए युनिफार्म, आश्रमशाला, छात्रालय, नि:शुल्कता, प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को प्रोत्साहन, अस्वच्छ व्यवसाय में रोके गए संरक्षकों के बालकों को शिष्यवृत्ति, छात्रालय, भोजनबिल, कम व्याज पर कर्ज, विदेश का प्रशिक्षण इत्यादि पर सरकार प्रोत्साहित करती है।

अनुसूचित जातियों के आर्थिक विकास के लिए किसानों को सहायता, लघुउद्योग के लिए कर्ज, स्वास्थ्य स्नातक, वकील को कर्ज के अलावा महिला उद्यमियों को सहायता दी जाती है।

इसके पश्चात अन्तरजातीय-विवाह प्रोत्साहन, गरीबी रेखा के नीचेवालों के लिए घर बनाना, सामूहिक विवाह को प्रोत्साहन, समूह बीमा और प्राकृतिक आपत्ति पर सहायता देना विचारा गया है।

भारत में आदिवासियों के विकास के लिए अनेक विकास योजनाएँ बनाई गई हैं।

आदिवासी विकास हेतु कार्यक्रम :

(1) अनुसूचित जनजाति को ध्यान में रखकर बने कार्यक्रम - 1951

(2) पंडित जवाहरलाल नहेरू द्वारा दिए गए पंचशील सिद्धान्त - 1956

(3) अनुसूचित जनजाति के विकास के लिए आदिवासी ब्लॉक बनाना - 1961

(4) गुजरात आदिवासी विकास निगम की स्थापना - 1972

(5) संकलित आदिवासी विकास प्रोजेक्ट - 1974

(6) गुजरात राज्य वन विकास निगम - 1976

(7) अनुसूचित जनजाति के परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाने हेतु गरीबी निवारण कार्यक्रम - 1982

(8) अनुसूचित जनजाति सहकारी बाजार संघ (वित्तीय संस्था) - 1987

(9) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति वित्त और विकास निगम - 1989

(10) अनुसूचित जाति-जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम - 1989

(11) पंचायतों में प्रतिनिधित्व सन्दर्भ संविधान की 73 और 74 संशोधन - 1993

(12) पंचायत के सन्दर्भ में (pesa) एक्ट जिसमें पंचायती राज संस्थाएँ और ग्रामसभा को आधारभूत रूप से अनुसूचित जनजाति की सहभागिता के विकास को सम्बल देना - 1996

(13) अभिगम परिवर्तन - कल्याण से विकास और जनजाति सशक्तिकरण - 1997

(14) न्यू गुजरात पैटर्न - 1998-99

(15) मिनिस्ट्री ऑफ ट्रायबल अफेयर्स स्थापना 1999

(16) वनबंधु कल्याण योजना - 2007

अन्य पिछड़े समूहों के लिए भारत और गुजरात में अनेक कल्याणकारी योजनाओं की संक्षिप्त सूचना :

- शैक्षणिक योजनाओं में आय मर्यादा को ध्यान में रखकर ट्यूशन की तथा परीक्षा शुल्क में से मुक्ति
- अनेक अभ्यासक्रमों के लिए छात्रवृत्ति
- गणवेश सहाय योजना
- कम ब्याज में कर्ज
- सरकारी छात्रालयों और आश्रमशालाओं में निवासी विद्यालय की सुविधा
- तेजस्वी विद्यार्थियों को प्रोत्साहन

आर्थिक योजनाएँ

(1) मानव गरिमा योजना के अन्तर्गत कुटीर उद्योग सहित स्वरोजगार के लिए वित्तीय सहायता

(2) कानून और चिकित्सा के स्नातकों के स्वतन्त्र व्यवसाय हेतु वार्षिक (चार प्रतिशत) 4 % ब्याज के दर से कर्ज।

(3) शिक्षण वर्गों एवं कम्प्यूटर के प्रशिक्षण के लिए मासिक स्टाइपेन्ड देने की योजना

(4) IAS/IPS के प्रशिक्षण के लिए स्टाइपेन्ड तथा पुस्तक खरीदने के लिए आर्थिक सहायता

आरक्षण नीति

समाज के कमजोर वर्ग के समूहों के लिए अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और पिछड़े समूहों के लिए रक्षा और विकास के लिए अनेक कल्याणकारी प्रवृत्तियों के बाद भी आरक्षण की व्यवस्था की गई है। आरक्षण की नीति समाज के कमजोर वर्गों के हित में रक्षित भेदभाव की नीति है। सामाजिक विषमता और न्याय की स्थापना के लिए कल्याणकारी कदम है।

इन सबके बाद अनेक प्रतियोगी परीक्षाओं में और सरकारी नौकरी में उम्र सीमा की छूट दी जाती है।

विद्यार्थी मित्रो, आपने देखा की समाज के कमजोर समूह को मजबूत करने का प्रयत्न हुआ है इसी प्रकार महिलाओं की सशक्तिकरण का प्रयत्न हुआ है जिसकी जानकारी अगले पाठ से प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखिए :

(1) अनुसूचित जनजाति की मुख्य लक्षण बताइए ?

(2) भारत में अनुसूचित जनजाति की सांस्कृतिक विविधता बताइए ?

(3) पिछड़ेपन के मुख्य मापदण्ड बताइए ?

(4) अनुसूचित जनजाति का वर्गीकरण लिखिए ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) अन्य पिछड़े वर्ग के बारे में टिप्पणी लिखिए ।

(2) आदिवासी विकास के कार्यक्रमों की संक्षिप्त रूपरेखा बताइए।

(3) अनुसूचित जाति की संवैधानिक व्यवस्था लिखिए।

(4) अनुसूचित जाति के विकास के लिए सरकारी योजनाओं की संक्षिप्त जानकारी लिखिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर लिखिए :

(1) टोटमवाद अर्थात् क्या ?

(2) जादू के प्रकार बताइए।

(3) वेरीयर ऐल्वीन भारतीय आदिम जाति की कला में कौन से दो वाद बताते हैं ?

(4) भारत की किसी चार आदिम जाति का नाम लिखिए।

(5) 'मण्डल आयोग' ने सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन निश्चित करने के लिए कौन–से त्रिविभागीय मापदण्ड बताए हैं ?

(6) भारत में पिछड़े वर्ग के लिए कितने प्रतिशत आरक्षण रखा गया है ?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) अनुसूचित जाति अर्थात् क्या ?

(2) अनुसूचित जनजाति की परिभाषा दीजिए।

(3) पिछड़ेपन का अर्थ बताइए ?

(4) आदिवासियों को संविधान में किस नाम से पहचाना जाता है ?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) भारत में 2011 की जनगणना के विवरण के आधार पर अनुसूचित जाति का प्रमाण कितना है ? ☐
(अ) 6.33 % (ब) 16.02 % (क) 7.14 % (ड) 15.65 %

(2) गुजरात में 2011 की जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति का प्रमाण कितना है ? ☐
(अ) 6.84 % (ब) 16.48 % (क) 6.33 % (ड) 7.10 %

(3) अनुसूचित जाति का सबसे अधिक प्रमाण किस राज्य में है ? ☐
(अ) पंजाब (ब) अरुणाचल (क) मेघालय (ड) बिहार

(4) आदिवासियों की संख्या की दृष्टि से भारत विश्व के किस क्रम में आता है ? ☐
(अ) तृतीय (ब) द्वितीय (क) प्रथम (ड) चतुर्थ

(5) भारत की आदिमजाति की जनसंख्या का वर्गीकरण किसने दिया है ? ☐
(अ) डॉ. वेरिअल एलविन (ब) डॉ. वृजराज चौहान
(क) मैलिनोवोस्की (ड) मजुमदार

(6) टोटमवाद किसमें दिखाई देता है ? ☐

(अ) अनुसूचित जाति (ब) अनुसूचित जनजाति

(क) सवर्ण (ड) अन्य पिछड़ावर्ग

(7) मण्डल कमीशन में भारत के किस समाजशास्त्री को कार्यभार सौंपा गया था ? ☐

(अ) आई. पी. देसाई (ब) अक्षय कुमार देसाई

(क) एम. एन. श्रीनिवास (ड) ताराबहन पटेल

(8) गुजरात में अन्य पिछड़े वर्ग के लिए 1979 में कौन-सा कमीशन बनाया गया ? ☐

(अ) कालेलकर कमीशन (ब) बक्षी कमीशन

(क) राणे कमीशन (ड) मंडल कमीशन

क्रिया-कलाप

- अपने वर्ग के विद्यार्थियों का जाति आधारित वर्गीकरण कीजिए।
- आपके विद्यालय में पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों को मिलनेवाली शैक्षणिक और आर्थिक सहायता का कोष्ठक बनाइए।
- अपने गाँव के पिछड़े वर्गों के निवास का नक्शा बनाइए।
- अपनी जाति का इतिहास ज्ञात कीजिए।
- गुजरात सरकार की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्गों के लिए बनाई गई अनेक योजनाओं को बताइए।

●

4 महिला सशक्तिकरण

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, पाठ-3 में आपने समाज के समूहों के विषय में जानकारी प्राप्त की थी, एक समय ऐसा था कि जब स्त्रियों को अबला माना जाता था। परन्तु वर्तमान समय में स्त्री शसक्त बनती जा रही है। महिला सशक्तिकरण के संन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि, ''विश्व के कल्याण के लिए महिलाओं की स्थिति जब तक सुधरेगी नहीं तब तक विकास का कोई अवसर नहीं मिल सकता, कीर्सी भी पक्षी का एक पंख से उड़ना असम्भव बन जाता है,'' अपने समाज में ऐसा ही कुछ हुआ है और इसी प्रकार महिलाओं को अधिकार प्रदान करने के अवसर पर समग्र विश्व का ध्यान आकर्षित किया है। स्त्रियों के अधिकारों को स्वतंत्र, समाज और न्यायिक रूप से लाभ देना स्त्री शसक्तिकरण का प्रथम चरण है। इस विषय की कल्पना, लक्षण और महत्त्व को देखना आवश्यक है। भारत में अनेक विषयों में जैसे लिंग अनुपात से जुड़ा है, जैसे - जैसे महिलाओं के बारे में सोच बदलती गई उनके विकास के लिए अभिगम बदलता रहा है और विकास की राह में शामिल किए गए ऐसे शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और स्वास्थ्य के क्षेत्र में सशक्तिकरण बढ़ने लगा है। भारत का संविधान नियम तथा स्त्रियों के बारे बनी अनेक कल्याण योजना कार्यक्रमों के कारण महिला सशक्तिकरण को वेग मिला है। विद्यार्थी मित्रो, इस पाठ में हम सशक्तिकरण, महिला सशक्तिकरण का अर्थ और उसके लक्षण, महत्त्व भारत में लिंग, अनुपात स्त्री-सशक्तिकरण के लिए अनेक कार्यक्रम, कल्याणकारी योजनाए और स्त्रियों के बारे कानूनी जानकारी प्राप्त करेंगे।

महिला-सशक्तिकरण का अर्थ :

सशक्तिकरण अर्थात् Empowerment. इस शब्द की उत्पत्ति 1970 के दशक में लैटिन अमेरिका में शिक्षा की चर्चा में हुई थी ऐसा इवलिन हस्ट लिखते हैं। नारीवादी विचारकों और कर्मयोगियों ने इस दर्शन को आगे बढ़ाया। 1980 के पश्चात् इस दर्शन का अत्यधिक उपयोग होने लगा।

भारत के समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह लिखते हैं कि, सशक्तिकरण की धारणा विशालता को सूचित करती है। सशक्तिकरण की धारणा काला और सीमान्त समूह का सामाजिक आन्दोलन की विचारधारा से पैदा हुई है। उसमें संशाधनों की उपलब्धि, व्यवसाय, शिक्षण, स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भारत के सन्दर्भ में महिला सशक्तिकरण के लिए आन्दोलन और विचारशैली, स्वतन्त्रता आन्दोलन और महिला-मुक्ति के सन्दर्भ में दिखाई देता है।

सशक्तिकरण अर्थात् Empowerment में Power अर्थात् सत्ता निर्णय लेने की प्रक्रिया के प्रति उदार विचारयुक्त गहरा सम्बन्ध महिला सशक्तिकरण में शक्ति (Power) महत्त्व का है जिसमें बल और प्रभाव जुड़े हुए हैं।

सरल शब्दों में कहें तो, महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं में इस प्रकार की शक्ति होना जो स्वयं के जीवन निर्वाह हेतु अपनी इच्छानुसार कार्यक्षम और स्वतन्त्र है।

रेणुका पामेया — ''महिला सशक्तिकरण अर्थात् सामाजिक न्याय और समता अथवा महिला की स्वतन्त्र पहचान अथवा उसे मनुष्य रूप में स्वीकार करना।''

सुशीला पारिख — ''महिला सशक्तिकरण अर्थात् महिलाओं का शक्तिसम्पन्न होना। शक्ति और साधन दोनों जीवन की गुणवत्ता के साथ जुड़ी अवधारणा है।''

इस प्रकार महिला सशक्तिकरण परिवर्तनशील और बहुआयामी अवधारणा है जिसमें महिलाओं की स्वयं की छाप एवं सामाजिक छाप में परिवर्तन लाता है। महिला को एक व्यक्ति मानकर उसे सशक्त बनाना, निर्णय में शामिल करना, सत्ता और पद देना और उनकी शक्तियों को स्वतन्त्र रूप से विकास करने देना यह उसके मूल जड़ हैं।

चन्द्रिका रावल ने महिला सशक्तिकरण को समझाते हुए उनके लक्षण निम्नलिखित बताये हैं :

- यह एक प्रक्रिया है।
- इस प्रक्रिया में महिलाओं को स्वयं का स्थान और आराम मिलता है।
- यह प्रक्रिया महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से किए गए प्रयत्नों की शृंखला है।

- यह महिलाओं के अधिकारों की अनुभूति कराता है।
- यह सत्ता की नई संकल्पना है।
- यह सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।
- यह महिलाओं की चेतना, अनुभव, विचार, व्यवहार के साथ जुड़ी है।
- यह महिलाओं के बारे में परम्परागत मान्यताओं को बदलता है।
- यह पुरुष विरोधी नहीं, महिलाएँ समाज में अपने आत्म गौरव और आत्म विश्वास से आगे बढ़ें, ऐसा लक्ष्य होता है।

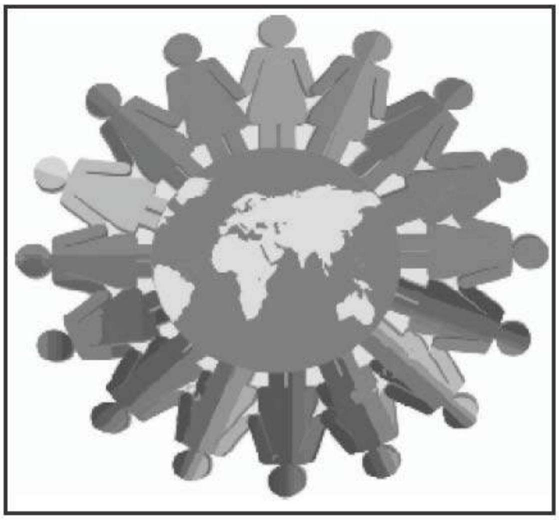

महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण का महत्त्व

भारतीय समाज के सामाजिक जीवन में सामाजिक , आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, कानूनी इत्यादि क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण का विशेष महत्त्व है।

(1) व्यक्तिगत महत्त्व :

विविध क्षेत्रों के उपरान्त व्यक्तिगत रूप से महिलाओं में जागृति आए प्रश्नों और चुनौतियों का सामना कर सकें, कुशलता का विकास हो सके, निर्णय की सत्ता प्राप्त हो और महिलाएँ अपना मूल्य समझकर सामाजिक विकास में योगदान दे सकें। सम्मान, समझदारी और स्वाभिमान प्राप्त कर सकें तथा अन्याय को गम्भीरता पूर्वक दूर करने का प्रयास कर सकें, ऐसे कई मुद्दे महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक हैं।

(2) सामाजिक महत्त्व :

महिला सशक्तिकरण समाज में महिलाओं के प्रति हीन भावना को दूर करता है। महिलाओं को सम्मान देने का प्रयत्न करता है। इस सन्दर्भ में महात्मा गांधीजी ने कहा है कि, ''यदि हमें भारत देश का विकास करना हो तो सबसे पहले भारतीय नारी का विकास करना पड़ेगा क्योंकि महिला के द्वारा परिवार, परिवार के द्वारा समाज और समाज के द्वारा राष्ट्र बनता है 'महिला' ये समाज की मूलभूत इकाई है।''

महिला सशक्तिकरण समाज में स्त्रियों के प्रति अन्याय शोषण से मुक्ति देकर स्वतन्त्रता की तरफ ले जाने की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके लिए आन्दोलन भी हुए हैं। महिला संगठन और सामाजिक सुधारकों ने सामूहिक चेतना पैदा की है।

सशक्तिकरण महिलाओं के अपने स्थान में परिवर्तन लाने और बालकों को योग्य समाजीकरण करके सक्षम बनाने में उपयोगी है। यह नेतृत्व भक्ति और आत्मविश्वास बढ़ाए इसके लिए आवश्यक है।

(3) शैक्षणिक महत्त्व :

महिला सशक्तिकरण शिक्षण में आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा के द्वारा महिलाएँ मनपसन्द क्षेत्र में शिक्षा ले करके स्वयं की ध्येय, सिद्धि और सफलता प्राप्त करके आत्मविश्वासी होकर, स्वावलम्बी होकर, समर्थ बनती हैं।

शिक्षा में महिलाओं को मिलनेवाली विशेष सुविधाएँ महिला सशक्तिकरण को गतिशील बनाती हैं। महिलाओं के परम्परागत व्यवहार को बदलने में शैक्षणिक सशक्तिकरण ऐसा माध्यम है जो उसे सच्चे मार्ग की तरफ ले जाता है। महिलाओं में व्यवसायिक कुशलता बढ़ाने के लिए सशक्तिकरण आवश्यक है।

(4) आर्थिक महत्त्व :

किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए आर्थिक सशक्तिकरण आवश्यक है। महिलाओं को सम्पत्ति में समान अधिकार देना, उसके लिए जागृत करना, अर्थोपार्जन करनेवाली महिलाओं पर उनका अधिकार रहे, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी रहे इसलिए सशक्तिकरण आवश्यक है।

विद्यार्थी मित्रो, आप तो जानते हो कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त गुजरात की SEWA (Self Employed Women Association-सेल्फ इम्पलायड वुमन एसोशियेसन) जैसी अनेक संस्थाओं ने महिलाओं के आर्थिक स्वावलंम्बन के लिए गरिमामयी कार्य किए हैं।

जो महिलाएँ खेती, गृह उद्योग या स्वरोजगार से जुड़ी हैं। उन्हें उनके कार्य हेतु योग्य लाभ मिले और उनके आर्थिक योगदान की गणना भी हो इसके लिए सशक्तिकरण आवश्यक है। आर्थिक सशक्तिकरण बढ़ने से वेतन में समानता आएगी। जातिगत भेदभाव दूर होंगे महिलाओं की बचत योजनाएँ बढ़ेगी इस प्रकार सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए सशक्तिकरण आवश्यक है।

(5) राजनैतिक महत्त्व :

सशक्तिकरण का सम्बन्ध राजनैतिक क्षेत्र से जुड़ा है। भारतीय संविधान के आर्टिकल 14, 15 और 16 में राज्य ने महिला–पुरुष समानता का अधिकार स्त्री पुरुष लिंग भेद के सामने प्रतिबन्ध तथा रोजगारी के अवसर में समानता का अधिकार दिया है। ऐसा होते हुए भी इसका वास्तविक स्वरूप अलग दिखाई देता है। लेकिन स्थानीय स्वराज की संस्थाओं में महिला आरक्षण की व्यवस्था के कारण महिलाओं को राजनैतिक सशक्तिकरण का अवसर दिया गया है। मत देना, उम्मीदवार बनना, विजयी होकर सत्ता में भागीदार बनना इत्यादि स्त्री सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है। इसकी विस्तृत जानकारी पाठ–8 में मिलेगी।

इसके पश्चात् भारत में महिलाओं के बारे में विशेष नियम द्वारा महिला सशक्तिकरण का प्रयास किया गया है। महिलाओं में स्वास्थ सम्बन्धित जागररूकता आए। इसके लिए भी महिला सशक्तिकरण आवश्यक है।

भारत में लिंगानुपात :

प्रति एक हजार पुरुष पर स्त्रियों की संख्या लिंग अनुपात दर्शाते हैं। जीव विज्ञान की दृष्टि से महिलाएँ पुरुषों से अधिक मजबूत होने के कारण अधिक समय तक जीवित रहती हैं। लेकिन कई परिबलों के कारण समाज में स्त्री–पुरुष के प्रमाण में अन्तर दिखाई देता है। जिससे लिंग अनुपात और असमान लिंग प्रमाण की समस्या सर्जित होती है।

भारत और गुजरात में प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों का अनुपात

वर्ष	लिंग अनुपात	
	भारत	गुजरात
1901	972	954
1951	946	952
2011	940	918

(स्रोत : Gender composition of population provisional population totals India - Page - 80.)

उपर्युक्त सारणी पर से हमें भारत और गुजरात का लिंग अनुपात अनुक्रम दिखाई दिया।

भारत : स्वतन्त्रता से पहले – 1901 में प्रतिहजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या 972, स्वतन्त्रता के बाद वाले दशक में 1951 में 946 और अन्तिम जनगणना 2011 में 940 है। अर्थात् स्त्रियों की संख्या घटती जा रही है।

गुजरात : गुजरात का आँकड़ा देखें तो 1901 में 954, 1951 में 952 और 2011 में 918 है अर्थात् स्त्रियों की संख्या में लगातार असाधारण रूप से कमी आ रही है। 1951-2011 में 36 अंक की कमी बताती है जो समाज के लिए चिन्ताजनक बात है।

विद्यार्थी मित्रो, भारत और गुजरात के 2011 के जनगणना के आधार पर ग्रामीण–शहरी लिंग अनुपात देखें :

भारत और गुजरात में ग्रामीण–शहरी लिंग अनुपात

भारत/गुजरात	कुल	ग्रामीण	शहरी
भारत	940	947	926
गुजरात	918	947	880

(संदर्भ : जनगणना, भारत – गुजरात, 2011)

उपर्युक्त सारणी पर से देख सकते हैं कि भारत में और गुजरात में सामान्यत: स्त्री–पुरुष के अनुपात में अधिक अन्तर (अनुक्रम 940 और 918) होने के बावजूद दोनों जगहों के ग्रामीण विस्तार में इनकी मात्रा 947 है। दूसरी तरफ देश की अपेक्षा गुजरात में स्थानान्तरण की प्रक्रिया और उनमें भी एकल पुरुष स्थानान्तरण की प्रक्रिया प्रभावी

होने के परिणामस्वरूप राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में (947) और शहरी विस्तार में (880) एक बड़ा अन्तर दिखाई देता है।

विद्यार्थी मित्रो, आपने भारत और गुजरात में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं का अनुपात देखा। ग्रामीण-शहरी आँकड़ों की सूचना भी प्राप्त की, अब 0-6 वर्ष समूह के लिंगानुपात को देखें तो लगभग सभी राज्यों में और केन्द्र शासित प्रदेशों में चिन्ताजनक है। 2011 की जनगणना के आधार पर भारत में लड़कियों की संख्या 914 है। गुजरात में 890 है। सबसे अधिक संख्या मिज़ोरम में (971) है। जबकि सबसे कम संख्या पंजाब में (846) है।

भारत के अनेक राज्यों में महिला-पुरुष की घटती-बढ़ती संख्या समाज में लिंग अनुपात की असमानता पैदा की है जिसके लिए प्राकृतिक जैवीय कारक, स्थानान्तरण और महिलाओं के प्रति सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण जिम्मेदार है। प्रत्येक प्रांत इस असमानता को दूर करने के लिए अनेक कार्यक्रम तथा योजनाएँ बनाकर इस पर प्रभावशाली कार्य कर सकते हैं।

महिला सशक्तिकरण के लिए कार्यक्रम

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में, मूलभूत अधिकार, मूलभूत कर्तव्य और मार्गदर्शक सिद्धांत में लिंग समानता (Gender equality) का उल्लेख है। देश का संविधान महिलाओं को समानता प्रदान करता है, इतना ही नहीं राज्य की महिलाओं के हित में सकारात्मक निर्णय की सत्ता भी दी गई है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की विकासनीति पंचवर्षीय योजना में भी महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक कार्यक्रमों को समर्थन मिला है। पाँचवी पंचवर्षीय योजना में (1974-1978) विश्वभर में अन्तराष्ट्रीय महिला वर्ष (1976), दशाब्दी वर्ष 1976 से 1958 इसका समर्थन देता है। 1990 में भारतीय संसद ने कानून द्वारा महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग बनाया, 1993 में महिलाओं के सामने होनेवाले भेदभावों को लेकर इसे समाप्ति का सम्मेलन हुआ, इसके पश्चात् महिला समस्या निवारण हेतु स्वैच्छिक संस्थाएँ भी महिला सशक्तिकरण के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

विद्यार्थी मित्रो, महिला सशक्तिकरण के लिए कार्यक्रमों को विशिष्ट स्तर पर देख सकते हैं। यहाँ पर हम महिलाओं की सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति-2001 सन्दर्भ में मूल्यांकन करेंगे। गुजरात नारी गौरव नीति बनाई गई है, इन दोनों नीतियों में महिला सशक्तिकरण के कई मुद्दे जुड़े हैं, जिसका उद्देश्य महिलाओं की सत्ता, उत्कर्ष और विकास है। आपके पाठ्यक्रम के दृष्टिकोण से शैक्षणिक, आर्थिक, स्वास्थ्य लक्षीय कार्यक्रम उसी प्रकार कल्याणकारी योजनाओं की चर्चा करेंगे।

(1) शैक्षणिक कार्यक्रम :

गाँधीजी ने कहा कि ''यदि आप एक लड़के को शिक्षा दे रहे हैं तो एक व्यक्ति शिक्षित होगा, लेकिन यदि एक लड़की को शिक्षा देते हैं तो पूरे परिवार को शिक्षित करते हैं।''

स्वतन्त्र भारत में संविधान के द्वारा स्त्री-पुरुष में समानहेतु महिला शिक्षा पर जोर दिया गया है। महिलाओं के सन्दर्भ में सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति में भी स्त्री-शिक्षण की आवश्यकता को स्वीकारा गया है। स्त्री-शिक्षा को गति प्रदान करने के लिए भारत सरकार की तरफ से अनेक कार्यक्रम संचालित हैं। गुजरात के सन्दर्भ में कई कार्यक्रम हैं, देखें।

- **कन्या केलवणी रथयात्रा :** इसके द्वारा प्राथमिक शिक्षा में लड़कियों की प्रवेश दर वृद्धि हेतु गुणसुधारणा करने के लिए विद्यालय प्रवेशोत्सव सम्पूर्ण प्रदेश में जनसहभागिता के द्वारा किया जाता है।
- **तेजस्वी विद्यार्थियों का सम्मान :** कक्षा-10 और 12 की बोर्ड परीक्षा में परिश्रम और अच्छे दृष्टिकोण से क्रम प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों को सम्मानित करके शिष्यवृत्ति दी जाती है। इन विद्यार्थियों के साथ वार्तालाप करवाना खासकर अन्यछात्रों के साथ ताकि लड़कियाँ शिक्षा के प्रति अग्रसर हों।
- **सर्वशिक्षा अभियान :** स्त्री-शिक्षा को वेगवान करने के लिए सर्वशिक्षा अभियान के द्वारा कन्या केलवणी जागृति कार्यक्रम मनाते हैं। प्रचार-प्रसार माध्यमों का उपयोग करते हैं।
- **शाला लोकार्पण :** विशेषकर लड़कियाँ शिक्षा से वंचित न रह जाएँ इसलिए दूरस्थ गाँवों में विद्यालय बनाकर विद्यालय में साधन-सामाग्री देकर स्त्री शिक्षण को वेग प्रदान करते हैं।

- **सायकिल वितरण :** उच्च प्राथमिक विद्यालय में अध्ययन करने की इच्छा रखनेवाली लड़कियों को जो गाँव से 3 किमी. दूरी पर विद्यालय जायें उनके लिए सायकिल वितरण करते हैं, यह शिक्षा में अवरोध दूर करने का अच्छा प्रयास है।
- **अनाज का वितरण :** आदिवासी क्षेत्रों में 1 में 7 कक्षा में पढ़ती और 70 % उपस्थिति वाली कन्याओं को प्रोत्साहित करें, उसी प्रकार संरक्षक नारी शिक्षा के प्रति सकारात्मक रुख रखें तथा वेग दें। निशुल्क अनाज वितरण का कार्यक्रम करके आदिवासी क्षेत्रों में ड्रोप-आउट दर कम किया जाता है।

इसके अलावा शिक्षा का अधिकार (RTE - Right to Education), सप्त धारा, गुणोत्सव जैसे कार्यक्रम करके उसमें कन्या शिक्षा का प्रभाव डाला जाता है।

इस प्रकार, शिक्षण सम्बन्धित कार्यक्रम में कन्या-शिक्षा पर भार देकर स्त्री सशक्तिकरण का प्रयास किया जाता है।

(2) आर्थिक कार्यक्रम :

महिला-सशक्तिकरण के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता अनिवार्य है। आर्थिक स्वावलम्बन व्यक्ति को समर्थशाली बनाता है। महिलाओं के स्वावलम्बन के लिए राष्ट्रीय नीति पर बल दिया गया है।

राष्ट्रीय नीति में आर्थिक कार्यक्रम :

राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रमों द्वारा महिलाओं को जाग्रत करके समर्थ देने का प्रयत्न है।

- असंगठित क्षेत्र में काम करनेवाली महिलाओं को रोजगारी के विषय में जानकारी देना।
- समान वेतन का ज्ञान।
- महिलाओं को बचत सम्बन्धित ज्ञान।
- आर्थिक कार्यों में असमान वितरण, निवारण
- निर्धारित काम करने के समय की जानकारी
- कार्य स्थल पर सुरक्षा के समय की जानकारी।
- संगठित क्षेत्रों में अर्थोपार्जन हेतु आवश्यक योग्यता का ज्ञान।

इत्यादि कार्यक्रम करके स्त्रियों को आर्थिक सशक्तिकरण में लाना है।

गुजरात में भी अनेक कार्यक्रम किए जाते हैं।

प्रशिक्षण वर्ग : घर के पास साग-सब्जी उगाना, केनिंग (टेरेस गार्डेनिंग), किचन गार्डेनिंग के बारे में प्रशिक्षण वर्गों द्वारा महिलाओं को प्रशिक्षित करके स्वावलम्बी बनाना है।

व्यवसाय के क्षेत्र : महिलाओं को संगठित और असंगठित क्षेत्र के व्यवसाय और रोजगार के कार्यक्रम की सूचना देनेवाले कार्यक्रम शामिल करके कुशलता में वेग देना है।

प्रदर्शन-बिक्री : राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शन-बिक्री के कार्यक्रम द्वारा स्व:रोजगार, लघु या छोटे कुटीर उद्योग के साथ जुड़ी महिलाओं को प्रोत्साहित करना है, ''हुनर से रोजगार'' का मुख्य केन्द्र होता है।

कृषिरथ मेला : कृषि व्यवसाय से जुड़ी महिलाओं को शामिल करके कृषि सम्बन्धित जानकारी दी जाती है जिससे उत्पादन में वृद्धि और श्रम में कमी करके अधिक रोजगार प्राप्त करना है।

महिला समूह और रोजगार कार्यक्रम : महिलाओं के आर्थिक स्वावलम्बन को वेग देने के लिए सखी-मंडल, महिला समूहों को सरकार की अनेक योजनाओं की जानकारी देने के लिए कार्यक्रम किया जाता है। जिसमें विशेषकर बाजार व्यवस्था, कर्ज की योजनाएँ, बचत योजनाएँ इत्यादि के बारे में जानकारी देना है।

इस तरह, आर्थिक क्षेत्रों में कार्यक्रम करके महिला सशक्तिकरण का प्रयास किया जाता है।

(3) स्वास्थ्य लक्षीय कार्यक्रम :

भारत सरकार की महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति विशेष बल दिया है।

भारत सरकार का स्वास्थ विभाग तथा महिला और बाल-विकास मंत्रालय महिला स्वास्थ सम्बन्धित कार्यक्रम करके स्वास्थ से जुड़ी जानकारी के लिए निम्नलिखित प्रयत्न कर रही है :

सामाजिक कुरीतियाँ और महिला स्वास्थ्य : समाज में कुरीतियों के कारण यदि महिलाओं के गिरते स्वास्थ्य के विषय में ज्ञान देनेवाले कार्यक्रम किए जाते हैं। उदाहरण; बाल विवाह से स्वास्थ्य को खतरा, बिना नियम के लिंग परीक्षण से होनेवाली तकलीफे।

मातृ कल्याण कार्यक्रम : स्त्रियों को गर्भधारण, स्तनपान तथा शिशु पालन की वैज्ञानिक जानकारी देकर महिलाओं के स्वास्थ्य की रक्षा की जाती है।

परिवार कल्याण कार्यक्रम : मर्यादित परिवार का आकार, माता और बालक के कल्याण संबंधित कार्यक्रम के बारे में ज्ञान देनेवाले कार्यक्रम बनाकर, महिलाओं को परिवार नियोजन के बारे में वैज्ञानिक तरीके से समझना तत्पश्चात प्राथमिक स्वास्थ केन्द्र की उपयोगिता उसी प्रकार परम्परागत प्रसूति प्रणाली की हानियों को समझानेवाला कार्यक्रम करना।

पोषक आहार से जुड़े कार्यक्रम : महिलाओं में कुपोषण की मात्रा कम करने के लिए Nutrition Week के द्वारा पौष्टिक आहार की जानकारी हेतु कार्यक्रम बनाना, विशेषकर रोग प्रतिरोधी दवाएँ शक्ति वर्धक आहार के विषय पर जागृति लाने का प्रयास करना है।

गुजरात में भी उपर्युक्त कार्यक्रम के अलावा महिला स्वास्थ्य लक्षीय कार्यक्रम हो रहा है। जैसेकि,

बेटी बचाओ, बेटी वृद्धि अभियान : समाज में उत्पन्न लिंग अनुपात के असंतुलन को दूर करने के लिए कन्या जन्म को स्वीकार करके महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जाग्रति के दरम्यान रैली, नाटक, शिबिर, सेमिनार, कानफेरेन्स, परिसंवाद, चर्चा जैसे कार्यक्रम किए जाएँ।

जाग्रति के कार्यक्रम : महिला स्वास्थ्य सम्बन्धित संकुचित मानसिकता में परिवर्तन हेतु जागृति के कार्यक्रम करना विशेषकर ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में महिलाओं से जुड़ी स्वास्थ्य सम्बन्धित संकुचित विचारधारा बदलने के लिए स्वास्थ्य केन्द्र में वृद्धि करना, स्वास्थ्य अधिकारियों द्वारा जनजागरण कार्यक्रम करना है।

इस तरह, स्वास्थ्य सम्बन्धित कार्यक्रमों द्वारा महिलाओं के स्वास्थ्य का सशक्तिकरण किया जाता है।

महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा, आर्थिक तथा स्वास्थ्यलक्षी कार्यक्रम बनाए गए हैं। उसके द्वारा महिला सशक्तिकरण का प्रयास करते हैं, जिसमें सरकारी एवं व्यक्तिगत स्वास्थ्य संस्थाएँ भी हिस्सेदारी करती हैं।

(4) कल्याणकारी योजनाएँ :

भारत का संविधान ''सभी का कल्याण'' के उद्देश्य से अभिप्रेत है। राष्ट्र तथा राज्य की नीतियों में नागरिक कल्याण संबंधित योजनाओं की व्यवस्था पर बल दिया गया है।

गुजरात में महिलाओं के लिए कई महत्त्वपूर्ण योजनाएँ

गुजरात में महिला सशक्तिकरण के लिए बनी कल्याणकारी योजनाओं पर दृष्टिपात करें तो :

(1) शिक्षा का क्षेत्र :

गुजरात में 2011 की जनगणना की दृष्टि से कुल साक्षरता दर 78.03 % है। जिसमें पुरुष-महिला साक्षरता दर 85.75 % और महिला साक्षरता दर 69.68 % है। गुजरात में ग्रामीण साक्षरता दर 61.4 % और शहरी साक्षरता दर 81.0 % मिलती है। महिला साक्षरता दर सुधारने के लिए कई योजनाएँ तैयार करके उसे प्रभावी करने का प्रयास हो रहा है।

इन योजनाओं की सूची निम्नानुसार है :

- विद्यालक्षी बॉन्ड
- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय
- आदिवासी कन्या संरक्षक को अन्न सहायता
- कन्या सैनिक विद्यालय की छात्राओं को शिष्यवृत्ति, गणवेश और प्रशिक्षण

- छात्राओं को नि:शुल्क शिक्षा
- छात्राओं के लिए छात्रावास
- सायकिल सहायता
- सरकारी पॉलीटेक्निक में अध्ययनरत छात्रा एवं सरकारी इंजीनीरिंग कॉलेज में पढ़ती बालिकाओं के लिए हॉस्टल की सुविधा का प्रावधान है।
- आदिवासी विस्तारों में सरकारी पॉलीटेक्निक या इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़नेवाली कन्याओं को छात्रावास सुविधा।
- विद्या साधना योजना

शैक्षणिक योजनाएँ

- एस. एस. सी. के बाद अध्ययन के लिए अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए छात्रवृत्ति इत्यादि योजनाओं द्वारा महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि करना है।

(2) आर्थिक क्षेत्र :

2011 की जनगणना के आधार पर गुजरात में काम-काज में सहभागिता की कुल दर 40.98 % है। जिसमें पुरुषों का हिस्सा 57.16 % और महिलाओं की हिस्सेदारी 23.38 % है।

गुजरात में संगठित क्षेत्र में कार्य करने वाली स्त्रियों में से संगठित क्षेत्र में 57.47 % स्त्रियाँ तथा निजी संगठित क्षेत्र में 42.53 % स्त्रियाँ कार्य करती हैं। स्त्रियाँ की कामकाज में हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए निम्नलिखित कई योजनाओं को बनाया गया है।

- महिलाओं के लिए प्रशिक्षण योजना
- महिलाओं के लिए विशेष रोजगार कार्यालयों की स्थापना
- मिशन-मंगलम योजना
- आजीविका केन्द्र, ग्रामीण विस्तारों में स्वं-सहायक समूह फेडरेशन की योजना
- माता यशोदा योजना
- घर दीवडा योजना
- वर्किंग वुमेन हॉस्टल सुविधा योजना
- महिला संचालित ग्राम दूध उत्पादक मंडली, महिला पशुपालकों के लिए प्रोत्साहक सहायक योजना, इन योजनाओं को प्रभावी करके महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण किया जाता है।

(3) स्वास्थ्य क्षेत्र :

किसी भी राष्ट्र या राज्य में गुणत्तायुक्त जनसंख्या पर बल दिया जाता है। जन्म-मृत्युदर का अनुपात, स्वास्थ्य और स्वास्थ्य वर्धक आहार, लिंग अनुपात इत्यादि को लक्ष्य में रखकर योजनाएँ बनाई जाती हैं। गुजरात में स्वास्थ्य सुविधा के लिए कई योजनाए बनाई गई हैं। जो निम्नलिखित हैं :

- चिरंजीवी योजना
- ई-ममता
- बेटी, वृद्धि योजना
- कस्तूरबा पोषण सहायक योजना
- जननी सुरक्षा योजना
- दीकरी योजना
- आशा वर्कर के लिए प्रोत्साहन योजना
- नर्सिंग विद्यालय में अध्ययनरत छात्राओं को स्टाइपेन्ड

- माता और बाल अस्पताल के लिए सहायता
- किशोरी शक्ति योजना
- राजीव गाँधी बालिका समृद्धि योजना–सबला
- इंदिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना

इत्यादि योजनाओं द्वारा महिलाओं का स्वास्थ सुधार करने का प्रयास किया जाता है।

(4) सामाजिक क्षेत्र :

गरीब वर्ग की महिला उत्कर्ष के लिए गुजरात में सामाजिक कल्याण के लिए निम्नलिखित योजनाएँ बनाई गई हैं :

- भगवान बुद्ध राज्य शिष्यवृत्ति
- डॉ. अम्बेडकर सरकारी छात्रावास
- डॉ. सविता अम्बेडकर अन्तर्जातिय विवाह प्रोत्साहन योजना में सहायता
- कुँवरबाई मामेरु / मंगलसूत्र योजना
- माई रमाबाई अम्बेडकर सात फेरा समूहलग्न योजना
- महिलाओं के लिए सिलाई वर्ग का प्रशिक्षण और साधन सहायक योजना
- सरस्वती साधना योजना
- विकलांग विधवा मकान सहायक योजना
- विधवा–पेन्शन योजना
- विधवाओं के लिए आर्थिक पुनर्वसन के लिए प्रशिक्षण और साधन योजना
- बलात्कार से ग्रसित महिला के लिए आर्थिक लाभ योजना
- विविधलक्षी महिला कल्याण योजना
- अभयम–181 महिला हेल्पलाइन योजना
- सरकारी महिला आश्रय गृहसुधार योजना
- मानसिक रूप से अस्थिर अथवा HIV/AIDS ग्रस्त महिलाओं के लिए आश्रयगृह योजना
- मुख्यमंत्री महिला पानी समिति प्रोत्साहन योजना
- सुरक्षा सेतु योजना
- समरस महिला ग्राम पंचायत की सहायक योजना

इत्यादि द्वारा समाज में वंचित या कमजोर वर्ग की महिलाओं की सहायता करके मजबूत करना है।

(5) खेल-कूद के क्षेत्र :

महिलाओं के शारीरिक, मानसिक विकास के लिए महिला खिलाड़ियों को प्रोत्साहन देने के लिए गुजरात में अनेक योजनाएँ बनाई गई हैं। जो निम्नलिखित हैं :

- महिला आत्मरक्षा के लिए योजना – 'चुनौती'
- महिला खिलाड़ियों को शिष्यवृत्ति
- अनुसूचित जाति की महिला खिलाड़ियों की पुरस्कार योजना

इत्यादि प्रोत्साहन योजनाओं द्वारा स्व–सुरक्षा के उद्देश्य से महिलाओं में खेलकूद क्षेत्र में भागीदारी बढ़ाई गई है।

सरकार की ऐसी प्रोत्साहक योजनाएँ और कार्यक्रम द्वारा महिला सशक्तिकरण किया गया है। जिसमें सरकार के पश्चात् गैर सरकारी स्वायत्त संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

महिलाएँ और कानून

विद्यार्थी मित्रो, आपने महिला सशक्तिकरण के लिए कार्यक्रम तथा कल्याणकारी योजनाएँ देखी, अब हम महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए बनाए गए महिला लक्षी कानूनों की जानकारी को तीन विभागों में बाँटकर समझेंगे।

(1) महिलाओं के संवैधानिक अधिकार :

संवैधानिक कानून किसी देश का मूलभूत कानून कहा जाता है। भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए महिलाओं के स्तर को सुधार करनेवाले कानूनी व्यवस्था करके स्त्री-पुरुष का समान स्तर द्वारा महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्था की गई है अर्थात् महिलाओं को संवैधानिक अधिकार दिया गया है। जिसमें जीवन का अधिकार वयस्क उम्र पर विवाह करना स्वयं चयनित विवाह करना, तलाक प्राप्त करना, पुनर्विवाह करना, पति और पिता की सम्पत्ति से विरासत से हिस्सा प्राप्त करना, परित्यागता के रूप पति के पास से भरण-पोषण प्राप्त करना, अत्याचार से बचने के लिए पति से अलग रहना, अपनी कमाई तथा स्त्री धन पर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त करना, गरीब वर्ग की महिलाओं के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता देना, शोषण करनेवाली प्रथाओं के सामने सुरक्षा प्राप्त करना, शिक्षा व्यवसाय और राजनीति में आरक्षण की बैठक द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त करना इत्यादि समाहित है।

(2) महिला को सुरक्षा प्रदान करनेवाला कानून :

महिलाओं के जैविक सामाजिक-सांस्कृतिक आर्थिक क्षेत्र में सशक्तिकरण के लिए सुरक्षात्मक कानून बनाया गया है। हम उसमें से कुछ कानूनों की जानकारी संक्षिप्त में प्राप्त करेंगे :

कानून	वर्ष	कानून का उद्देश्य
अनैतिक व्यापार निरोधक कानून	1956	लैंगिक शोषण के सामने रक्षा
दहेज उन्मूलन कानून	1961	दहेज के प्रभाव को खत्म करना
गर्भपात से लगा कानून	1971	महिला के जीवन और गौरव की रक्षा
वीभत्स प्रदर्शन पर रोक लगानेवाला कानून	1986	महिला को अपमानजनक या तुच्छ रीति से दिखाने के सामने रक्षा हेतु
सती प्रथा उन्मूलन कानून (यह कानून सर्वप्रथम 1829 में बनाया, तत्पश्चात् इसे पूर्ण समाप्त करके, नए रूप में 1987 में बनाया गया है।)	1987	विधवा महिला के जीवन जीने की सुरक्षा हेतु
पारिवारिक हिंसा निवारण कानून	2005	महिला को घरेलू हिंसा से सुरक्षा हेतु
कार्य स्थल पर महिलाओं को लैंगिक शोषण रोकने के लिए कानून	2013	कार्य स्थल पर महिलाओं की लैंगिक शोषण सुरक्षा के लिए कानून

ऊपर लिखित सारिणी में दिखाने के बाद भी अन्य सुरक्षात्मक कानून हैं। जो महिलाओं के स्तर को क्षति पहुँचाने वाली घटनाओं से सुरक्षा प्रदान करने हेतु महिला सशक्तिकरण को वेगवान बनाया है।

(3) महिला कल्याणकारी कानून :

भारत एक कल्याणकारी राज्य है। इस आदर्श को ध्यान में रखकर महिला कल्याणकारी कानून बनाया गया है। आपने इनमें से कई कानूनों की व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किया।

कानून	वर्ष	कानून का उद्देश्य
फैक्टरी एक्ट	1948	महिलाओं के काम के घंटे को निश्चित करना, बच्चे की सुरक्षाघर व्यवस्था
कामदार राज्य वीमा कॉर्पोरेशन कानून	1948	कामदार महिलाओं के लिए प्रसूति तथा बीमा का लाभ देना
बीड़ी और सिगार कामदार कानून	1966	महिलाओं को रात्रि रोजगारी या नौकरी पर प्रतिबन्ध
समान वेतन धारा	1976	पुरुष समान वेतन देना
पारिवारिक न्यायालयी कानून	1984	महिलाओं को शीघ्रता से न्याय, बालकल्याण के लिए न्यायालय स्थापना
कानूनी सेवा सहायता से जुड़ा कानून	1987	गरीब वर्ग की स्त्री-पुरुष को निःशुल्क सहाय योजना
राष्ट्रीय महिला आयोग कानून	1990	महिलालक्षी कानून का असरकारक अमल हो

उपर्युक्त महिला कल्याण के नियम द्वारा महिला सशक्तिकरण में गति लाया है।

विद्यार्थी मित्रो, महिला सशक्तिकरण के बारे में इस पाठ से जानकारी प्राप्त हुई है। सशक्तिकरण के कारण महिलाओं के स्तर में परिवर्तन आाया है, यह देख सकते हैं। समाजशास्त्र में सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है, जिसकी जानकारी आगे के पाठ में मिलेगी।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखिए :

(1) महिला सशक्तिकरण की परिभाषा लिखिए, उसका महत्त्व बताइए।

(2) महिला सशक्तिकरण के लिए मुख्य कार्यक्रमों को लिखिए।

(3) गुजरात में महिलाओं की शैक्षणिक और आर्थिक क्षेत्र की योजनाएँ लिखिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) महिला सशक्तिकरण की अवधारणा समझाइए।

(2) महिला सशक्तिकरण के लक्षण लिखिए।

(3) गुजरात में महिलाओं के लिए स्वास्थ्यलक्षी योजनाएँ लिखिए।

(4) महिलाओं की सुरक्षा प्रदान करने वाले कानूनों पर टिप्पणी लिखिए।

(5) महिलाओं के संवैधानिक अधिकार लिखिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर लिखिए :

(1) भारत और गुजरात में 2011 की जनगणना के आधार पर ग्रामीण और शहरी लिंगानुपात बताइए।

(2) महिला कल्याणकारी कानून के पाँच नाम लिखिए।

(3) महिला सशक्तिकरण की परिभाषा लिखिए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) 'सशक्तिकरण' शब्द की उत्पत्ति कब हुई थी।

(2) लिंगानुपात अर्थात् क्या ?

(3) SEWA का पूरा नाम लिखिए।

(4) भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए नीतियाँ कब बनी थी ?

(5) महिलालक्षी नियम मुख्य रूप से किन तीन विभागों में बाँटा गया है ?

(6) फैक्टरी एक्ट कब बनाया गया था ?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) 1901 में भारत का लिंगानुपात क्या था ? ☐

(अ) 954 (ब) 946 (क) 972 (ड) 952

(2) सायकिल सहायता योजना का लाभ किसे दिया जाता है ? ☐

(अ) लड़कियाँ (ब) लड़के (क) दोनों (ड) वृद्ध

(3) सन् 2011 की जनगणन अनुसार भारत में सर्वाधिक लड़कियों की अनुपात किस राज्य में है? ☐

(अ) राजस्थान (ब) मिज़ोरम (क) तमिलनाडू (ड) उत्तरप्रदेश

(4) 2011 की जनगणना के आधार पर भारत में सबसे कम लड़कियों का अनुपात किस राज्य में है? ☐

(अ) मध्यप्रदेश (ब) बिहार (क) छत्तीसगढ़ (ड) पंजाब

(5) चिरंजीवी योजना किस प्रकार की योजना है ? ☐

(अ) शिक्षण (ब) आर्थिक

(क) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण (ड) सामाजिक न्याय और अधिकारिता

(6) 'कुँवर बाईनुं मामेरु' योजना किस विभाग में समाहित है ? ☐

(अ) सामाजिक न्याय और अधिकारिता (ब) आर्थिक

(क) शिक्षण (ड) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण

(7) गर्भपात कानून कब बनाया गया था ? ☐

(अ) 1961 (ब) 1955 (क) 1956 (ड) 1971

(8) महिला राष्ट्रीय आयोग का कानून कब बना ? ☐

(अ) 1990 (ब) 1954 (क) 1955 (ड) 1971

(9) कार्य स्थल पर महिलाओं का लैंगिक शोषण रोकने के लिए कानून कब बना ? ☐

(अ) 2005 (ब) 2013 (क) 1971 (ड) 1956

क्रिया-कलाप

- महिला सशक्तिकरण के लिए सरकार की अनेक योजनाओं की जानकारी प्राप्त कीजिए।
- अपने निवास क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण के बारे में जागृति कार्यक्रम रखिए।
- भारत की प्रसिद्ध महिलाओं का चार्ट तैयार कीजिए, उनके बारे में संक्षिप्त विवरण लिखिए।

●

5 परिवर्तन की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, पिछले पाठ में महिला सशक्तिकरण का अर्थ और महत्त्व, महिला सशक्तिकरण के कार्यक्रम और कानूनों का ज्ञान प्राप्त किया। अब इस पाठ में हम परिवर्तन की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया के बारे में समझेंगे।

परिवर्तन एक प्रक्रिया है। परिवर्तन अर्थात् बदलाव जो हो उससे थोड़ा अलग अर्थात् परिवर्तन। जब अधिक बदलाव होता है तब परिवर्तन दिखाई देता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रकृति की तरह ही समाज में लगातार परिवर्तन दिखाई देता है। निरंतरता और परिवर्तन प्रत्येक समाज का लक्षण होता है। सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन लगातार चलनेवाली घटना है। परिवर्तन की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया देखने में समाजशास्त्र को रस होता है। कारण सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में समाजशास्त्र महत्त्वपूर्ण परिणाम देता है। इतना ही नहीं वह समाज जीवन का महत्त्वपूर्ण विषय होने के कारण उसका ज्ञान मिलना चाहिए।

पहले लोग जमीन पर पलाठी मारकर बैठकर खाते थे अब डाइनिंग टेबल पर चम्मच और छूरी-कॉटा के द्वारा भोजन करते हैं। इसी प्रकार वसन्त पंचमी के बदले वेलेन्टाइन डे मनाते हैं। ये उदाहरण किस सांस्कृतिक प्रक्रिया का परिणाम है, ये आपको ज्ञात करना है ? अथवा समाजशास्त्र में ऊपर लिखित परिवर्तन दिखाने के लिए किस सिद्धान्त का उपयोग करते हैं ये आपको ज्ञात करना है।

मित्रो, आपने पश्चिमीकरण, संस्कृतिकरण, वैश्वीकरण उदारीकरण शब्दों से परिचित होंगे, लेकिन ये शब्द समाज में कैसे उपयोगी हैं ? ये शब्द परिवर्तन के स्रोत रूप में उसी प्रकार सामजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के ज्ञान को समझाता है, उसको स्पष्ट करना आवश्यक है। कारण यह है कि इस तरह की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को सामाजिक जीवन में, सामाजिक सम्बन्धों के ऊपर तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति में महत्त्वपूर्ण असर डालती है उसका अध्ययन आवश्यक है। उसी के भाग रूप में यहाँ पर हम सर्व प्रथम सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के क्षेत्र ऐसी संस्कृतिकरण, वैश्वीकरण, पश्चिमीकरण और उदारीकरण जैसी सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करेंगे।

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ : सामाजिक परविर्तन अविरत चलनेवाली घटना है। वह सार्वत्रिक है। सामाजिक रचनातंत्र में हमेशा बदलाव होता है। उसके परिणाम स्वरूप संस्थाओं में परिवर्तन दिखाई देता है। जब सामाजिक संगठनों के स्वरूप में विशेष बदलाव हो तब सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। उदाहरण जाति संस्था में आए परिवर्तन।

परिभाषा :

किंग्सले डेविस — 'सामाजिक, रचनातंत्र और कार्यों में आए परिवर्तन अर्थात् समाजिक परिवर्तन' उदाहरण स्वरूप : संयुक्त परिवार के स्थान पर विभक्त परिवार का प्रभाव रचना तंत्र में परिवर्तन बताता है। परिवार में मनोरंजन कार्य, सिनेमा, टी.वी. (टेलीविजन) ने ले लिया है जो कार्य में बदलाव दिखाता है।

लक्षण :

(1) सामाजिक परिवर्तन प्रक्रिया है।

(2) सामाजिक परिवर्तन सार्वत्रिक प्रक्रिया है।

(3) सामाजिक परिवर्तन सामजिक रचनातंत्र में बदलाव दिखाता है।

(4) सामाजिक परिवर्तन सामाजिक कार्यों में बदलाव दिखाता है।

(5) सामाजिक परिवर्तन स्वजनित उसी प्रकार प्रायोजित प्रक्रिया के रूप में दिखाई देता है।

सांस्कृतिक परिवर्तन

भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए सांस्कृतिक परिवर्तन का आधार अधिक महत्त्व रखता है। अनेक परिबलों के प्रभाव के कारण आधुनिक समय में परम्परागत भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन आए हैं।

सांस्कृतिक परिवर्तन का अर्थ और परिभाषा :

सांस्कृतिक परिवर्तन एक विशाल अर्थ वाली विभावना है। उसमें संस्कृति में समाविष्ट सभी विषयों जैसेकि कला, विज्ञान, यंत्र-विज्ञान, तत्वज्ञान, भाषा, साहित्य उसी प्रकार सामाजिक संगठन तन्त्र के स्वरूपों, रचना और कार्यों में आनेवाले परिवर्तनों को शामिल करते हैं।

संस्कृति का आधार विशाल है। संस्कृति के भौतिक और अभौतिक आधार में अपने बदलाव को संस्कृतिक परवर्तिन कहते हैं। संस्कृति के भौतिक आधार में फर्निचर, यंत्र, मकान इत्यादि को समाहित करते हैं। उदाहरण के रूप में कच्चे घर के बदले में पक्का आधुनिक मकान, सम्पर्क के लिए सेलफोन का उपयोग इत्यादि संस्कृति के भौतिक आधार में परिवर्तन है। उसी प्रकार संस्कृति के अभौतिक आधार में चित्रकला, नृत्यकला, ज्ञान, भाषा इत्यादि शामिल है। उदाहरण के रूप में आधुनिक चित्रकला और लिखने-पढ़ने में अंग्रेजी का प्रयोग ये संस्कृति के अभौतिक आधार में आए परिवर्तन का रूप है।

संस्कृति परिवर्तन में नई और पुरानी संस्कृति के तत्व मिश्रित होते हैं। जो नवीन खोज और प्रसार से होता है। जब एक संस्कृति के तत्व दूसरी संस्कृति के सामाजिक संरचना में जुड़ते हैं तो वह उस समाज के लिए नई संस्कृति हो जाती है। उदाहरण के रूप में भारत के संविधान ने लोकतंत्र का उद्देश्य स्वीकार करने से ही राजतंत्र के बदले में देश के अन्दर लोकतात्रिक संस्कृति का प्रसार हुआ है।

कला, विज्ञान, तत्वज्ञान की संस्कृति में तत्वों में आए परिवर्तन अर्थात् सांस्कृतिक परिवर्तन इसमें सामाजिक संगठन का स्वरूप, नियमों के द्वारा बदलाव भी शामिल है इस प्रकार संस्कृतिक परवर्तिन सामाजिक परिवर्तन से विशाल आधारवाला है। अर्थात् सभी सामाजिक परिवर्तन को सांस्कृतिक परिवर्तन कह सकते हैं उदाहरण स्वरूप - मूल्यों में आया बदलाव।

मैकाइवर एवं पेज : ''सांस्कृतिक परिवर्तन में धर्म, साहित्यकला इत्यादि में होनेवाले परिवर्तन शामिल है। सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन से अधिक गतिशील होता है। कारण कि सामाजिक सम्बन्ध में जितनी तीव्रता से परिवर्तन आता है उतनी तेजी से कला, विज्ञान, साहित्य, परम्परा, धर्म, तत्वज्ञान इत्यादि में नहीं आता।'' उदाहरण स्वरूप माता-पिता और सन्तान के बीच में सम्बन्ध में आये बदलाव।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन परस्पर प्रभाव डालते हैं, दोनों का समाज पर असर पड़ता है। उदाहरण के रूप में समूह जीवन और सम्बन्धों में परिवर्तन आए तो संस्कृति के तत्वों, मूल्यों, मान्यताओं पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार सांस्कृतिक वातावरण बदलते ही सामाजिक जीवन भी बदलता है। इस प्रकार एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के रूप में सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण ग्रामीण जीवन में बदलाव आया है।

कई बार सामाजिक तंत्र में बिना बदलाव के भी सांस्कृतिक तंत्र में बदलाव हो जाता है। उदाहरण स्वरूप भाषा में उच्चारण या ध्वनि संबंधित बदलाव, संगीत शैली में होनेवाला परिवर्तन संस्कृति में परिवर्तन है लेकिन उसका समाज पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। समाजशास्त्र को ऐसे सांस्कृतिक परिवर्तन में रस है जो सामाजिक संगठनों में से पैदा होता है और सांस्कृतिक परिवर्तन के बीच एक पतली भेद रेखा होने से वह कौन-सा परिवर्तन है, निश्चित करना कठिन होता है।

सांस्कृतिक परिवर्तन के लक्षण :

(1) संस्कृति के किसी भी भाग में आनेवाला परिवर्तन :

संस्कृति के किसी भी तत्व के भाग में आए परिवर्तन को सांस्कृतिक परिवर्तन के रूप में पहचानते हैं। उदाहरण स्वरूप-हैण्डलूम के स्थान पर पावरलूम का उपयोग, नवरात्रि का बदलता स्वरूप।

(2) समाज की साधन व्यवस्था में होनेवाला परिवर्तन :

समाज स्वयं की आवश्यकता के लिए साधन बनाता है; जिसमें यंत्र, वाहन, मकान, पुस्तक, बर्तन, फर्नीचर इत्यादि मुख्य सुविधा के साधन में आये बदलाव अर्थात् सांस्कृतिक परिवर्तन। उदाहरण स्वरूप बैठने के लिए सोफासेट, भोजन करने के लिए डाईनिंग टेबल का उपयोग।

(3) सामाजिक स्तर व्यवस्था में परिवर्तन :

सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था बनाए रखने के लिए समाज मानकों की व्यवस्था करता है जो संस्कृति का भाग है। इस स्तर व्यवस्था में होनेवाले परिवर्तन को सांस्कृतिक परिवर्तन कहा जाता है। उदाहरण स्वरूप - विवाह के नियमों में परिवर्तन, स्त्रियों के अधिकार देनेवाले नियम राज तंत्र में से लोकतंत्र शासन व्यवस्था।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का अर्थ देखने के बाद अब हम परिवर्तन की सांस्कृतिक प्रक्रिया को देखेंगे।

संस्कृतिकरण

कक्षा-11 में आपने स्तर रचना देखा है, परम्परागत भारतीय समाज में जातिगत प्रकार की स्तर रचना थी। अर्थात् व्यक्ति का सामाजिक स्तर जिस जाति में जन्म लेता है उसके आधार पर मिलता है और जीवनभर जाति का सदस्य और स्तर बनाए रखता है। जबकि वर्ग व्यवस्था में व्यक्ति अपने जीवनकाल में शिक्षण, प्रशिक्षण तथा अन्य विधि से स्तर बदल सकता है। संक्षिप्त में जाति व्यवस्था में स्तर विषयक परिवर्तन सम्भव नहीं है। ऐसा समाजशास्त्री मानते थे। परन्तु भारत के प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. एम. एन. श्रीनिवास ने अपने अध्ययन द्वारा दिखाया कि जाति जैसी बन्द प्रकार की स्तर रचना में परिवर्तन सम्भव है। इस सन्दर्भ में उन्होंने संस्कृतिकरण जैसी सांस्कृतिक प्रक्रिया का आधार दिया है।

संस्कृतिकरण यह परिवर्तन का आन्तरिक स्रोत है। संस्कृतिकरण ने भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संस्कृति एक ऐसी सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है। जो भारत के अलग-अलग भाग में निवास करनेवाले हिन्दुओं में अधिक दिखाई देता है। आदिवासी समूह में भी सक्रिय रूप से चालू है।

संस्कृतिकरण का अर्थ

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया अति प्राचीन होने के बाद भी 'संस्कृतिकरण' शब्द और उसका आधार सर्वप्रथम एम. एन. श्रीनिवास ने दिया था। उनके द्वारा लिखी पुस्तक (रेलिजन एन्ड सोसाइटी एमन्ग दा कुर्ग) "Religion and Society among the Coorg" के अध्यन में जाति परिवर्तन को समझने के लिए ब्राह्मणीकरण शब्द का प्रयोग किया था। उसके बाद डेविड पोकोल और अन्य मानवशास्त्रियों ने कहा है कि निम्नजाति के लिए ब्राह्मण सिवाय अन्य जाति भी मॉडल बनते हैं इस कारण से श्री निवास ने ब्राह्मणीकरण के स्थान पर संस्कृतिकरण शब्द का प्रयोग किया है।

संस्कृतिकरण के अर्थ में मात्र संस्कृति का अनुकरण करना है ऐसा नहीं है। बल्कि संस्कृत भाषा के धार्मिक ग्रन्थों में जिस प्रकार के विचार की मान्यता व्यक्त हुई थी उसे उच्च जाति अपनाती थी उसका अनुकरण करनेवाली निम्नजाति के लिए संस्कृतिकरण शब्द का उपयोग किया है।

संस्कृतिकरण की परिभाषा :

एम. एन. श्रीनिवास - ''संस्कृतिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें निम्न हिन्दू जाति, आदिवासी या अन्य समूह उनमें से उच्च मानी जानेवाली जातियाँ या द्विज जाति के रिवाज, विधि-विधान, विचारशैली, जीवनशैली का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार ये लोग अपनी परम्परागत सामाजिक स्तर जाति के कोटिक्रम में उच्च होने का दावा करते हैं।''

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के आधार

एम. एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक में "Social Change in Modern India" (आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन)में संस्कृतिकरण की सूचना की चर्चा की गई है। इसके आधार पर इस सांस्कृतिक प्रक्रिया के कितने आधार हैं, समझने का प्रयत्न करेंगे :

(1) संस्कृतिकरण की प्रक्रिया समूहलक्षी है अर्थात् इस प्रक्रिया में व्यक्ति ही नहीं समग्र जातिसमूह ऊर्ध्व गतिशीलता प्राप्त करता है और इसके लिए ये जातियाँ स्वयं के हक को भी आगे रखते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो संस्कृतिकरण हो अर्थात् उस जाति समूह को स्वयं ऊँचा दर्जा प्राप्त नहीं होता उसके लिए उन्हें प्रयास करना पड़ता है।

(2) संस्कृतिकरण से जो गतिशीलता या परिवर्तन आता है वह जाति के कोटिक्रम में स्थान परिवर्तन स्तर परिवर्तन लाता है। लेकिन संरचनागत परिवर्तन नहीं आता अर्थात् जाति व्यवस्था जड़ से नहीं आता अर्थात् जाति व्यवस्था जड़ से नहीं बदलती है। यह एक परिवर्तन सामाजिक प्रक्रिया है।

(3) संस्कृतिकरण से आर्थिक प्रगति हो ऐसी कोई निश्चितता नहीं है। इतना ही नहीं आर्थिक और राजनैतिक रूप से आगे हो, परन्तु सांस्कृतिक स्तर ऊँचा न हो ऐसे लोग संस्कृतिकरण से स्तर ऊँचा लाते हैं।

(4) संस्कृतिकरण के आधार में स्थानीय प्रभावी जाति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है जो हम आगे देखेंगे।

(5) संस्कृतिकरण की प्रक्रिया मात्र हिन्दू जातियों में दिखाई देती है ऐसा नहीं उच्च जातियों का अनुकरण करके आदिवासी समूह भी जाति का स्तर प्राप्त करने के लिए दावा करता है। पश्चिम भारत में 'भील' और मध्यभारत में 'गोंड, हो, उराव इसके उदाहरण हैं, इस सन्दर्भ में संस्कृतिकरण समूहों और समुदायों के लिए ऊर्ध्व गतिशीलता की तथा परिवर्तन की सांस्कृतिक प्रक्रिया है।

(6) संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के दरम्यान संघर्ष और विरोध भी दिखाई देता है। श्रीनिवास बताते हैं कि ऐसे उदाहरण भी बने हैं कि जब अनुकरण करनेवाली जातियों में आए परिवर्तनों को उच्चजाति के लोग विरोध करते हैं और साथ ही साथ निम्नजाति के हक को अस्वीकार करते हैं। ऐसा किया जाने पर जातियों के बीच संघर्ष भी दिखाई देता है।

(7) कई निम्नजातियाँ उच्चजातियों का नाम और उपनाम स्वीकार करके उच्चस्थान के लिए दावा करते हैं। इसके लिए 1931 की सेन्सस में अपनी जाति का पंजीकरण उच्चजाति के नाम से कराए थे। इस प्रक्रिया को भी श्रीनिवास संस्कृतिकरण कहते हैं।

(8) संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्विमार्गीय है। अर्थात् एक तरफ निम्नजातियों को उनसे उच्च माने जानेवाली जाति का स्तर देकर गतिशीलता बढ़ाई है। लेकिन दूसरी तरफ देखें तो ऐसा करने पर अपनी जाति के अच्छे विषयों का त्याग है।

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया और प्रभावशाली जाति

संस्कृतिकरण के आधार में स्थानीय प्रभावशाली जातियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जीवनशैली का अनुकरण करने में ब्राह्मणों के पश्चात् अन्य जातियों ने भी अनुसरण किया है। इसकी स्पष्टता के लिए श्रीनिवास ने 1955 में "Social system of mysore village" में सर्वप्रथम प्रभावी जातियों का आधार दिया। उनके मतानुसार प्रभावी जाति ग्रामीण सामाजिक जीवन को समझने के लिए तथा संस्कृतिकरण की पैटर्न दिखाई देती है।

जाति को प्रभावी मानने के लिए श्रीनिवास ने कई मापदंड प्रस्तुत किए हैं। :

(1) स्थानीय क्षेत्र की उल्लेखनीय जमीन मालिकी का अधिकार इस जाति के पास होना आवश्यक है।

(2) संख्या की दृष्टि से इस विस्तार में अच्छी जनसंख्या होनी चाहिए।

(3) उच्च पारम्परिक स्तर के उपरान्त शिक्षण का प्रमाण, प्रशासनिक सेवा में नौकरी, आपके शहरी स्रोत भी कई जातियों को ग्रामीण विस्तारों में सत्ता-प्रतिष्ठा देकर असरकारक बनाते हैं। इन मापदंडों के आधार पर देखें तो गुजरात में स्थानीय रूप से कई विस्तारों में क्षत्रिय और पाटीदार प्रभावी जाति का स्तर रखते हैं।

समीक्षा-मर्यादा

संस्कृतिकरण के आधार की अनेक स्तरों पर आलोचना हुई है :

(1) संस्कृतिकरण से कई लोग असमानता पर आधारित सामाजिक रचनातंत्र में खुद का स्थान सुधार लेते हैं। परन्तु इससे समाज में फैली असमानता-भेदभाव खत्म नहीं होता है।

(2) उच्चजाति की जीवनशैली ऊँची होती है और निम्नजाति की निम्न होती है ऐसा साबित होता है। इतना ही नहीं उच्चजाति के लोगों की जीवनशैली इच्छनीय और अनुकरणीय है।

(3) संस्कृतिकरण से महिलाओं के स्तर में सराहनीय परिवर्तन नहीं आया है।

पश्चिमीकरण

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया यूरोपियन प्रजा के सम्पर्क से शुरू हुई है। अंग्रेजों के 150 वर्ष के शासन के कारण उनका प्रभाव अधिक पड़ा है। पश्चिमीकरण परिवर्तन के लिए महत्त्वपूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रिया है।

पश्चिमीकरण के अनेक अर्थ हैं जिसमें से तीन विषयों को शामिल करते हैं।

(1) यंत्र विद्या और विज्ञान

(2) संस्थाएँ, विचार शैली, मूल्य

(3) वस्तुएँ, भाषा इत्यादि

'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन' पुस्तक में एम. एन. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण के आधार को मुद्देवार समझाया है। इस संन्दर्भ में वे कहते हैं कि, ''पश्चिमीकरण ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें भारत की 150 वर्ष के अंग्रेजों के राज के कारण भारतीय समाज और संस्कृति में अनेक स्तर में परिवर्तन आया है जैसेकि यांत्रिकी, संस्थाकीय, वैचारिक और मूल्य संबंधित इत्यादि। ''

पश्चिमीकरण एक व्यापक संकुल और कई स्तरवाला आधार है। उसके एक किनारे से पश्चिमी टेक्नोलॉजी से लेकर दूसरे किनारे तक आधुनिक विज्ञान और आधुनिक इतिहास लेखन का विशाल क्षेत्र समाहित कर लिया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण ये भारत में संरचनात्मक परिवर्तन से बढ़कर सांस्कृतिक-सामाजिक परिवर्तनों को समझने का आधार है।

नये मूल्यों, आदर्शों और संस्थाओं द्वारा जो बदलाव आया उसे हम पश्चिमीकरण कह सकें अर्थात् पश्चिम की विचारशैली का मानववाद, धर्म निरपेक्षता, उदारमतवादी, समानतावादी मूल्यों ने अंग्रेज शासन के दरम्यान भारत में प्रवेश किया। भारतीय समाज जीवन के विभिन्न क्षेत्र में जो परिवर्तन आया, उसको सूचित करता है।

पश्चिमीकरण का आधार

एम. एस. श्रीनिवास ने अपने उदाहरणों द्वारा भारत पर पश्चिमीकरण का असर निम्नलिखित दिये गये आधारों द्वारा समझाया है :

(1) ब्रिटिश शासन के दरम्यान भारत में विशेष करके कृषिक्षेत्र के कानून और प्रशासनिक कार्यों के प्रभाव से बृहद परिवर्तन आया। अठार वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में जमीनदारी, रैयतवारी जैसी व्यवस्थाओं को जमीन मालिकी और राजस्व प्राप्त करने के लिए बनाया गया था। परिणामस्वरूप ग्रामीण विस्तार में नई भूमि व्यवस्था बनी।

(2) अंग्रेजों ने समाज की व्यवस्था बनाने के लिए नए कानून और न्यायतंत्र की व्यवस्था बनाई। सेना और पुलिसदल की नए सिरे से रचना हुई। जिसके कारण समाज में बड़ा परिवर्तन आया।

(3) अंग्रेजों ने भारत में पश्चिमी शिक्षण व्यवस्था का प्रबन्ध किया जिसके कारण शिक्षा सभी के लिए सुलभ हुई और सभी को अवसर मिला। समय बीतने के बाद इस शिक्षण व्यवस्था ने ग्रामीण विस्तार में नए विचार और मूल्यों का प्रचार प्रसार किया।

(4) अंग्रेजों ने भारत में मुद्रण व्यवस्था शुरू की इस कारण समाचार पत्र पुस्तकें सामयिक का प्रकाशन शुरू हुआ तथा विस्तार मिला। समाज में अनेक वर्गों एवं समूहों में से विचार व्यक्त करने के लिए मुद्रणखाना में आधुनिक सुविधा दी गई। इस कारण से विश्व स्तर से नए विचार, मूल्य प्रचार में आया है।

(5) पश्चिमीकरण के एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव को श्रीनिवास ''मानवतावाद'' के सन्दर्भ में देखते हैं। जाति, आर्थिक परिस्थिति, धर्म और जाति के भेदभाव बिना सबके कल्याण के लिए आदर्श उसके साथ समानता, स्वतन्त्रता, धर्म निरपेक्षता, जैसे पश्चिमी विचारों से भारत में मानवतावादी वातावरण के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी इनके फल स्वरूप भारत में कई सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति शुरू हुई।

(6) पश्चिमीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप भारत में विकसित व्यापार और उद्योगों के कारण शिक्षा के परिणामस्वरूप एक नया मध्यम वर्ग तैयार हुआ। अंग्रेज सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई प्रशासनिक व्यवस्था की शुरुआत में नौकरी करनेवाला निम्न शिक्षित वर्ग समय के साथ-साथ आधुनिक भारत में प्रभावशाली मध्यवर्ग के रूप में स्थापित हो गया इस वर्ग में वकील, डॉक्टर, अध्यापक, साहित्यकार तथा कलाकार और बुद्धिजीवी वर्ग भी विकसित हुआ इस नये वर्ग के फलस्वरूप देश में पश्चिमी संस्कृति के कई तत्वों को स्वीकार किया गया। इसके कारण शहरों में आधुनिकता का विकास हुआ।

(7) अंग्रेजों के शासन के दरम्यान स्वतन्त्रता की लड़ाई में उत्पन्न हुई पश्चिमी लोकशाही, उदारवाद, राष्ट्रवाद से प्रेरित हो करके देश के नेताओं ने लोगों को संगठित करने का कार्य प्रारम्भ किया। आजादी की लड़ाई में वर्षों तक लोकशाही के प्रति श्रद्धा और विश्वास इतना विकसित हुआ की स्वतन्त्र भारत में लोगों ने शासन व्यवस्था के लिए लोकतन्त्र को स्वीकार किया, यह पश्चिमीकरण का प्रभाव है ऐसा कहा जा सकता है।

वैश्वीकरण

21वीं शताब्दी में सामाजिक परिवर्तन की चर्चा वैश्वीकरण उदारीकरण के सन्दर्भ में अधूरी मानी जाती है। वैसे तो भारत के लिए वैश्वीकरण की प्रक्रिया नई नहीं है। 20 वीं सदी के अन्तिम दशक में पूरे विश्व में तीन प्रक्रिया शुरू हुई उदारीकरण, निजीकरण (व्यक्तिगत) और वैश्वीकरण। इन तीनों प्रक्रियाओं ने देश की अर्थ व्यवस्था पर, समाज और संस्कृति पर प्रभाव डाला है। इस प्रक्रिया के कारण अधिक शीघ्रता से, ''विश्व एक समाज और एक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार बन जाएगा'' ऐसा भय उत्पन्न होने के कारण समाजशास्त्री और मानवशास्त्री ये दोनों प्रक्रिया के अध्ययन में रुचि ले रहे हैं। परिवर्तन की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में अब हम वैश्वीकरण, उदारीकरण के विस्तार को समझेंगे।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण एक जटिल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रक्रिया है। जो विश्व के सभी देशों में दिखाई देती है। समाज वैज्ञानिकों की दृष्टि से वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और भौतिक अन्तर को घटाकर राष्ट्र और राज्य को नजदीक ला दे रही है और विश्व एक गाँव बन जा रहा है। संचार क्रान्ति और यंत्र वैज्ञानिक स्रोत इस प्रक्रिया को गति देते हैं।

वैश्वीकरण का अर्थ

वैश्वीकरण का सीधा अर्थ यह होता है कि पूरे विश्व के देश विश्व स्तर पर विचार करें। अर्थात् कोई भी देश स्वयं की राजनीति, अर्थ व्यवस्था, समाज या संस्कृति के बारे में अलगे रूप से न विचारकर समस्त जगत के सन्दर्भ में विचार करे।

सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो इतिहास में पहली बार घटना घटित हुई है कि स्थानीय और वैश्विक समाज के लोग एक सूत्र सें बंध गए हैं इसके लिए अनेक प्रक्रियाएँ, विश्वभर के लोगों के सामाजिक सम्बन्धों पर भी अधिक प्रभाव डालते हैं और उसको नजदीक लाते हैं, जिसे समाजशास्त्री वैश्वीकरण के रूप में देखते हैं।

परिभाषा :

गीडेन्स – ''विभिन्न लोग और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच बढ़नेवाली पारस्परिकता ही वैश्वीकरण है। यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में होती है इसमें समय और स्थान मिल जाते हैं।''

योगेन्द्र सिंह – ''भारतीय समाज में 1990 के दशक के पश्चात् समाजिक स्तरीकरण का स्वरूप बदला है साथ ही साथ जनसंख्या विषयक परिवर्तन की गति में बदलाव आया है। तत्पश्चात् जनसंख्या विषयक परिवर्तन और नगरीकरण तथा औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है।''

मालकम वोटर्स – ''वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है। जिसमें सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था पर जो भौगोलिक दबाव होता है वह पीछे हट जाता है। लोग भी समझते हैं कि भौगोलिक सीमाएँ अर्थहीन तथा बेवजह होती हैं।''

वैश्वीकरण की लाक्षणिकताएँ :

वैश्विकरण यह जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, पूँजीवाद को शामिल करते हैं। संचार क्रान्ति इसके प्रसार में सहायता करती है। वैश्वीकरण निम्नलिखित लाक्षणिकता के द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

(1) जटिल प्रक्रिया है :

वैश्वीकरण एक जटिल प्रक्रिया इसलिए है कि उसके साथ उदारीकरण और निजीकरण (व्यक्तिगत) प्रबल रूप से जुड़े हैं। इस कारण से परस्पर प्रभाव होने से ये जटिल और कठिन बना हैं। दूसरा वैश्वीकरण कारण और परिणाम दोनों रूप से प्रभाव डालते हैं। ऐसे तो यह खूब जटिल प्रक्रिया है, ऐसा कहा जा सकता है।

(2) अनेक कारणोंवाली प्रक्रिया है :

वैश्वीकरण आर्थिक, राजनितिक सामाजिक-सांस्कृतिक जैसी अनेक कारण युक्त प्रक्रिया है। जबकि समाजशास्त्र में वैश्वीकरण मात्र समाजिक-सांस्कृतिक कारणों और परिणामों में अध्ययन का रस रखता है।

(3) नई खोज और प्रसार सूचक प्रक्रिया :

इस प्रक्रिया द्वारा नए उद्योग, नए यंत्र विज्ञान और नए शोध को प्रोत्साहन मिलता है। इसी के साथ विश्वभर में उसके प्रसार को गति मिलती है। उदाहरण स्वरूप – इन्टरनेट और सेवा उद्योग।

(4) नागरिक अधिकार और मानवता की चेतना जगानेवाली प्रक्रिया है :

वैश्वीकरण के प्रक्रिया के कारण विश्वभर से गरीबी उन्मूलन करके शिक्षण, स्वास्थ्य के लिए दबाव बनाया है। सूचना अधिकार का नियम, फूडफोर ऑल जैसे कानून बने हैं। पर्यावरण में परिवर्तन के कारण आनेवाले आपत्ति से बचाना और सहायता करने की भावना जाग्रत करता है।

(5) वैश्विक संस्कृति :

कई विद्वानों के मतानुसार इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विश्व एक गाँव बनते ही एक नई संस्कृति पैदा होगी, जिसके कारण परिवार, विवाह, मनोरंजन, कला साहित्य जैसे विषयों पर असर हुआ है। उदाहरण स्वरूप – समग्र विश्व में 'वैलेन्टाइन डे' को मनाना।

(6) संस्कृति का समन्वीकरण :

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप संचार व्यवहार, पर्यटन, स्थानान्तरण, सन्देश व्यवहार इत्यादि जैसी प्रक्रियाएँ आज इतनी तीव्र हो गई हैं कि दुनिया की संस्कृतियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आते ही एक रूप बनती जा रही हैं, उदाहरण स्वरूप-भांगडा पोप और फ्युजन म्युजिक।

(7) विनिमय का साधन मुद्रा :

वैश्वीकरण के कारण विनिमय के साधन के रूप में वस्तु विनिमय की जगह विश्व में एक समान मुद्रा का विचार उत्पन्न हुआ है उदाहरण स्वरूप – अमेरिकन डालर।

(8) बाजार का प्रभुत्व :

आज व्यापार धन्धे में बाजार का महत्त्व अधिक बढ़ गया है। आज विश्व स्तर पर अर्थव्यवस्था का एक जाल बन गया है। जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की प्रयोग की प्रणाली सम्पूर्ण विश्व में लगभग समान हो गई है। उदाहरण स्वरूप – नूडल्स और पीज्जा ।

(9) नये सामाजिक आन्दोलन :

योगेन्द्र सिंह के मतानुसार आज तीसरे विश्व में और विशेषकर के भारत में वैश्वीकरण के परिणाम के आधार पर जो परिवर्तन आया है उसने कई नये आन्दोलनों को जन्म दिया है जैसेकि महिलाओं का आन्दोलन, मानव अधिकार के बारे में आन्दोलन इत्यादि।

संक्षिप्त में वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने वैश्विक स्तर पर राष्ट्र राज्य को निकट लाकर आधुनिकीकरण और अनुआधुनिकीकरण को वेग देकर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीतिक सम्बन्ध बढ़ाया है।

उदारीकरण

देश स्वतन्त्र होने के बाद भारतीय अर्थ व्यवस्था और बाजार के कानून द्वारा वैश्विक स्पर्धा से सुरक्षित रखा था। इस प्रकार प्रजा कल्याण के लिए सरकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए, ऐसे आदर्श एवं संविधान में सामाजिक न्याय पर बल देने के कारण उसके अनुसार नीति निर्णय लिए जाते हैं।

परंतु वर्ष 1991 के प्रारम्भ के भाग में अर्थतंत्र में विदेशी पूँजी का सुरक्षित कोष घट रहा था। आर्थिक स्थिति संकटपूर्ण थी, जिस कारण सरकार ने देश के अर्थतंत्र में फिर से नव संचार करने के लिए आर्थिक नीति बनाई। जिसमें विदेशी व्यापार के परिपेक्ष में लगभग स्वतन्त्र कही जाय ऐसी व्यापारिक नीति को प्रोत्साहन दिया। लम्बे समय की आयात निर्यात नीति के बारे आयात शुल्क प्रमाण जैसे प्रतिबन्ध को कम किया। जिसे हम उदारीकरण कह सकते हैं।

उदारीकरण का अर्थ

उदारीकरण की नीति अर्थात् निजीकरण की नीति सरकार द्वारा उद्योग के क्षेत्र में अधिक से अधिक लाइसेन्स, पूँजी निवेश और लाभ की प्राप्ति के लिए निजी क्षेत्र के लिए अनुकूलता करना शामिल है। संक्षिप्त में सरकार की उद्योगों की स्थापना और विकास के बारे में हस्तक्षेप बिना की नीति अर्थात् उदारीकरण। उदारीकरण वैश्वीकरण प्रक्रिया की पूर्व शर्त है और उदारीकरण के लिए निजीकरण (व्यक्तिगत) अनिवार्य प्रक्रिया है।

उदारीकरण की व्याख्या

उदारीकरण अर्थात् वैश्वीकरण के भाग स्वरूप वैश्विक बाजार देश की अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी बने तथा उसके अनुरूप व्यापार उद्योग का नियमन करनेवाला नियम और आर्थिक नियन्त्रणों से उदार बनाना उदाहरण स्वरूप अनेक क्षेत्रों में सीधे विदेशी निवेश का आदेश देना।

उदारीकरण के लाभ :

- विदेशी निवेश बढ़ा बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत की कंपनियों के साथ हिस्सेदारी की जिसके कारण नई टेक्नोलॉजी का लाभ मिला और उत्पादन बढ़ा।
- ग्राहकों को उचित मूल्य पर श्रेष्ठ वस्तुएँ मिलने लगीं।
- निजीकरण (व्यक्तिगत) स्पर्धा के कारण उत्पादक उचित मूल्य पर अच्छी गुणवत्तावाली वस्तुओं की बिक्री करने लगे।
- प्रत्येक क्षेत्र में स्पर्धा बढ़ी परिणामस्वरूप वैश्विक स्पर्धा में बने रहने के लिए मैनेजमेन्ट टेक्निक और श्रमिकों के कौशल के लिए प्रशिक्षण और शिक्षण का महत्त्व बढ़ा।
- कर्ज पर ब्याज की दर घटने से उत्पादन खर्च में कमी आई।
- उदारीकरण के कारण टी.वी., चैनल, मोबाइल, इन्टरनेट कंपनियों और ऑनलाइन शॉपिंग को प्रोत्साहन मिला।
- उदारीकरण ने उपभोक्तावाद को प्रोत्साहित किया जिससे बाजार निर्णयक हो गया है।
- उदारीकरण से लोगों की जीवनशैली में और प्रयोग की वस्तुओं में अत्यधिक बड़ा बदलाव आया है।
- उदारीकरण के कारण सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में गति आई है।

उदारीकरण की हानियाँ :

उदारीकरण की निम्नलिखित हानियाँ हैं :

- निजीकरण और उदारीकरण के उपयोग पश्चात् रोजगार के अवसर कम हुए हैं और बेरोजगारी में वृद्धि हुई है।
- कृषि क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि की दर कम हुई है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बी. टी., बीज, रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं से जमीन की उर्वरता कम करके प्रदूषण को बढ़ाया है।
- विकसित देश उदारीकरण के नाम से प्रदूषण बढ़ानेवाले उद्योगों को तीसरे विश्व में बनाकर पर्यावरण में असन्तुलन पैदा किया है।
- विश्व व्यापार संगठन की शर्तों का पालन करने से आयातशुल्क अधिक मात्रा में घटाकर आयात की मात्रा उदार की गई, जिससे निर्यात कम हो गया है।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में सस्ती जमीन खरीदकर और कम वेतन देकर लाभ का धन अपने देश में भेजते हैं। इस कारण से आय की धारा बाहर की तरफ दिखाई देती है।
- बैंकिंग क्षेत्र में सुधार द्वारा रिजर्व बैंक ऑफ इन्डिया (R. B. I.) द्वारा पूंजी और लघु बचत योजना पर ब्याज दर कम करने से मध्यम वर्ग और पेन्शन युक्त वर्ग की हानि हुई है।

• उदारीकरण के कारण प्रत्येक बात बाजार के ऊपर छोड़ दी गई है। जिसके कारण असमानता और मँहगाई में वृद्धि हुई है।

विद्यार्थी मित्रो, इस पाठ से हम परिवर्तन का सांस्कृतिक और समाजिक ज्ञान प्राप्त किया जिसके कारण संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण के अन्तर को देखा है। साथ में ही वैश्वीकरण और उदारीकरण का समाज पर पड़नेवाला प्रभाव देख सकते हैं। अब हम समूह संचार के साधनों और समाज के विषय में ज्ञान अगले पाठ में प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखिए :

(1) सांस्कृतिक परिवर्तन का अर्थ और परिभाषा लिखिए।

(2) संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के आधार का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

(3) पश्चिमीकरण के आधार का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(4) वैश्वीकरण के लक्षण बताइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्देवार उत्तर लिखिए :

(1) संस्कृतिकरण की परिभाषा लिखिए।

(2) पश्चिमीकरण का अर्थ बताइए।

(3) वैश्वीकरण की व्याख्या लिखिए।

(4) उदारीकरण के लाभों का वर्णन कीजिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया की कौन-सी बात देखने और समझने में उपयोगी है।

(2) सामाजिक परिवर्तन अर्थात् क्या ?

(3) संस्कृति में किन विषयों को शामिल करते हैं ?

(4) प्रभावी जाति के मापदंड क्या है ?

(5) उदारीकरण अर्थात् क्या ?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) सांस्कृतिक परिवर्तन के मुख्य स्रोत लिखिए ?

(2) भौतिक संस्कृति में किन विषयों को शामिल करते हैं ?

(3) अभौतिक संस्कृति में किन विषयों को शामिल करते हैं ?

(4) संस्कृतिकरण का विचार किसने दिया था ?

(5) पश्चिमीकरण की शुरुआत कब से हुई है ?

(6) वैश्वीकरण को जटिल प्रक्रिया क्यों कहा जाता है ?

(7) उदारीकरण की शुरुआत भारत में किस वर्ष में हुई थी ?

(8) पश्चिमीकरण का विचार श्रीनिवास ने किस पुस्तक में दिया है ?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक परिवर्तन आर्थात्.........

(अ) रचनातंत्र में बदलाव (ब) फैशन में बदलाव

(अ) भोजन में बदलाव (ड) एक भी नहीं

(2) संस्कृति के तत्वों में आए परिवर्तन अर्थात्........

(अ) भौगोलिक परिवर्तन (ब) सांस्कृतिक परिवर्तन

(क) सामाजिक परिवर्तन (ड) एक भी नहीं

(3) संस्कृति के मुख्य कितने आधार हैं ?

(अ) 1 (ब) 2 (क) 3 (ड) 4

(4) संस्कृतिकरण के लिए श्रीनिवास ने सर्वप्रथम किस शब्द का प्रयोग किया था ?

(अ) पश्चिमीकरण (ब) व्यक्तिगत (क) ब्राह्मणीकरण (ड) एक भी नही

(5) संस्कृतिकरण का विचार किस गतिशीलता के लिए प्रायोजित है ?

(अ) समूह लक्षी (ब) व्यक्तिगत (क) निम्नगामी (ड) एक भी नहीं

(6) पश्चिमी विचार शैली का कौन–सा तत्व भारत में आया है ?

(अ) धर्मनिरपेक्षता (ब) मानवतावाद (क) समानतावाद (ड) दिए गए सभी

(7) संस्कृति का समन्वीकरण किस प्रक्रिया से होता है ?

(अ) वैश्वीकरण (ब) उद्योगीकरण (क) खानगीकरण (ड) एक भी नहीं

(8) उदारीकरण में किस विषय पर बल दिया गया है ?

(अ) उद्योग–व्यापार (ब) समाज–संस्कृति (क) मानवकल्याण (ड) एक भी नहीं

(9) अनेक देशों की अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति पर प्रभाव करनेवाली कौन सी प्रक्रिया है ?

(अ) पश्चिमीकरण (ब) संस्कृतिकरण (क) वैश्वीकरण (ड) इस्लामीकरण

क्रिया–कलाप

- अपने गाँव के सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन का अवलोकन करके वृत्तांत बनाइए ।
- पश्चिमीकरण की जीवन–शैली के चित्र लेकर एलबम बनाइए ।
- सेलफोन और इन्टरनेट के लाभ और हानि का सामूहिक चर्चा कीजिए।
- वैश्वीकरण की सामाजिक प्रभाव पर समूह चर्चा कीजिए।
- वैश्वीकरण और उदारीकरण से आपको प्राप्त होनेवाली वस्तु–सेवा की सूची तैयार कीजिए।

●

6 जनसंचार के माध्यम और समाज

विद्यार्थी मित्रो, आगे के पाठ में हमने देखा कि वैश्वीकरण के लिए संचारक्रांति आवश्यक है। संचारक्रांति संचार के साधनों (माध्यमों) द्वारा आती है। इन जनसंचार के माध्यमों के विषय में जानकारी इस इकाई में प्राप्त करेंगे।

विद्यार्थी मित्रो, विद्यालय की घण्टी बजती है तब आप कक्षा में जाते हैं, आप शिक्षकों को नमस्कार करते हैं। तो शिक्षक नमस्कार कहते हैं। आप समाचारपत्र पढ़ते है, आप फोन पर बातें करते हैं या आप टेलीविजन देखते हैं - ये सभी संचार से संभव होते हैं। संचार को अंग्रेजी भाषा में Communication (कम्युनिकेशन) कहा जाता है। कम्युनिकेशन शब्द लेटिन Communs से निर्मित है। हिन्दी भाषा में संचार, सूचना, संचारव्यवस्था, संसर्ग आदि शब्दों का उपयोग होता है। गुजराती में संदेशाव्यवहार, संचार, प्रत्यायन आदि शब्दों का उपयोग किया जाता है। मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक मूलभूत आवश्यकता हो तो वह संचार है। संचार दो या उससे अधिक पक्षों के बीच की ऐसी अतरक्रिया है, जिसमें संवेदनावाहक और भौतिक साधनों द्वारा एक-दूसरे पक्ष पर अतरक्रिया या बाह्य प्रभाव उत्पन्न करती है। संचार की प्रक्रिया का आरंभ बालक के जन्म से होता है और उसका अंत मानव जीवन के अंत से होता है। इस तरह संचार मानव जीवन का अभिन्न अंग है। ऐसे संचार का अर्थ, प्रक्रिया, समूह, लोकमाध्यम, समूह माध्यमों उनके प्रभाव आदि की प्राथमिक जानकारी प्राप्त करेंगे।

संचार की व्याख्याएँ

संचार की व्याख्याएँ निम्नानुसार हैं :

एडवर्ड एमरी - ''संचार यह सूचना, विचारों और भावनाओं कों एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक परिवर्तित करने की कला है।''

विद्युत जोशी - ''व्यक्ति अपने विचारों, भावनाओं, मन की तरंगों, इच्छाओं या इन्द्रियगत अनुभवों जैसी आत्मलक्षी मानसिक अमूर्त बातों को भाषा या अन्य किसी अर्थपूर्ण माध्यम द्वारा दूसरे व्यक्ति को पहुँचाए, प्रसार करे उस प्रक्रिया को संचार के रूप में पहचाना जाता है।''

कीथ डेविड - ''सूचना-संचार अर्थात एक व्यक्ति या समूह सें दूसरे व्यक्ति या समूह में किसी सूचना अथवा भाव पहुँचाने की प्रक्रिया।''

संक्षेप में हम ऐसा कह सकते हैं कि संचार एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा दो व्यक्तियों या समूहों के बीच परस्पर भावनाओं और आकांक्षाओं का आदान-प्रदान होता है। संचार के दो प्रवाह हैं। जिसमें एक तरफ संदेश भेजनेवाला संदेश भेजता है दूसरी तरफ प्राप्त करनेवाला उसकी प्रतिक्रिया देता है।

संचार के लक्षण

(1) संचार एक अविरत प्रक्रिया है :

संचार के बिना मानव जीवन संभव नहीं है। इसलिए यह मानव जीवन का अभिन्न अंग है। संचार के बिना एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की भावनाओं से ज्ञात नहीं होता। संचार में सूचना, आदेश, निर्देश, सलाह, मंतव्य, शिक्षण, प्रेरणा, प्रेम आदि भावनाओं वाले संदेशों का आदान-प्रदान की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

(2) संचार द्विमार्गीय प्रक्रिया है :

संचार में दो व्यक्तियों अथवा समूहों के बीच संदेशों का आदान-प्रदान होता है। यह अविरत प्रक्रिया द्विमार्गीय है। इस तरह, संदेशा देनेवाला प्रेषक संदेश देता है। संदेशा प्राप्त करनेवाली उसकी प्रतिक्रिया देता है।

(3) संचार के लिए माध्यम आवश्यक है :

संचार में दो व्यक्ति या समूह के बीच मनुष्य, संवेदना, हास्य, रोना, इशारे, हाव-भाव जैसा संवेदवाहक माध्यम या समाचारपत्र, रेडियो, टी.वी. टेलीफोन, मोबाइल जैसे भौतिक माध्यम अनिवार्य है।

(4) संचार एक प्राकृतिक गुण है :

संचार यह जन्मजात गुण है। संचार का जन्म से ही आरंभ होता है। उदाहरण–नवजात बालक रोता है। मनुष्य का बोलना, सुनना, लिखने का कौशल प्राणी से अलग होता है। तो लेखन कला मानव को अजोड़ बनाता है। इस प्रकार संचार मनुष्य का प्राकृतिक गुण है।

(5) संचार सामाजिक प्रक्रिया है :

संचार दो व्यक्तियों या समूहों के बीच होनेवाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में संचार के लिए संदेश या संकेत के अर्थ समाज द्वारा परिभाषित किए होते हैं। जैसे कि व्यक्ति हाथ ऊँचा करके हिलाता है तब सामनेवाला व्यक्ति समझ जाता है कि मुझे अलविदा कहा है।

(6) संचार विज्ञान और कला है :

वैज्ञानिक पद्धति से संचार की टेक्निक विकसित करके प्रेक्षकों को अधिक अर्थपूर्ण संदेश दे सकते हैं। इसके लिए विविध साधनों, भाषा, नृत्य और टेक्नोलॉजी के साधनों जैसे कि पावरपोईन्ट प्रजेन्टेशन का उपयोग कर सकते हैं।

संचार प्रक्रिया :

संचार प्रत्येक मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। संचार के बिना मानव समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। संचार की प्रक्रिया अनेक सोपानों से गुजरती है। ये सोपान निम्नानुसार हैं :

(1) ओसगुड और विल्बर श्रेम का मॉडल :

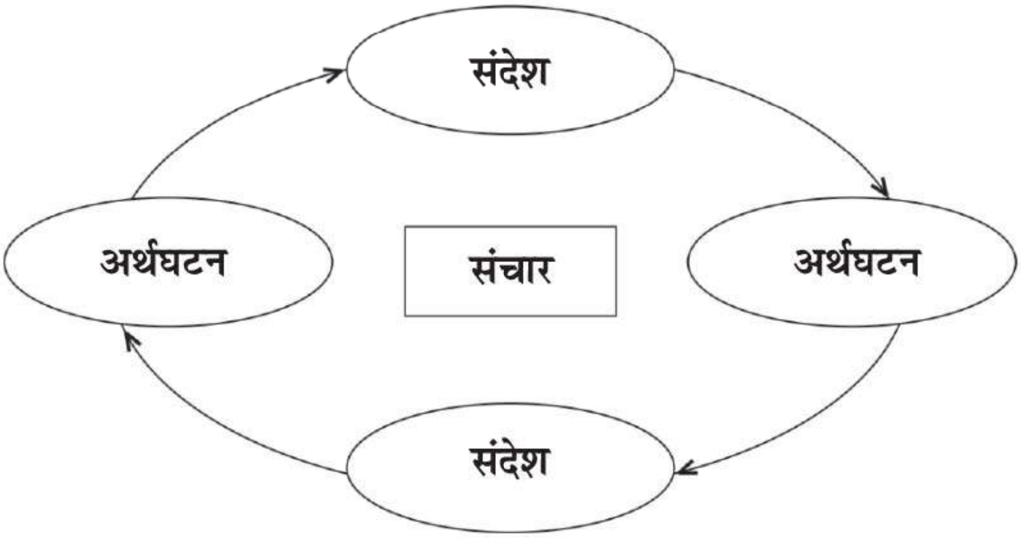

ओसगुड और विल्बर के अनुसार व्यक्ति जो संदेश प्राप्त करता है, उसे समझता है। जैसा समझ में आए वैसा संदेश का अर्थघटन करके जिससे संदेश प्राप्त किया हो उसे संदेश का जवाब देता है। इस प्रकार संदेश का अर्थघटन करके संदेश लेन-देन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

(2) डेविस बर्गो का S.M.C.R संचार मॉडल :

Source – प्रेषक (संदेशा भेजनेवाला)

Message – संदेश

Channel – चेनल

Receiver – प्राप्तकर्ता (संदेश लेनेवाला)

संचार माध्यमों के प्रकार :

संचार माध्यम

- **पारस्परिक संचार**
- **समूह संचार**
  - **परंपरागत माध्यम**
    - लोकसाहित्य
    - लोकसंगीत
    - कठपुतली खेल
    - भवाई
    - लोकनाट्य
  - **आधुनिक माध्यम**
    - **मुद्रित माध्यम**
      - समाचार पत्र
      - पुस्तकें
      - सामायिक
      - पर्चे
      - बेनर – होर्डिंग
    - **श्राव्यदृश्य माध्यम**
      - रेडियो – टेपरिकोर्डर
      - फोटोग्राफी – फिल्में
      - टेलीविज़न
      - कम्प्यूटर – इन्टरनेट
      - मोबाइल टेलीफोन

संचार के माध्यमों को ध्यान में रखकर दो प्रकार कर सकते हैं :

पारस्परिक संचार : दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा समूह के बीच एक–दूसरे की प्रत्यक्ष उपस्थिति में बातचीत, प्रेम, हास्य, रोना या किसी भी अभिव्यक्ति, कोई संकेत करे या कोई हाव–भाव व्यक्त करे और एक–दूसरे पर प्रभाव डाले, उसे पारस्परिक संचार कहा जाता है।

समूह संचार : विशाल मानव समुदाय को विविध यंत्र विज्ञान–टेक्नोलॉजी द्वारा विविध विषयों पर संदेश पहुँचाने का कार्य इन समूह माध्यमों द्वारा होता है। विशाल और जटिल समुदाय में तीव्र संदेश पहुँचाने के लिए समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाइल, इन्टरनेट आदि द्वारा समूह (जन) संचार संभव बना है।

समूह संचार के माध्यम के भी दो प्रकार कर सकते हैं :

• परंपरागत समूह संचार माध्यम • आधुनिक समूह संचार के माध्यम

(1) परंपरागत समूह संचार माध्यम : प्राचीनकाल से भारत में परंपरागत समूह माध्यमों का बोलबाला कम–अधिक मात्रा में दिखाई देता है। लोकसाहित्य, लोकसंगीत, लोकनृत्य ये तीनों भारत के विविध प्रदेशों में अपनी महत्त्वपूर्ण पहचान रखते हैं। गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ क्षेत्र की लोककथा, लोक कहानियाँ, लोकगीत, आख्यान, छंद, दोहे आदि सामान्य रूप से कोई वीरकथा, सतीकथा, धार्मिककथा मुख्य थे इसी तरह राजस्थान, गुजरात में भवाई, उत्तरप्रदेश में नौटंकी, बंगाल में बाउल, महाराष्ट्र में भारंड, मध्यप्रदेश में पंडवा जैसे लोकनृत्यों के प्रति ग्राम समुदाय खूब ही आकर्षित रहता था। कठपुतली का खेल, मल्ल का खेल, मदारी के खेल आदि मनोरंजन के परंपरागत समूह माध्यम थे। इन माध्यमों द्वारा लोगों को मनोरंजन के अलावा नैतिक मूल्य और ज्ञान मिलता था। वर्तमान समय में आधुनिक संचार माध्यमों के विकास के कारण ये छुप गए हैं।

ये परंपरागत माध्यम ऐसे तो पारस्परिक प्रत्यक्ष माध्यम थे इनमें यंत्रविज्ञान या टेक्नोलॉजी का अभाव था। ग्रामीण सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक प्रसंगों को लेकर मनोरंजन के साथ भावात्मक और नैतिक मूल्य अपनी लोककला द्वारा प्रस्तुत करते थे। टेलीविजन के कारण ग्राम समुदाय में परंपरागत माध्यम अधिकांश अस्त हो रहा है।

(2) आधुनिक समूह (जन) संचार के माध्यम : इन संचार के माध्यमों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) मुद्रित माध्यम : समाचारपत्र, पुस्तकें, सामायिक, पोस्टर, होर्डिंग, पर्चे (आवृत्तियाँ)।

(ब) श्राव्य-दृश्य (इलेक्ट्रोनिक्स) माध्यम-रेडियो, फोटोग्राफी, फिल्में, टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाइल, इन्टरनेट

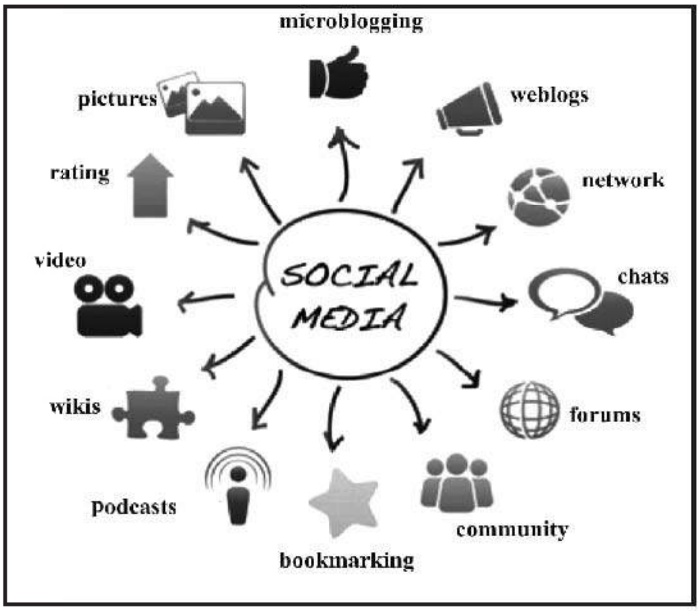

सामाजिक माध्यम

(अ) मुद्रित माध्यम :

जर्मनी में 1440 में गुटेनबर्ग ने छपाई की टेक्नोलॉजी अर्थात् प्रिन्टिंग प्रेस का विकास किया। तब से एक साथ हजारों आवृत्तियों में छपाई कार्य की शुरुआत हुई। प्रारंभ में छोटे पर्चे स्वरूप में समाचार छापकर समाचारपत्र, पत्र के स्वरूप में प्रस्तुत हुए तथा उस समय हस्तलिखित पुस्तकें भी छपने लगीं। इस प्रकार ऐसा कह सकते हैं कि यंत्र विज्ञान और तकनीकि के साथ आधुनिक युग की शुरुआत हुई। भारत में समाचारपत्रों की शुरुआत 18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जनवरी 1780 में जेम्स अगस्त हाकी ने अंग्रेजी भाषा में बंगाल गजट को साप्ताहिक स्वरूप में प्रकाशित करके की थी। भारत का सर्वप्रथम दैनिक समाचारपत्र कोलकाता गजट था। स्वतंत्र भारत में युनाइटेड न्यूज ऑफ इण्डिया नामक एक कंपनी स्थापित की गई। उसका कार्य समाचार देना है। 27 अगस्त, 1947 में पी. टी. आई. Press Trust of India (प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया) प्रेस आयोग की स्थापना की गई। ये समाचारपत्र अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक और स्थानीय ऐसे चार स्तर में प्रस्तुत हुए। जिसमें स्थानिय स्तर से शुरू करके अंतरराष्ट्रीय स्तर तक सभी घटनाएँ और जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं, परन्तु जहाँ निरक्षरता है वहाँ ये मुद्रित माध्यम कम प्रभावकारी बन सकते हैं।

इसके उपरांत मुद्रित माध्यमों में पाठ्यपुस्तकें, धार्मिक ग्रन्थ, उपन्यास, काव्य, नाटक आदि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान में कम्प्यूटर के साथ जुड़े डिजिटल टेक्नोलॉजी के कारण प्रिन्टिग टेक्नोलॉजी का अंत आ गया है। डिजिटल टेक्नोलॉजी के कारण विविध प्रकार के प्रिन्टर, फोटोकॉपी मशीन आदि द्वारा प्रिन्टिंग बहुत जल्दी और सरल होने लगी है। टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, स्मार्टफोन आदि के कारण समाचारपत्रों, पुस्तकों, सामयिकों के वाचन में बहुत कमी दिखाई देती है।

(ब) श्राव्य-दृश्य माध्यम : श्राव्य-दृश्य जनसंचार के माध्यमों को इलेक्ट्रोनिक्स माध्यमों के रूप में पहचाना जाता है। जिनमें रेडियो, फोटोग्राफी, फिल्में, टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाइल, स्मार्टफोन आदि का समावेश होता है।

(1) रेडियो : रेडियो का आविष्कार 1921 में इटली के वैज्ञानिक मार्कोनी ने किया था। आकाशवाणी का सर्वप्रथम केन्द्र इंग्लैण्ड में स्थापित किया गया था। भारत में रेडियों के प्रसारण का प्रारंभ सन् 1923 में निजीस्वरूप में मुम्बई में क्लब रेडियो के रूप में हुआ। इसके बाद 1927 में रेडियो का प्रारंभ मुम्बई और कोलकाता में दो सरकारी ट्रांसमीटर की स्थापना द्वारा हुआ। सन् 1930 में इन रेडियो स्टेशनों का संचालन और नियंत्रण सरकार द्वारा किया गया और भारतीय प्रसार सेवा नाम दिया गया। 1936 में यह नाम बदलकर ऑल इण्डिया रेडियो रखा गया। उसके बाद 1957 से भारत में यह आकाशवाणी के नाम से में प्रसिद्ध है। इसका संचालन भारत के सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा किया जाता है। वर्तमान भारत में कुल 187 रेडियो स्टेशन और 180 रेडियो ट्रान्समीटर हैं, जिनसे देश के कुल 83 % क्षेत्र और 96 % जनसंख्या को लाभ प्राप्त होता है।

भारत के दुर्गम और अंदरुनी भागों में रेडियो प्रभावशाली माध्यम है। रेडियो द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों के कारण कृषि, पशुपालन, मत्स्य उद्योग, मुर्गी पालन से जुड़ी जानकारी ने विकास और परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका

निभाई है। इसके अलावा युवाओं, महिलाओं, बालकों, आदिवासियों आदि से जुड़े कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। विविध भाषा में समाचार, कोमेन्ट्री सहित मनोरंजक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। पहले के समय में रेडियो रखने के लिए लाइसन्स रखना पड़ता था। वर्तमान में टेक्नोलॉजी की क्रांति के कारण एफ. एम. रेडियो आने से प्रसारण प्रक्रिया और कार्यक्रमों का स्वरूप बदला है।

(2) फोटोग्राफी : अमेरिका के ज्योर्ज इस्टमेन नें 1888 में केडेक बोक्स कैमरे की खोज की। शुरुआत में कैमरा रोल के उपयोग से ब्लेक एण्ड व्हाईट, उसके बाद रंगीन फोटोग्राफी की जाने लगी। अब स्मार्ट फोन और डिज़िटल कैमरे से फोटोग्राफी होती है। समाज के प्रत्येक स्तर में फोटोग्राफी का महत्त्व बढ़ा है।

(3) चलचित्र या सिनेमा : चित्रों को गति देकर दृश्यों को दर्शाने की प्रक्रिया को चलचित्र कहते हैं। इन चलचित्रों की टेक्नोलॉजी खोजने का श्रेय थोमस आल्वा एडिसन को जाता है। भारत में सर्वप्रथम 7 जुलाई, 1896 में प्रथम फिल्म प्रदर्शित हुई। भारतीय चलचित्रों में दादासाहेब फालके का योगदान महत्त्वपूर्ण होने से उनके नाम से आज भी भारतीय फिल्म जगत का प्रसिद्ध एवार्ड प्रदान किया जाता है। भारतीय फिल्म डिवीज़न की स्थापना 1948 में मुम्बई में हुई थी। सन् 1952 में फिल्म सेन्सर बोर्ड का गठन किया गया। भारत की किसी भी फिल्म को सर्वाजनिक करने से पहले उसे सेन्सर बोर्ड का प्रमाणपत्र दिया जाता है। सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का निरूपण फिल्मों द्वारा किया जाता है। इसलिए आज भी भारतीय फिल्म जगत समाज में आकर्षण का केन्द्र रहा है। वर्तमान में सिनेमा के नये स्वरूप में मल्टिप्लेक्स सिनेमागृहों का उदय हुआ है; परन्तु टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, कोम्पेक्ट डिस्क (सी.डी.), डिजिटल वर्सेटाईल डिस्क (डी.वी.डी.) और पेनड्राइव का प्रचलन बढ़ने से सिनेमागृहों में फिल्म का महत्त्व कम हो रहा है।

(4) टेलीविजन : टेलीविजन आधुनिक युग का अद्‌भुत और अकल्पनीय आविष्कार है। इस दृश्य–श्राव्य माध्यम का आविष्कार ई.स. 1926 में इग्लैण्ड के वैज्ञानिक जोन. एल. बेयर्ड ने किया था। भारत में दूरदर्शन का प्रारंभ 15 सितम्बर, 1959 में दिल्ली में प्रायोगिक स्तर में हुआ था। सन् 1972 में टी.वी. केन्द्र की शुरुआत हुई। 1982 में भारत की मेजवानी में आयोजित एशियाड खेल महोत्सव का रंगीन टेलीविजन का प्रसारण शुरू हुआ। दूरदर्शन का मुख्य उद्देश्य ग्रामविकास, कृषि विकास, शिक्षण जनजागृति के लिए जानकारी देकर राष्ट्रीय विकास करना था; परन्तु 1985 के बाद निजी चेनलों ने प्रवेश किया, जिनके मनोरंजन कार्यक्रमों का प्रभाव समग्र भारत में छा गया। वर्तमान में 800 से अधिक चेनलों द्वारा कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। वर्तमान में टेलीविजन प्रत्येक परिवार का अभिन्न अंग बन गया है।

(5) कम्प्यूटर : वर्तमान युग कम्प्यूटर का युग है। जॉन मोचेल और जे. पी. एकर्ट द्वारा 1946 में डिजिटल कम्प्यूटर खोजा गया। कम्प्यूटर ऐसा साधन है, कि जो सूचना स्वीकारता है, संग्रह करता है, पृथक्करण करता है और विविध स्वरूपों में जानकारी वापस भेज सकता है। आज भारत के सभी क्षेत्रों में कम्प्यूटर का उपयोग अनिवार्य हो गया है, इसलिए कम्प्यूटर शिक्षण अनिवार्य बना है।

(6) इन्टरनेट : इन्टरनेट अर्थात् विश्व का सबसे बड़ा जाल जो संख्यावद्ध कम्प्यूटर और मोबाइल को एक–दूसरे के साथ जोड़ता है। जिसे इन्टरनेट नेटवर्क भी कहा जाता है। इस नेटवर्क से द्वि–मार्गी, जानकारी का लेन–देन होता है। भारत में इन्टरनेट की शुरुआत 15 अगस्त, 1995 के दिन हुई थी। व्यक्ति उँगली के कोने (इसारे) से दुनिया के सभी पक्षों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और दुनिया के किसी भी कोने में कोई भी जानकारी भेजनी हो तो भेज सकते हैं। इन्टरनेट, कम्प्यूटर और स्मार्टफोन के साथ जुड़ने से अकल्पनीय उपयोग होने लगा है। वर्ल्ड वाईड वेब (World Wide Web) इन्टरनेट पर सूचना अथवा सेवा देनेवाले कम्प्यूटर को इन्टरनेट सर्वर कहते हैं। इन्टरनेट पर दुनिया भर के हजारों सर्वर एक विशाल जाल से जुड़े हैं। इस रचना को वर्ल्डवाइड वेब कहते हैं। अलग–अलग वेबसाइट द्वारा विविध प्रकार की जानकारी पलभर में उपलब्ध होती है। ई–गवर्नन्स, ई–बैंकिंग, ई–शॉपिंग, ई–कॉमर्स आदि का उपयोग बढ़ने लगा है। इसके अलावा शिक्षण, स्वास्थ्य, रेल्वे, हवाईयात्रा, मनोरंजन आदि में इन्टरनेट की प्रधानता बढ़ती जा रही है।

(7) मोबाइल : भारत में 15 अगस्त, 1995 के दिन मोबाइल सेवा का प्रारंभ हुआ। वर्तमान में स्मार्टफोन युवा जगत का आकर्षण बना है। मोबाइल में विविध प्रकार की एप्लिकेशन के माध्यम से सूचना और मनोरंजन सरल और उसी पल वह उपलब्ध बना है।

जनसंचार के माध्यमों का प्रभाव :

जनसंचार के माध्यमों ने सामाजिक जीवन, शिक्षण, स्वास्थ्य, आर्थिक, कला और खेलजगत के क्षेत्र, मनोवैज्ञानिक और राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में प्रभाव डाला है, जो निम्नानुसार है :

(1) समाजिक जीवन पर प्रभाव :

परिवार, विवाह, जाति और सांस्कृतिक पक्षों के संदर्भ में समूह माध्यमों का प्रभाव इस प्रकार दिखाई देता है :

• **पारिवारिक जीवन पर प्रभाव :** जनसंचार के मध्यमों के कारण परिवारवाद के बदले व्यक्तिवाद खड़ा हुआ है। पुरुषों या बुजुर्गों की सत्ता में परिवर्तन आया है। जनसंचार के माध्यमों में दर्शाए जानेवाले कार्यक्रम और धारावाहिकों का प्रभाव पारिवरिक संबंधों पर पड़ा दिखाई देता है। पति-पत्नी के संबंधों में सत्ता और पद के बदले समानता और उदारता तथा स्वतंत्रता के विचार विकसित होते जा रहे हैं। पारिवारिक संबंधो में लोकशाहीपूर्ण वातावरण बढ़ता जा रहा है। विविध माध्यमों के प्रभाव से प्राप्त जानकारी के कारण शिक्षण के अनेक चरण बढ़ते जाते हैं, जिसके कारण बालक स्वतंत्र रूप से अपना शैक्षणिक भविष्य बना सकने में समर्थ बने हैं। पुत्र और पुत्री के जन्म, भेदभाव या पालन-पोषण में जनसंचार के माध्यमों ने नई जागृति उत्पन्न की है। संचार माध्यमों में आनेवाले विज्ञापनों के कारण परिवार के विविध सदस्यों को रोजगार के अवसर मिलने से स्थानांतर बढ़ा है; परन्तु माध्यमों के कारण दिन-प्रतिदिन का संपर्क भी बना रहता है। जनसंचार माध्यमों का पारिवारिक जीवनशैली पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं।

• **विवाह व्यवस्था :** जनसंचार के माध्यमों ने विवाह के लिए जीवनसाथी की पसंदगी में परिवार के बुजुर्गों को गौण और विवाह करने वाले युवक-युवतियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इससे विवाहपूर्व एक-दूसरे से मुलाकात द्वारा युवक-युवती की उम्र, दिखावा, शिक्षण, व्यवसाय, स्वभाव और परिवार आदि बातों को महत्त्व देकर जीवनसाथी की पसंदगी करते हैं। इस प्रकार स्वपसंदगी, पर्याप्त उम्र में विवाह, बालविवाह विरोध, विवाह में दहेज नहीं लेना चाहिए आदि विचार जनसंचार के माध्यम गढ़ रहे हैं। साथ ही विवाह में युवक-युवती के गुण की अपेक्षा मंडप या भोजन के ठाट-बाठ के खर्च में बढ़ोतरी करने में प्रेरित हो रहे हैं। पति-पत्नी के सहजीवन में मेल न बैठ पाता हो तो किसी भी तरह निभा लेने की भावना दूर हो रही है। अर्थात् तलाक से वैवाहिक जीवन का अंत लाकर नये जीवन के लिए मार्ग खुला करने में जनसंचार के माध्यम सहायक बनते हैं।

• **जाति व्यवस्था :** जाति व्यवस्था के कोटिक्रम, खानपान, व्यवस्था और नागरिक तथा धार्मिक असमर्थता के संबंध में गाँधीजी या डॉ. अंबेडकर की अस्पृश्यता की लड़ाई में मुद्रित माध्यमों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसके बाद भारत के संविधान और कानून से भेदभाव दूर करने में माध्यम सहायक बने। आधुनिक माध्यमों ने खान-पान, व्यवसाय तथा नागरिक अधिकारों की भेद-भाव प्रणाली को उखाड़ फेंका है। अंतरजातीय विवाहों को प्रोत्साहन दे रहे हैं। व्यक्ति या परिवार पर जाति की मजबूत पकड़ ढीली करने में समूह (जनसंचार) माध्यमों की भूमिका महत्त्वपूर्ण बनी है।

• **संस्कृति :** भारतीय समाज अनेक धार्मिक सम्प्रदायों वाला देश है। इन सम्प्रदायों में अनेक विधि-विधानों, मान्यताओं, श्रद्धाओं, वहम और अंधश्रद्धाओं का बोलबाला है। जिनमें समूह माध्यम अनेक विधि-विधान, मान्यताओं या अंधश्रद्धाओं के विषय में वैज्ञानिक ज्ञान देकर लोगों को जागृत करते है। श्रद्धाओं, मानवधर्म और योग का प्रचार भी करते हैं। साथ ही जन्मदिन मनाने, मेरेज एनिवर्सरी, विविध त्यौहार या उत्सव मनाने में समूह माध्यम खूब ठाठ-बाठ को प्रेरित करते हैं। पुत्री जन्म को महत्त्व देने में समूह (संचार) माध्यम प्रोत्साहन देते हैं। मृत्यु के प्रसंगों में भी लम्बे और गहरे शोक और विचित्र रिवाजों को मात्र शोकसभा में बदलने का कार्य इन संचार माध्यम द्वारा होता है।

(2) भौतिक वस्तुओं का उत्पादन और सेवाओं का प्रचार :

मुद्रित माध्यम और इलेक्ट्रोनिक्स माध्यम विविध चीजवस्तु को खरीदने के लिए प्रेरित करनेवाले विज्ञापन बार-बार प्रसारित करते हैं, जिससे लोग इन वस्तुओं को खरीदने या उपयोग करने के लिए आकर्षित होते हैं। गृहउपयोगी इलेक्ट्रोनिक फ्रिज, वाशिंग मशीन, मिक्सर, कूलर, वेक्युमक्लिनर, वॉटर और इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर, टेलीविजन, मोबाइल, गृहउपयोगी अन्य वस्तुएँ जैसे हेयरऑइल, साबुन, वॉशिंग पावडर, टूथपेस्ट, मिर्च-मसाला, कपड़े, फर्निचर वाहन के अलावा, बीमा, बैंक की सेवाएँ आदि विज्ञापनों के कारण लोग विविध चीज-वस्तुओं से परिचित होते हैं और पसंदगी का अवसर मिलता है। इस तरह जनसंचार माध्यमों में आनेवाले विज्ञापनों ने लोगों में नई आवश्यकता पैदा की है। विविध कंपनियाँ अपने उत्पादन संबंधी विज्ञापनों द्वारा लोगों को अपने उत्पादनों का उपयोग

करने के लिए खींचती हैं। ग्राहक उस वस्तु को खरीदने के लिए आकर्षित हो इसके लिए एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु या भेट, आकर्षक ऑफर, हप्ता पद्धति, शून्य डाउन पेमेन्ट, शून्य प्रतिशत ब्याज जैसी घोषणा विज्ञापनों द्वारा की जाती हैं। वर्तमान में समाज में यूज एण्ड थ्रो का विचार प्रचलित हो रहा है। इस प्रकार ऐसा कह सकते हैं कि संचार माध्यमों ने उपयोगितावाद या ग्राहकवाद खड़ा किया है। व्यक्ति को कर्जदार बनाकर भी वस्तुएँ खरीदने के लिए संचार माध्यम प्रेरित करते हैं।

(3) शिक्षण क्षेत्र में प्रभाव :

संचार माध्यम सामाजिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण साधन है। शिक्षा का महत्त्व समझाते हुए प्रत्यक्ष या परोक्ष विविध कार्यक्रम अथवा विज्ञापन निरक्षरता निवारण में योगदान देते हैं। टेलीविजन पर शिक्षण, कृषि, विज्ञान, टेक्नोलॉजी के लिए विशेष चेनल और विशेष कार्यक्रम चालू किए गए हैं। दृश्य और श्राव्य द्वारा प्रायोगिक पद्धति से कक्षा में प्रभावशाली रूप से सभी विषयों में खूब गहराई से ज्ञान दिया जा सकता है। इसके लिए डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफी, हिस्ट्री, गुजरात सरकार की वायसेग-16 चेनल, दूरदर्शन पर यू.जी.सी. के कार्यक्रम आदि उत्तम उदाहरण हैं। इसी तरह विविध ज्ञानवर्धक टी.वी. शो, क्विज आदि से ज्ञान में वृद्धि होती है। कम्प्यूटर और मोबाइल में विविध वेबसाइट अथवा ई.बुक से शिक्षण के पाठ विद्यार्थी और शिक्षक पढ़ते हैं। अब किसी भी शैक्षणिक संस्था में इन्फर्मेशन कम्यूनिकेशन टेक्नोलाजी अनिवार्य बनी है। स्मार्ट बोर्ड और पावर पोइन्ट प्रजेन्टेशन शिक्षण के लिए अनिवार्य माध्यम बना जिसके द्वारा शिक्षक को पढ़ाने और विद्यार्थियों को समझाने में बहुत ही सरलता रहती है। जनसंचार के माध्यम ट्राफिक के नियम, मतदार जागृति, वृक्षारोपण, प्रदूषण, व्यसन, रक्तदान, नेत्रदान, ऊर्जा बचाने, पानी बचाने आदि नागरिक जागृति का शिक्षण देते हैं।

(4) स्वास्थ्य के स्तर में प्रभाव :

जनसंचार के माध्यम स्वास्थ्य संबंधी देखभाल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने में मदद करते हैं। आहार, पोषण, व्यसन विविध रोग संबंधी जागृति और उनकी वैज्ञानिक जानकारी देते हैं। जिससें लोगों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है। इसी प्रकार परिवार कल्याण, बालकल्याण, मातृकल्याण और शिशुपालन संबंधी संचार माध्यम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वैज्ञानिक जानकारी देते हैं। जिससे जनसंख्या की गुणवत्ता में सुधार होता है। जनसंख्या नियन्त्रण करने में सहायक बनते हैं। विविध माध्यम, टेलीविजन चेनल और इन्टरनेट द्वारा विविध प्रकार के रोग और उनके उपचार संबंधी जानकारी मिलती है। इसके अलावा एच.आई.वी.-एड्स, स्वाईन फ्ल्यू, मलेरिया, टी.बी., केन्सर, पोलियो आदि रोगों और उनके उपचार का प्रसार बढ़ा है। आजकल 'स्वच्छ भारत स्वस्थ भारत' का नारा संचार माध्यमों द्वारा प्रभावकारी बना है।

(5) आर्थिक क्षेत्र में प्रभाव :

भारत जैसे विकसित समाज में खेती की आधुनिक पद्धतियों रासायनिक खाद, सुधरे बीज, फसल संरक्षण आदि से जुड़े कार्यक्रमों द्वारा किसानों को वैज्ञानिक कृषि से जुड़ा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जिससे किसान गुणवत्तायुक्त फसल प्राप्त कर सकते हैं। फसल बीमा, बाजार मूल्य, बिक्री, जलवायु आदि की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मोबाइल में मैसेज द्वारा किसानों के लिए विविध रोगों, दवाओं का छिड़काव निराई की दवा आदि कृषि विषयक जानकारी देते हैं। जिससे किसान अपनी फसल अच्छी तरह पकाकर अच्छी कमाई कर सकें।

बड़े उद्योगों, लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों, गृहउद्योगों के लिए कौन-से स्थल, कितनी लोन, सबसीडी आदि तथा शेयरबाजार, अन्य व्यापार, निवेश, बैंकिंग, सब्जी, सोना-चाँदी, अनाज-किराणा जैसे बाजार भाव की जानकारी संचार माध्यमों द्वारा दी जाती है। जिससे व्यक्तियों को रोजगारी और कमाई करने में मदद मिलती है। आगे बताए अनुसार व्यवसायिक विज्ञापन भी धंधा और रोजगारी में प्रोत्साहन देते हैं। साथ ही यह भी ध्यान देना चाहिए कि आर्थिक धोखाधड़ी, क्रिकेट सट्टे, अनैतिक व्यवसायों आदि को जनसंचार माध्यम वेग देते हैं।

(6) कला और खेलजगत के क्षेत्र में प्रभाव :

समाचारपत्र और सामयिकों में विविध कलाजगत के लेख आते हैं। इससे लोगों को हस्तकला और लोककला जैसे कि लोकगीत, लोकसंगीत, चित्रकला, भरतकाम की कला आदि में रुचि उत्पन्न होती है। रेडियो-टेलीविजन पर आनेवाले विविध कार्यक्रम लोकगीत, शास्त्रीनृत्य संगीत के कार्यक्रम, विविध संगीत, नृत्य, कॉमेडी अभिव्यक्ति की स्पर्धा भी लोगों का कौशल्य विकसित करने के काम-काज में मदद करते हैं। फिल्म, टेलीविजन की विज्ञापने, सीरियल, फिल्मों में अभिनय-कला और नाट्यकला विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

टेलीविजन जैसे संचार माध्यम में खेलजगत के विशेष चेनलों द्वारा ओलम्पिक, एशियाड, कोमनवेल्थ या राष्ट्रीय

खेलों का और क्रिकेट, कबड्डी जैसे खेलों का जीवंत प्रसारण होते से लोगों में खेलों के प्रति रुचि बढ़ रही है।

(7) मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिगत प्रभाव :

व्यक्ति के विचार, मान्यताओं, आदतों, ज्ञान पद्धतियों या व्यवहार को बदलकर व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में संचार माध्यमों की भूमिका अग्रगण्य है। इन माध्यमों से प्रेरक व्यक्ति के इन्टरव्यू या जीवन प्रसंगों द्वारा सामान्य मनुष्य को जीवन जीने में आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। व्यक्ति को संचार माध्यम प्रेरणा, प्रोत्साहन, संघर्ष, साहस के उदाहरण देकर व्यक्ति के कार्यकलाप निर्माण में मदद करते हैं। व्यक्ति को खानपान उठना-बैठना, रहन-सहन, भोजन बनाने, देखभाल, परोसने आदि की पद्धतियाँ सिखाते हैं।

संचार माध्यमों ने मानव जीवन पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव डाले हैं। टी.वी. सीरियलों में दर्शाए जानेवाले वैभवी और विलासी जीवन वास्तविक जिन्दगी में काल्पनिक चित्र दर्शाते हैं। कई बार व्यक्ति महत्वाकांक्षी, ईर्ष्यालु, अधीर, तनावपूर्ण, विचारशून्य, विवेकशून्य गणना करनेवाला बन जाता है। जिसका परिणाम निष्फलता में आतो तो हताशा, निराशा, व्यग्रता का परिणाम कई बार आत्महत्या या सामूहिक आत्महत्या का स्वरूप ले लेता है। प्रेम की अभिव्यक्ति करते दृश्य और अनेक इन्टरनेट की अश्लील वेबसाइट में वास्तविकता कि अपेक्षा विकृत दृश्य युवा मानस पर गंभीर प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

(8) राष्ट्रीय एकता और लोकशाही मूल्यों का प्रचार :

मुद्रित माध्यमों ने लोकजागृति पैदा करके स्वतंत्रता प्राप्त करने में अमूल्य योगदान दिया है। समाचारपत्रों, सामयिकों में आनेवाले विविध लेखों ने लोगों में राष्ट्र के प्रति कर्तव्य की भावना जाग्रत की है। रेडियो या टेलीविजन में आनेवाली अनेक श्रेणियाँ एकता सर्जक होती हैं। कई बार विभिन्न चलचित्र, टी.वी. कार्यक्रम अलग-अलग प्रदेश, जाति के लोगों से संबंधित होते हैं। उनकी भिन्न-भिन्न जीवनशैली, विचार, मान्यताएँ व्यक्त करते हैं। जिनके प्रभाव द्वारा लोग अपने समाज और लोगों की जीवनशैली से भिन्न-भिन्न जीवन शैलियों को स्वाभाविक स्वीकार करते हैं। टेलीविजन ऐतिहासिक धारावाहिक जैसे कि रामायण, महाभारत, चाणक्य, चक्रवर्ती अशोक आदि राष्ट्रभावना और राष्ट्रीय एकता को विकसित करने में योगदान देते हैं।

जनसंचार के माध्यम लोकतंत्र के आधार रूप मतदाताओं को मतदान के लिए जाग्रत करने और विविध राष्ट्रीय दलों के चुनावी घोषणा पत्र से परिचित कराकर किसे मतदान करना है यह निर्णय करने का कार्य करता है। समग्र भारत की लोकसभा, विधानसभा अथवा स्थानीय स्वराज्य की संस्था के सुचारु चुनाव आयोजित करने में और गलत तरीके रोकने में सहायक बनते हैं। चुनावों के अनुमानित परिणाम और वास्तविक परिणामों को बहुत ही आतुरता से विश्लेषण करके लोगों को उसकी कार्यवाही से अवगत कराते हैं। इस तरह जनसंचार माध्यम राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र की नींव को मजबूत करने में आशीर्वाद स्वरूप बने हैं।

विद्यार्थी मित्रो, हमने जनसंचार माध्यमों की जानकारी प्राप्त की। संचार माध्यमों ने आन्दोलनों को भी नई दिशा दी है, जिसका अध्ययन अब आगे की इकाई में करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से लिखिए :

(1) संचार का अर्थ समझाकर उसके लक्षणों की जानकारी दीजिए।

(2) संचार माध्यमों के प्रकारों की छानबीन कीजिए।

(3) आधुनिक संचार माध्यमों के इलेक्ट्रोनिक्स साधनों का संक्षिप्त में परिचय दीजिए।

(4) जनसंचार के माध्यमों के सामाजिक प्रभावों की विस्तार से चर्चा कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के मुद्दासर उत्तर दीजिए :

(1) आधुनिक संचार माध्यमों के प्रकार समझाइए।

(2) परंपरागत संचार माध्यमों का संक्षिप्त में परिचय दीजिए।

(3) कम्प्यूटर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(4) इन्टरनेट का संक्षिप्त में परिचय दीजिए।

(5) संचार माध्यमों का सामाजिक जीवन पर असर समझाइए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर दीजिए :

(1) संचार की व्याख्या दीजिए।

(2) डेविड बर्गो का संचार मॉडल समझाइए।

(3) वर्ल्ड वाईड बेब (WWW) का अर्थ समझाइए।

(4) भारत की रेडियो प्रसारण सेवा को किस नाम से पहचाना जाता है ?

(5) भारत में रेडियो और टेलीविजन प्रसारण किस मंत्रालय द्वारा संचालित होता है?

(6) ओसगुड और विल्बर श्रेम का संचार प्रक्रिया का मॉडल समझाइए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-दो वाक्यों में दीजिए :

(1) गुजराती में संचार के लिए अन्य कौन-सा शब्द उपयोग होता है?

(2) विश्व में सर्वप्रथम प्रिन्टिंग प्रेस का प्रारंभ कहाँ, किसने और कब किया?

(3) पी.टी.आई. का पूरा नाम लिखिए।

(4) यू.एन.आई. का पूरा नाम लिखिए।

(5) देश के कितने हिस्से को रेडियो प्रसारण का लाभ मिलता है?

(6) भारत में निजी रेडियो प्रसारण सेवा कब शुरू की गई?

(7) WWW का पूरा नाम बताए।

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) फिल्म जगत का प्रसिद्ध एवॉर्ड किसके नाम से दिया जाता है ? ☐

(अ) दादासाहेब फालके (ब) राज कपूर (क) पृथ्वीराज कपूर (ड) लता मंगेश्कर

(2) भारत में टेलीविजन का प्रारंभ कब हुआ ? ☐

(अ) 1959 (ब) 1982 (क) 1969 (ड) 1979

(3) भारत में रंगीन टेलीविजन का प्रारंभ कब हुआ ? ☐

(अ) 1959 (ब) 1982 (क) 1969 (ड) 1979

(4) डिजिटल कम्प्यूटर की खोज कब हुई ? ☐

(अ) 1959 (ब) 1946 (क) 1956 (ड) 1976

(5) भारत में इन्टरनेट सेवा का प्रारंभ कब किया गया ? ☐

(अ) 15 अगस्त, 1995 (ब) 15 अगस्त, 1985

(क) 15 अगस्त, 1975 (ड) 15 अगस्त, 2005

(6) भारत में मोबाइल सेवा का प्रारंभ कब हुआ ? ☐

(अ) 15 अगस्त, 1995 (ब) 15 अगस्त, 1985

(क) 15 अगस्त, 1975 (ड) 15 अगस्त, 2005

क्रिया-कलाप

- आपका ई-मेल आई.डी. बनाकर अपने मित्र को संदेश भेजिए।
- आपके विद्यालय में किन-किन इलेक्ट्रोनिक्स साधनों से शिक्षण कार्य होता है, उसका लेख तैयार कीजिए और किन-किन साधनों का शिक्षण में उपयोग हो सकता है, उसकी सूची बनाइए।
- स्मार्ट फोन और टेलीविजन का दिन में कितने समय उपयोग करते हो और उसके उपयोग से आपके शिक्षण और दैनिक जीवन में कौन-कौन से प्रभाव पड़ते हैं, उनकी सूची बनाइए।

●

7	# सामाजिक आन्दोलन

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, हमने पाठ-6 में देखा कि सामाजिक जीवन में जनसंचार के माध्यमों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। किसी भी स्थान पर घटनेवाली घटना पलभर में पूरे विश्व में फैल जाती है। सामाजिक आंदोलन की जानकारी भी समूह माध्यमों के कारण हमें मिलती है। सामाजिक आंदोलन किन्हें कहते है, कौन से प्रकार के सामाजिक आंदोलन हुए हैं? आन्दोलनों के लक्षण क्या हैं और मानव समाज पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

सामाजिक आंदोलन को सामाजिक क्रांति भी कहा जाता है। अंग्रेजी में उसके लिए 'Social Movement' शब्द का उपयोग होता है। सामाजिक आंदोलन या क्रांति समाज में होने के कारण इसके प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव सामाजिक व्यवस्था पर पड़ते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में सामाजिक आंदोलन शब्द का उपयोग किया गया है।

'सामाजिक आंदोलन' शब्द 19वीं सदी में सर्वप्रथम उपयोग होने लगा, तब इस शब्द का उपयोग कुछ निश्चित अर्थ में और आज इसका उपयोग किसान आन्दोलन, कृषि मजदूर आंदोलन, युवक आंदोलन, मजदूर आंदोलन, स्वतंत्रता आन्दोलन, भूदान आंदोलन, गुजरात में हुआ नवनिर्माण आन्दोलन आदि अनेक घटनाएँ दर्शाने के लिए उपयोग होने लगा है।

अलग-अलग समय और अलग-अलग संयोगों में समाज के अलग-अलग विभागों द्वारा रूढ़िगत संस्थाओं या मूल्यों को बदलकर नई व्यवस्थाओं का निर्माण करने की माँग पेश की जाती है; परन्तु परिवर्तन की माँग का प्रतिकार किया जाता है और वर्तमान व्यवस्थाओं, पुरानी आदतों को बनाए रखने का प्रयास भी किया जाता है। इस प्रकार एक तरफ परिवर्तन की माँग करते समूह और दूसरी तरफ वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखने की माँग करते समूह इन दोनों के बीच किसी न किसी रूप में संघर्ष होता है। यह घटना सामाजिक आन्दोलन को जन्म देती है।

इस प्रकार सामाजिक आन्दोलन अनजाने में पैदा होनेवाली घटना नहीं है। उसके पीछे सोचे-समझे उद्देश्य होते हैं। उसमें परिवर्तन के लिए समान माँग रहती है। आन्दोलन के साथ विचारधारा भी जुड़ी होती है। विचारधारा आंदोलनकारियों का असंतोष प्रकट करती है। समस्याओं के निवारण का मार्ग प्रस्तुत करती है और परिवर्तन की माँग की यथार्थता प्रस्थापित करती है।

सामाजिक आंदोलन का अर्थ

सामाजिक आंदोलन एक सामाजिक प्रक्रिया है। अधिकांश सामाजिक परिवर्तन धीमा और बिन आयोजित होता है; परन्तु लोगों की अपेक्षाएँ और दृष्टिकोण बदल जाने से कई बार प्रवर्तमान समाज के 'दूषण' दूर करने के लिए और नई जीवन पद्धति प्रस्थापित करने के लिए लोगों को कोई सामूहिक कदम उठाना जरूरी लगता है; परन्तु कई बार लोगों के कामचलाऊ और छोटे-मोटे सामूहिक कदम को सामाजिक आंदोलन नहीं कर सकते।

अलग-अलग समाजशास्त्रियों नें सामाजिक आन्दोलन की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं।

ब्रुम और सेल्जनिक - 'लोगों के सामूहिक कदम जब संगठित, लम्बे समय तक चलें, तब ऐसे सामूहिक प्रयास को सामाजिक आंदोलन कहते हैं।'

जब समाज के प्रवर्तमान दूषण को दूर कराने के लिए और नई जीवनशैली प्रस्थापित करने के लिए जब लोग कोई संगठित और लम्बे समय तक चले ऐसे सामूहिक कदम उठाएँ तब उसे सामाजिक आन्दोलन के रूप में पहचाना जाता है।

निस्बेत — 'सामाजिक आन्दोलन का निश्चत उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य उसके सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाना है।'

सामाजिक आन्दोलन का विचार अधिक स्पष्ट करने के लिए सामाजिक आंदोलन के लक्षण देखें।

सामाजिक आन्दोलन के लक्षण

(1) आंदोलन सामाजिक और लम्बे समय की प्रक्रिया है।

(2) आंदोलन सामूहिक स्वरूप का होता है।
(3) कोई भी आंदोलन उद्देश्यलक्षी होता है।
(4) सामान्यरूप से अधिकांश आंदोलन निश्चित प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होते हैं।
(5) क्रिया की अभिमुखता दर्शाता है।
(6) लगभग सभी आन्दोलनों में व्यक्ति या व्यक्तियों की निश्चित प्रकार की पहचान होती है।
(7) प्रत्येक आंदोलन में अपनी माँगों को पूरा करने की निश्चित पद्धति होती है और इसके लिए अनेक प्रकार की पद्धतियों का उपयोग किया जाता है।
(8) प्रत्येक आंदोलन बदलाव और तालमेल के लक्षणवाला होता है।

सामाजिक आंदोलन के प्रकार :

सामाजिक आंदोलन को किसी एक निश्चित क्रम में रखना बहुत ही मुश्किल है। सामाजिक आन्दोलनों को उसके लक्षणों के आधार पर अलग-अलग समाजशास्त्रियों ने अलग-अलग तरह से वर्गीकृत किया है, इसके उपरांत सामाजिक आंदोलनों को विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो, सामान्यरूप से सामाजिक आन्दोलन के चार प्रकार दर्शाए जा सकते हैं :

(1) सुधारवादी सामाजिक आंदोलन (Reformative Social Movement)
(2) क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन (Revolutionary Social Movement)
(3) प्रतिरोधात्मक सामाजिक आंदोलन (Resistant Social Movement)
(4) विरोधात्मक सामाजिक आंदोलन (Protest Social Movement)

(1) सुधारवादी सामाजिक आंदोलन :

'वर्तमान सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए होनेवाले आंदोलन को सुधारवादी सामाजिक आंदोलन कहते हैं।'

सुधारवादी सामाजिक आंदोलन, समाज के किसी एक पक्ष या अनेक भागों में ही परिवर्तन लाता है। ये आंदोलन वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के सामने चुनौती नहीं होते; परन्तु समाज में जो रीति-रिवाज है, उन्हें टिकाए रखने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे आंदोलन नैतिकता के साथ जुड़े होते हैं और उनके पीछे सामाजिक प्रतिष्ठा जुड़ी होती है। जिनके प्रति समाज के अधिकांश लोग उदासीन होते हैं। ऐसी समस्याओं के प्रति इस प्रकार के आंदोलन द्वारा लोगों में जनमत जागृत करने का प्रयत्न किया जाता है। सुधारवादी सामाजिक आंदोलन का कार्य समाज में एक आदर्श प्रस्थापित करना होता है तथा इस प्रकार के आंदोलन में नेता या सदस्य अधिकांश ऐसे लोग होते हैं, जो ऐसी समस्याओं के भोग बने हैं। सुधारवादी आंदोलन समाज के लोगों की परंपरागत मान्यताओं, कर्मकांडों, भाव तथा जीवन पद्धति में परिवर्तन लाने का कार्य करता है। जैसे कि राजा राममोहन राय द्वारा सतीप्रथा तथा बालविवाह का विरोध करके ब्रह्मसमाज की स्थापना करना, समाज के कुरीतियों को दूर करके समाज में परिवर्तन लाने के लिए ही आंदोलन चलाया जाता था। गुजरात में कवि नर्मद का सुधारवादी आंदोलन और करसनदास मूलजी तथा महर्षि कर्वे का स्त्री शिक्षा के आंदोलन इसके उत्तम उदाहरण हैं। इस प्रकार के आंदोलन शांतिपूर्वक और अहिंसक होते हैं।

सामाजिक आंदोलन

(2) क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन :

क्रांतिकारी आंदोलन सामाजिक आंदोलन के बिलकुल विपरीत प्रकार के होते हैं। जिसमें समाज के किसी एक क्षेत्र या भाग में परिवर्तन की हिमायत नहीं करते; परंतु समाज में जड़मूल से परिवर्तन की हिमायत करते हैं। इसमें समाज की वर्तमान व्यवस्था के स्थान पर संपूर्ण नई व्यवस्था स्थापित करने का उद्देश्य होता है। हर्बट ब्लूमर क्रांतिकारी आंदोलन की निम्नप्रकार से विशेषता दर्शाते हैं :

- क्रांतिकारी आंदोलन संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का पुनःनिर्माण करता है।
- क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन वर्तमान समय के प्रस्थापित मूल्यों, रूढ़ियों, रिवाजों के स्थान पर नए नैतिक मूल्यों की नई योजना पेश करता है।
- आंदोलन समाज की समस्याओं के समाधान के लिए वर्तमान संस्थाओं (संसद, पुलिस, न्यायतंत्र) में विश्वास नहीं रखते। उसके स्थान पर नई संस्था शुरू करने में विश्वास करते हैं।
- इस प्रकार के आंदोलन में लोकमत खड़ा नहीं किया जाता; परन्तु लोगों को ही अपने पक्ष में लिया जाता है।
- इस प्रकार का आंदोलन अधिकांशतः समाज के निम्नवर्ग में उत्पन्न होता है; क्योंकि उनका शोषण अधिक होता है।
- क्रांतिकारी आंदोलन में समाज दो भागों में बँट जाता है। एक वर्ग ऐसा है कि जिसके पास उत्पादन के साधनों की मालिकी होती है और दूसरा वर्ग ऐसा होता है कि, जिसके पास उत्पादन साधनों की मालिकी नहीं, पर उनके पास श्रम होता है। इस प्रकार का आंदोलन इन दोनों वर्गों के बीच के संघर्ष में से उद्‌भव होता है।

विशेष रूप से कह सकते हैं कि क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन में वैचारिक क्रांति का भी समावेश कर सकते हैं। भारत के संदर्भ में देखें तो डॉ. वर्गीस कुरियन के अमुल द्वारा उत्पन्न 'श्वेत क्रांति' तथा विनोबा भावे के भूदान, ग्रामदान, संपत्ति दान द्वारा समाज में उत्तम उदाहरण हैं।

सुधारवादी आंदोलन और क्रांतिकारी आंदोलन के बीच अंतर :

सुधारवादी आंदोलन	क्रांतिकारी आंदोलन
(1) समाज के आंशिक परिवर्तन के साथ जुड़ा होता है।	(1) समाज के आंशिक परिवर्तन के साथ जुड़ा होता है।
(2) प्रस्थापित सामाजिक व्यवस्था में सुधार करना केन्द्र में होता है।	(2) प्रस्थापित सामाजिक व्यवस्था को संपूर्णतः नकारा जाता है।
(3) आंदोलन के साथ आदर और सम्मान जुड़ा होता है।	(3) इस आंदोलन के साथ आदर-सम्मान नहीं जुड़ा होता क्योंकि स्थापित नियम और व्यवस्था को अस्वीकार किया जाता है।
(4) लोकमत को समस्या के समाधान के लिए तैयार किया जाता है।	(4) इस प्रकार के आंदोलन में जबरदस्ती लोगों को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया जाता है।
(5) यह आंदोलन मध्यमवर्ग द्वारा चलाया जाता है।	(5) यह आंदोलन अधिकांशतः शोषित वर्ग में से उद्‌भव होता है।
(6) यह आंदोलन सामाजिक परिवर्तन के लिए अधिक गंभीर नहीं होता है। इसका उद्देश्य समाज में आदर्श मूल्यों को प्रस्थापित करना होता है।	(6) क्रांतिकारी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य वर्तमान प्रस्थापित व्यवस्था को नष्ट करके उसके स्थान पर नई व्यवस्था प्रस्थापित करनी होती है।
(7) सुधारवादी आंदोलन शांतिप्रिय और अहिंसक होता है।	(7) क्रांतिकारी आंदोलन अधिकाशंतः हिंसक होता है।

(3) प्रतिरोधक सामाजिक आंदोलन :

जब समाज में सामाजिक परिवर्तन की गति तेज होती है और लोग उसकी तीव्रता के साथ समायोजन नहीं साध सकते, जब जो आंदोलन होता है उसे प्रतिरोधात्मक आंदोलन कहते हैं। प्रतिरोध अर्थात् रोकना या विरोध करना। जब समाज में जो परिवर्तन आते हैं वे उनकी इच्छानुसार नहीं होते तब लोग इन परिवर्तनों के विरुद्ध आंदोलन चलाते हैं, जिसे प्रतिरोधात्मक आंदोलन कहते हैं। उदाहरण के रूप में देखें तो नर्मदाबाँध विरोधी आंदोलन,

किसी भाषा या भाषाओं के प्रति विरोध दर्शाने वाले आंदोलन आदि प्रतिरोधात्मक आंदोलन है। प्रतिरोधात्मक आंदोलन के परिणामस्वरूप या तो बहुत ही कम परिवर्तन आता है अथवा उन परिस्थितियों को टिकाए रखने के लिए होता है।

ए. एल. बट्रेन्ड बताते हैं कि प्रतिरोधात्मक आंदोलन ऐसा आंदोलन है या तो इसलिए उद्‌भव होता है कि लोगों को ऐसा विश्वास होता है कि जो कुछ भी परिवर्तन आ रहा है अथवा वर्तमान में जो परिस्थिति हैं वह उचित नहीं जिससे उसका विरोध करना चाहिए। ऐसे आंदोलन का उद्देश्य जो परिवर्तन आ रहे हैं उन्हें रोकना है और जो परिस्थिति जैसी है उसे टिकाए रखना है। इस आंदोलन के साथ जुड़े हुए लोगों का उद्देश्य यह होता है कि वे परिवर्तन नहीं चाहते। कभी-कभी ऐसा आंदोलन इसलिए उद्‌भव होता है कि समाज में स्थापित अपने हितों का वर्चस्व, सत्ता को जोखिम का भय होता है। जैसे कि गाँव में जमीदारों और कृषि मजदूरों के बीच होनेवाले आंदोलन। 'जो जोते उसकी जमीन' का कानून के विरोध में जो प्रतिक्रिया उद्‌भव हुई वह इस प्रकार का आंदोलन है।

(4) विरोधात्मक सामाजिक आंदोलन :

विरोधात्मक आंदोलन मुख्यतः प्रस्थापित व्यवस्था का विरोध है। जब हम किसी व्यवस्था से संतुष्ट नहीं होते, तब उसका विरोध करने की शुरुआत करते हैं। कुछ समाजशास्त्रियों ने विरोधात्मक आंदोलन को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। विरोधात्मक आंदोलन ऐसे आंदोलन हैं जिनमें या तो असंतोष की अभिव्यक्ति होती है अथवा ऐसी कोई माँग होती है जो पूर्ण करने में नहीं आती है। इस प्रकार के आचरण से सामूहिक रूप से आंदोलन होते हैं, जिन्हें विरोधात्मक आंदोलन कहते हैं। विरोधात्मक आंदोलन मुख्यतः तीन बातों से जुड़ा होता है :

- असंतोष और अन्याय के लिए : कुछ घटनाएँ जो समाज में उचित नहीं लगती हों अथवा अन्यायकारी लगती हों तब।
- माँगों के लिए : समाज में कुछ घटनाएँ नहीं घटनी चाहिए। ऐसी कोई घटना घटती है तो उसके विरुद्ध माँगे शुरू हो जाती हैं।
- प्रतिकार माँगों के लिए : ऐसा संभव हो सकता है कि ऐसी कोई घटना बननेवाली हो जिसके विरुद्ध माँगें रखी जाती हों, उदाहरण के लिए यदि चोरी की मात्रा बढ़े तो लोग ऐसी व्यवस्था की माँग करेंगे जिससे चोरी घटे।

इस प्रकार विरोधात्मक आंदोलन अर्थात् जब समाज में परंपरागत व्यवस्था को दूर करके नई व्यवस्था स्थापित की जाती है और जो लोगों को पसंद नहीं होती है तब इस प्रकार के आंदोलन होते हैं। जब समाज में लोगों के समक्ष आर्थिक और समाजिक समस्याओं में वृद्धि होती है तब लोग विरोधात्मक आंदोलन करते हैं। उदाहरण मँहगाई के विरुद्ध आंदोलन, स्त्री अत्याचार विरोधी आंदोलन। विरोधात्मक आंदोलन, विकसित समाज हो या अविकसित समाज हो, प्रत्येक प्रकार के समाज में पाया जाता है। लोकतांत्रिक समाज में इस प्रकार के आंदोलन विशेष रूप से दिखाई देते हैं।

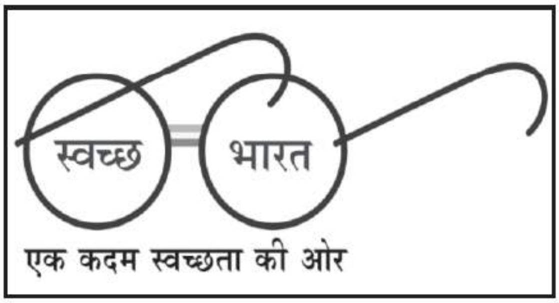

स्वच्छता अभियान :

आधुनिक विश्व की एक जटिल समस्या है – अस्वच्छता की, गंदगी की। विश्व में प्रतिवर्ष गाँवों, कसबों, नगरों, महानगरों में लादे गए कचरे के ढेर पर्यावरणवादियों के लिए चिंता के विषय बने हैं। जलवायु को प्रदूषित करनेवाले कचरे के ढ़ेर समग्र मानवजाति के लिए अनेक समस्याएँ पैदा कर रहे हैं। 25 मार्च, 2014 के दिन जिनेवा में हुई परिषद में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया था कि ई.स. 2012 के वर्ष में विश्व में कुल 70 लाख से अधिक लोग मात्र प्रदूषित वातावरण के कारण मरे थे। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अन्य लेख के अनुसार दूषित पानी के कारण उल्टी-दस्त से प्रति वर्ष 22 लाख लोगों की मृत्यु होती है। प्रति वर्ष 5 वर्ष से छोटी उम्र के 18 लाख बालकों की मृत्यु दूषित पानी के कारण होती है। जल और वायु तो जीवन के अभिन्न अंग है; परन्तु मानव ने उसमें कचरा मिलाकर मानव जाति के शत्रु बना दिए हैं।

आज चारों तरफ गाँवों और शहरों में कचरा के ढ़ेर के अंभार लगे हुए है। परन्तु यह कचरा कहाँ निकालना है यह भी जटिल समस्या बन गयी है। ऐसे समय स्वच्छता संबंधी अभियान ने आंदोलन का स्वरूप धारण करके सबका विशेष ध्यान आकर्षित किया है।

स्वच्छता आंदोलन यह सुधारवादी आंदोलन का ही एक भाग है। 2 अक्टूबर, 2014 को महात्मा गाँधी की 145वीं जयन्ती के अवसर पर भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्रभाई मोदी द्वारा स्वच्छता अभियान का आरंभ हुआ। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य ई.स. 2019 की मनाई जानेवाली 150वीं गाँधीजी की जयन्ति तक समग्र भारत को स्वच्छ करना है।

प्रधानमंत्रीजी के आदेशानुसार आज स्वच्छता अभियान भारत के सभी राज्यों में फैल गया है। गाँवों की गलियों से लेकर शहरों के मुहल्लों और सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छाता को प्रधानता मिली है। सरकार के उपरांत विविध सामाजिक और स्वैच्छिक संस्था और समूह माध्यमों आदि के प्रयासों से अब यह आंदोलन एक जन आंदोलन बना है।

भारत में स्वच्छता आंदोलन में समाज के सभी वर्गों के लोग स्वेच्छा से जुड़े हैं और समग्र राष्ट्र में स्वच्छता संबंधी कार्यक्रमों की एक श्रृंखला बनी है। प्रत्येक सार्वजनिक स्थलों में स्वच्छता बनाए रखने के लिए सरकार ने 0.5 % सेस लागू किया है। विद्यालयों-महाविद्यालयों में स्वच्छता संबंधी आयोजित कार्यक्रमों से विद्यार्थियों ने स्वच्छता को एक मूल्य के रूप में स्वीकार किया है।

इस तरह स्वच्छता अभियान ने एक सुधारवादी आंदोलन के रूप में समग्र भारत में स्वच्छता की अनोखी चेतना जगाई है।

सामाजिक आंदोलन के प्रभाव :

आंदोलन समूह की सामाजिक अभिव्यक्ति है। समूह के लोग अपने निश्चित किए गए उद्देश्यों के लिए आंदोलन करते हैं। आंदोलन एक निश्चित परिवर्तन के लिए किया जाता है। ये सामाजिक आंदोलन समाज पर निम्न प्रकार से गहन प्रभाव डालते हैं :

- सामाजिक आंदोलन परिवर्तन की प्रक्रिया को तीव्र बनाता है।
- लोगों में समानता की भावना बढ़ती है।
- नया नैतृत्व उत्पन्न होता है।
- वैचारिक विकास होता है।
- वैकल्पिक उपायों की चर्चा होती है।
- आंदोलन से समाज में बदलाव आता है।

संक्षिप्त में समाज में सामूहिक व्यवहार द्वारा अपने संतोष की अभिव्यक्ति करने के प्रयत्न सामाजिक आंदोलन द्वारा किए जाते हैं। इस, प्रकार सामाजिक आंदोलन एक साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने असंतोष को व्यक्त करके समाज में आंशिक या संपूर्ण परिवर्तन लाता है। समाज में दो प्रकार के समूह होते हैं : (1) रूढ़िवादी (2) आधुनिकतावादी। जब आधुनिकतावादी समूह द्वारा समाजव्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयत्न होता है, तब रूढ़िवादी समूहों द्वारा इस परिवर्तन को रोककर पुरानी व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयत्न होता है। इस प्रकार समाज में एक या दूसरे प्रकार के दीर्घकालीन या अल्पकालीन सामाजिक आंदोलन दिखाई देते हैं। सामाजिक आंदोलन स्थगित तथा स्थिर समाज में नवचेतना प्रसारित करने का कार्य करता है।

सामाजिक आंदोलन में जन भागीदारी आवश्यक है। यदि जन भागीदारी अधिक और आयोजिक रूप से हो तो कोई भी आंदोलन सफल होता है। समाज में सुशासन के लिए ऐसा ही जन-सहयोग आवश्यक है, जिसका एक उदाहरण पंचायती राज है। जिसकी जानकारी हम आगे की इकाई में प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तार से उत्तर दीजिए :

(1) सुधारवादी सामाजिक आंदोलन और क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

(2) क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन की विशेषताएँ समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर मुद्दासर लिखिए :

(1) सामाजिक आंदोलन का अर्थ देकर उसके लक्षण बताइए।

(2) प्रतिरोधक सामाजिक आंदोलन की जानकारी दीजिए।

(3) विरोधात्मक सामाजिक आंदोलन की जानकारी दीजिए।

(4) 'स्वच्छता अभियान' को समझाइए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में दीजिए :

(1) ब्रूम और सेल्जनिक द्वारा दी गई सामाजिक आंदोलन की व्याख्या लिखिए।

(2) सामाजिक आंदोलन के लक्षण बताइए।

(3) सामाजिक आंदोलन के प्रकार बताइए।

(4) सामाजिक आंदोलन के प्रभाव समझाइए।

(5) ए. एल. बर्ट्रेन्ड ने प्रतिरोधात्मक आंदोलन के विषय में क्या कहा है ?

(6) सामाजिक आंदोलन किसे कहते हैं ?

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :

(1) सुधारवादी सामाजिक आंदोलन अर्थात् क्या ?

(2) विरोधात्मक सामाजिक आंदोलन अर्थात् क्या ?

(3) सुधारवादी सामाजिक आंदोलन के उदाहरण दीजिए।

(4) विरोधात्मक सामाजिक आंदोलन के उदाहरण दीजिए ?

(5) आंदोलन के उद्देश्य बताइए।

(6) निस्बेत द्वारा दी गई सामाजिक आंदोलन की परिभाषा लिखिए।

(7) क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन की विशेषताएँ किसने दर्शाई हैं ?

(8) प्रतिरोधात्मक सामाजिक आंदोलन अर्थात् क्या ?

(9) क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन अर्थात् क्या ?

(10) समाज में कौन-से दो प्रकार के समूह होते हैं ?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) किस आंदोलन का परिणाम उसी परिस्थिति को टिकाए रखना होता है ? ☐

(अ) प्रतिरोधात्मक (ब) सुधारवादी (क) विरोधात्मक (ड) क्रांतिकारी

(2) ब्रह्मसमाज की स्थापना किसने की थी ? ☐

(अ) राजा राममोहनराय (ब) करसनदास मूलजी (क) कवि नर्मद (ड) महर्षि कर्वे

(3) गुजरात में सुधारवादी आंदोलन किसने चलाया था ? ☐

(अ) राजा राममोहन राय (ब) कवि नर्मद

(क) करसनदास मूलजी (ड) महर्षि कर्वे

(4) गुजरात में स्त्री–शिक्षा के लिए किसने आंदोलन चलाया था ? ☐

(अ) हर्बट ब्लूमर (ब) राजा राममोहन राय (क) महर्षि कर्वे (ड) एनी बेसन्ट

(5) सुधारवादी सामाजिक आंदोलन से बिल्कुल विपरीत प्रकार का कौन–सा आंदोलन है ? ☐

(अ) क्रांतिकारी आंदोलन (ब) विरोधात्मक आंदोलन

(क) प्रतिरोधात्मक आंदोलन (ड) सत्तावादी आंदोलन

(6) नर्मदा बाँध विरोधी आंदोलन किस प्रकार का है ? ☐

(अ) सुधारवादी (ब) क्रांतिकारी (क) प्रतिरोधात्मक (ड) विरोधात्मक

(7) किस आंदोलन में सिर्फ अभिव्यक्ति होती है, जिसमें कोई क्रिया जुड़ी नहीं होती है ? ☐

(अ) क्रांतिकारी (ब) सुधारवादी (क) प्रतिरोधात्मक (ड) विरोधात्मक

(8) किस प्रकार का आंदोलन नैतिकता के साथ जुड़ा होता है ? ☐

(अ) विरोधात्मक आंदोलन (ब) क्रांतिकारी आंदोलन

(क) सुधारवादी आंदोलन (ड) प्रतिरोधात्मक आंदोलन

(9) किस प्रकार का आंदोलन शांतिप्रिय और हिंसक होता है ? ☐

(अ) क्रांतिकारी आंदोलन (ब) सुधारवादी आंदोलन

(क) विरोधात्मक आंदोलन (ड) प्रतिरोधात्मक आंदोलन

(10) किस प्रकार के आंदोलन में जबरदस्ती लोगों को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया जाता है ? ☐

(अ) सुधारवादी आंदोलन (ब) प्रतिरोधात्मक आंदोलन

(क) क्रांतिकारी आंदोलन (ड) विरोधात्मक आंदोलन

क्रिया–कलाप

- आपके, अपने क्षेत्र में ऐसा कोई सुधारात्मक आंदोलन हुआ हो तो उसकी सूची / लेख तैयार कीजिए।
- भारत में हुए विविध आंदोलनों की सूची आंदोलनों के प्रकारों के आधार पर तैयार कीजिए।
- स्वच्छता अभियान के अंतर्गत और लोक जागृति के लिए आपके क्षेत्र में सफाई कार्यक्रम का आयोजन कीजिए।
- स्वच्छता के प्रभावों के विषय में विद्यालय में चर्चा सभा का आयोजन कीजिए।

●

8 भारत में पंचायती राज

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, पाठ 7 में हमने विविध प्रकार के आंदोलनों के विषय में जानकारी प्राप्त की। समाज में सुधार और क्रांति लाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। लोगों में समानता, नेतृत्व और विकास महत्त्वपूर्ण है, जो सामूहिक व्यवहार पर प्रभाव डालता है। भारत में ग्रामीण समाज के सामाजिक विकास और नेतृत्व के लिए पंचायती राज की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इस इकाई में पंचायती राज के त्रिस्तरीय ढाँचे और उसके सामाजिक प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

भारत में वैदिक समय से ग्रामीण क्षेत्र में पंचायती संस्था का अस्तित्व दिखाई देता है। प्रत्येक गाँव की अपनी सभा या समिति थी। आठवीं से बारहवीं सदी तक उसके संबंध में उल्लेख मिलता है। अठारहवीं सदी तक किसी न किसी रूप में ग्रामपंचायतें या ग्रामसभा अस्तित्व में थी। पंचपरमेश्वर के सिद्धांत पर गाँव में गाँव का स्थानीय पंच काम करता था।

ऋग्वेद, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र, उपनिषद, जातक कथाएँ आदि संहिताओं में स्थानीय क्षेत्र में कार्य करती ग्रामसभा या ग्रामपंचायत दिखाई देती है। यद्यपि वह समग्र भारत में अलग-अलग नामो से पहचानी जाती थी। उसका संचालक मुखिया या पंच द्वारा होता था; गाँवों की समस्या या कल्याण के कार्य करते तथा ग्राम के सामाजिक स्तरों और व्यवस्था का कार्य (नियंत्रण का कार्य), धर्म-रिवाजों, परंपराओं आदि के पालन संबंधी यह कार्य पंच करता था।

भारत में ब्रिटिश शासन के दरम्यान ग्राम पंचायत की रचना, कार्य, स्वरूप में परिवर्तन आने लगा। ब्रिटिश सरकार ने अपना राजकीय नियन्त्रण मजबूत और स्थायी करने के लिए भूमि व्यवस्था में और महसूली व्यवस्था में परिवर्तन किए उसके साथ पंचायतों के स्वरूप में परिवर्तन करके पुनर्गठन किया। ई.स. 1870 में मद्रास (अब तमिलनाडु) बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि प्रांतों में स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं की स्थापना का कानून बनाया। जिसमें लॉर्ड मेयो ने पहल की थी। ई.स. 1882 में लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के सिद्धांत निश्चित किए। समयांतर में ब्रिटिश सरकार ने अलग-अलग कानून रचकर स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के लिए कदम उठाए थे।

महात्मा गाँधी की ग्राम स्वराज्य में गहन श्रद्धा थी। उन्होंने इसके संबंध में कहा था कि पंचायती राज की स्वतंत्रता नींव से शुरू होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव एक संपूर्ण गणराज्य है। सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा ही सही अर्थों में लोकतंत्र स्थापित कर सकते हैं। जिससे संपूर्ण सत्ता पंचायत के पास होनी चाहिए। पंचायतों की संपूर्ण सत्ता और शक्ति द्वारा ही ग्रामीण क्षेत्र के लोग अधिक सुखी हो सकते हैं। गाँधीजी के विचारों के प्रभाव के अधीन भारत के संविधान में राजनीति को मार्गदर्शक सिद्धांतों में राज्यों की जवाबदारी के रूप में स्थानीय स्वराज्य की महत्त्व इकाई के रूप में ग्रामपंचायतों की रचना के संबंध में स्पष्ट दिशासूचन किया गया है।

स्वतंत्रता के बाद समाज के निचले स्तर तक लोकतंत्र का प्रश्न सतत चर्चा में रहा। गाँधीजी के विचारों के अधीन संविधान में राजनीति के मार्गदर्शक सिद्धान्तों की कलम 40 में कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों की रचना को प्राथमिकता देगा और उसे आनुषंगिक जरूरी सत्ता और अधिकार प्रदान करेगा, जो स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करने के लिए आवश्यक है।

स्वतंत्रता के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना में 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम लागू किया गया; इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य लोक भागीदारी था, परन्तु यह कार्यक्रम लोगों को प्रोत्साहन नहीं दे सका। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत वित्त, साधन-सामग्री के संचालन के लिए सरकार पर निर्भर रहना पड़ा। अपनी मदद स्वयं ही कर सकें ऐसी भावना लोगों में विकसित नहीं हो पाई।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पंचायतों को प्रभावशाली बनाने पर बल दिया, उन्होंने पंचायती राज को एक क्रांतिकारी प्रयोग बताया है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उद्देश्य अलग-अलग दृष्टिकोण से ग्रामीण विकास था, यह उद्देश्य पूरा न होने से स्पष्ट हो गया कि विकास कार्यक्रम में लोगों की भूमिका प्रभावी तभी बनेगी, जब स्थानीय स्तर पर नीति-निर्माण और अलग-अलग योजनाओं का निर्माण और लागू होने से लोगों को भागीदार बनाया या जोड़ा जाये।

सन् 1952 में शुरू हुए सामूहिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करने तथा उसमें रही कमियों को दूर करने के लिए 1957 में योजना आयोग (Planning Commission) की परियोजना समिति ने बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में अध्ययन समिति की रचना की थी। इस समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण शब्द दिया। जिसमें निम्नस्तर तक

सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने की सिफारिश की। इसके लिए कमिटी ने सत्ता का लोकतांत्रिक स्वरूप में विकेन्द्रीकरण कर ग्राम, तालुका और जिला स्तर पर लोगों के प्रतिनिधित्व विकास कार्यक्रम चलाए, जिसके लिए त्रिस्तरीय ढाँचे की रचना करने की सिफारिशें की। ग्राम विकास के कार्यों की जवाबदारी और सत्ता पंचायतें संभालें इसके लिए उन्होंने पंचायती राज शब्द का उपयोग किया था।

ग्राम पंचायत सभा

पंचायती राज का अर्थ

पंचायती राज अधिकांशतः भारत, पाकिस्तान और नेपाल में आई दक्षिण एशियाई राजनैतिक प्रथा है। पंचायत शब्द पंच से आया है। पंचायत अर्थात् स्थानीय समुदाय द्वारा पसंद किया गया पाँच बुजुर्गों का समूह।

श्री एस. के. डे – 'पंचायतीराज यह जनता की उन्नति के लिए मार्ग है। पंचायतीराज का सही अर्थ तो यह हैं कि लोग संगठित, जाग्रत और स्वावलंबी बनें और सरकार के पास जो अधिकार है उसे लेकर स्वयं उपयोग करें।'

विद्यासागर शर्मा — 'पंचायती राज एक ऐसी कल्पना है, जो विश्व के समक्ष लोकतंत्र का एक नया ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करे।' संक्षिप्त में पंचायती राज अर्थात् सत्ता का विकेन्द्रीकरण। लोकतंत्र की तरह सामूहिक विकास का कार्य करने की सत्ता संभालती लोगों द्वारा चुनी गई पंचायतों की व्यवस्था।

पंचायती राज के उद्देश्य और लक्ष्य

पंचायतीराज की स्थापना के उद्देश्य या लक्ष्य निम्नानुसार हैं :

(1) सत्ता का लोकतांत्रिक ढंग से विकेन्द्रीकरण :

पंचायतीराज का एक मुख्य उद्देश्य सत्ता का लोकतांत्रिक ढंग से विकेन्द्रीकरण करना है। लोकतांत्रिक समाज में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके समाज के सभी लोग स्वयं सत्ता में सक्रिय हिस्सेदार बने हैं। गाँवों का स्थानीय क्षेत्र के प्रशासन की जवाबदारी और सत्ता गाँव के लोगों को मिले और वे विकास के कार्यक्रमों में रुचि लेने लगें। सत्ता के ऊपरी स्तर तक अभिप्राय व्यक्त करने का अवसर मिले आदि उद्देश्यों से पंचायती राज की स्थापना की गई है।

(2) सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को पुनर्जीवित करना :

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के लक्ष्य सिद्ध नहीं हुए थे। बलवंतराय मेहता कमिटी ने इस बात को ध्यान में रखकर सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से पंचायती राज की स्थापना करने की सिफारिशें की थी। ग्राम के कार्यक्रमों को सफल बनाने में ग्रामीण लोगों की भागीदारी अत्यंत आवश्यक है। पंचायती राज की पद्धति दाखिल करने के लिए से लोग इस कार्यक्रम से जुड़ेंगे और लोगों का समर्थन मिलेगा। यह सफल बनेगा पंचायती राज का यह उद्देश्य है।

(3) लोक भागीदारी बढ़ाना :

ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में लोकभागीदारी और सहयोग प्राप्त करने तथा लोगों का समर्थन प्राप्त करने का उद्देश्य है। प्रजा अपनी समस्याएँ सामने रखे और विकास कार्यक्रमों में भागीदार बने, यह उद्देश्य है।

(4) गाँवों का नव-निर्माण करना :

पंचायती राज का मूलभूत उद्देश्य गाँवों का सर्वांगींण विकास करके नवनिर्माण करना था। जिनमें ग्रामीण समस्याएँ जैसे कि गरीबी, निरक्षरता, बेकारी आदि दूर करके उनका सामाजिक आर्थिक स्तर ऊँचा लाकर उनकी मूलभूत आवश्यकताएँ संतुष्ट करना है।

(5) लोक सशक्तिकरण :

पंचायती राज की स्थापना का उद्देश्य लोकसशक्तिकरण का है, जिसमें स्त्रियों के लिए एक-एक तिहाई

सीटें, अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था, पंचायतों को सत्ता और जवाबदारी सौंपनी और ग्रामीण विकास के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं की सहायता द्वारा लोक सशक्तिकरण का उद्देश्य था।

पंचायती राज का त्रिस्तरीय ढाचा

पंचायती राज का त्रिस्तरीय ढाँचा

पंचायती राज एक सरकारी पद्धति है। जहाँ ग्राम पंचायत का प्रशासन मूलभूत इकाई है। राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज की पद्धति 1950 से 1960 के दशक में अपनाई गई। 24 अप्रैल, 1993 का दिन भारत में पंचायती राज के लिए 73वाँ संवैधानिक सुधार, संवैधानिक दर्जा प्रदान करता है। बलवंतराय मेहता समिति ने त्रिस्तरीय (ग्राम, तहसील और जिला) पंचायती राज की स्थापना करने की जानकारी दी। भारत की प्रत्येक राज्य सरकार ने अपनी अनुकूलता के अनुसार लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का स्वरूप विकसित किया है।

बलवंतराय मेहता कमिटी की रचना के अनुसार त्रिस्तरीय पंचायती राज का ढ़ाँचा निम्न प्रकार से था :

पंचायती राज

↓

- **ग्राम पंचायत**
  - (1) ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्य
  - (2) ग्राम पंचायत के अधिकारी
    - ↓ मंत्री
    - ↓ ग्राम सेवक
- **तहसील (तालुका) पंचायत**
  - (1) तहसील पंचायत के निर्वाचित सदस्य
  - (2) सहसदस्य और आमंत्रित सदस्य
  - (3) तहसील पंचायत की समितियाँ
  - (4) तहसील पंचायत प्रमुख
  - (5) तहसील विकास अधिकारी
- **जिला पंचायत**
  - (1) निर्वाचित सदस्य
  - (2) सह सदस्य और आमंत्रित सदस्य
  - (3) जिला पंचायत की विविध समितियाँ
  - (4) जिला पंचायत अध्यक्ष
  - (5) जिला विकास अधिकारी

पंचायती राज के ढाँचे में ग्राम पंचायत सबसे नीचे की इकाई है, उसके बाद तहसील स्तर पर तहसील पंचायत और सबसे ऊपर जिला स्तर पर जिला पंचायत है। इन तीनों स्तरों पर प्रशासन-शासन और विकास के कार्य करती पंचायती तंत्र को त्रिस्तरीय ढाँचा कहते हैं। पंचायतों के चुनाव के लिए विशेष निर्वाचन आयोग की रचना की गई है। इन तीनों स्तर की पंचायतों की रचना संबंधी जानकारी निम्नानुसार है :

(1) ग्राम पंचायत (प्रथम स्तर)

पंचायती राज की रचना में ग्राम पंचायत आधारभूत स्वशासन की इकाई है। ग्राम पंचायत के सदस्यों की संख्या जनसंख्या के आधार पर निश्चित होती है। ग्राम पंचायत गाँव में स्थानीय स्तर पर लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से बनी स्थानीय स्वराज्य की संस्था है। वयस्क आयु के मताधिकार के आधार पर पंचायत का चुनाव होता है। गाँव में विकास कार्यों तथा स्थानीय समस्याओं का समाधान लाने की जवाबदारी और सत्ता ग्राम पंचायत की होती है। ग्राम पंचायत के ढाँचे में निर्वाचित सदस्य होते हैं और दूसरे सरकार द्वारा नियुक्त मंत्री और ग्राम सेवक दो अधिकारी होते हैं, जो प्रशासनिक कार्यों में सरपंच को सहायता और मार्गदर्शन देते हैं।

ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्य :

ग्राम पंचायत के सदस्यों की पसंदगी चुनाव द्वारा होती है। गाँव के वयस्क मतदाता गुप्त मतदान पद्धति से ग्राम पंचायत के सदस्यों को चुनते हैं। ग्राम पंचायत में गाँव की जनसंख्या के आधार पर कम से कम सात और

अधिक से अधिक 15 सदस्य होते हैं। ग्राम पंचायत के सदस्य के रूप में गाँव की अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित रखे गए हैं। गाँव के मतदाता सरपंच और ग्राम पंचायत के अन्य सदस्य चुनते हैं। मतदाताओं द्वारा चुने गए ये सदस्य मिलकर उप-सरपंच को चुनते हैं। सरपंच ग्राम पंचायत का अध्यक्ष होता है।

सरपंच ग्राम पंचायत के अध्यक्ष के रूप में गाँव के विकास कार्यों और प्रसाशनिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अलावा सरपंच पंचायत के कर्मचारियों के कार्य पर नजर रखने तथा ग्राम पंचायत के सदस्यों द्वारा किए गए निर्णय को लागू करने का कार्य भी करता है।

ग्राम पंचायत के अंग गुजरात राज्य के पंचायती कानून के अनुसार निम्नलिखित है :

- **ग्रामसभा :** गाँव के सभी मतदाता ग्रामसभा के सदस्य होते हैं। ग्रामसभा यह आधारभूत इकाई है। जिसके प्रति ग्राम पंचायत जवाबदार होती है। ग्राम पंचायत के बजट और विकास कार्यों की ग्रामसभा विचारणा करती है। वर्ष में दो बार ग्रामसभा की बैठक आयोजित होती है।
- **कार्यकारणी समिति :** ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्यों में से पाँच सदस्यों की कार्यकारणी समिति बनती है। इन पाँच सदस्यों में से एक महिला सदस्य होती है और एक सदस्य अनुसूचित जाति या जनजाति का होता है। नए 73वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार सभी पंचायती स्तरों पर महिलाओं का 33 % प्रतिनिधित्व आरक्षित किया गया है।
- **सामाजिक न्याय समिति :** गाँव के कमजोर वर्गों को सामाजिक न्याय प्राप्त होता रहे, ऐसे कार्यों के लिए सामाजिक न्याय समिति की रचना की गई है।
- **न्याय पंचायत :** नजदीक के पाँच-सात गाँवों के समूह के लिए एक संयुक्त न्याय पंचायत होती है। समूह के प्रत्येक गाँव सें एक-एक सदस्य न्याय पंचायत के सदस्य के रूप में कार्य करता है। न्याय पंचायत के सदस्य के रूप में गाँव के मतदाताओं में से शिक्षित और योग्यता वाले व्यक्ति को ग्राम पंचायत चुनती है। ये सदस्य अपने में से एक समिति निश्चित करते हैं। न्याय पंचायत अनेक दीवानी और फौजदारी सत्ताएँ रखती है। न्याय पंचायत गाँवों की स्थानीय समस्याओं का समाधान करके न्याय देने का कार्य करती है।
- **समाधान सभा :** प्रत्येक गाँव में एक समाधान सभा रची जाती है। समाधान सभा के स्थायी सदस्य के रूप में एक व्यक्ति होता है। गाँव के मतदाताओं में से शिक्षित और योग्य व्यक्ति को ग्राम पंचायत समाधान सभा के सदस्य के रूप में चुनते हैं। झगड़े का समाधान करने के लिए समाधान सभा बैठती है तब उसका एक स्थायी सदस्य और दोनों पक्षों की पसंद से एक-एक सदस्य इस प्रकार तीन सदस्यों की समाधान सभा की रचना होती है। न्याय पंचायत की तरफ से आए दावों, दोनों पक्षों को सुनकर समाधान करने का प्रयास करती है।

  ग्राम पंचायत के स्तर पर पंचायत मंत्री और ग्रामसेवक ये दो अधिकारी होते हैं, जो प्रशासन में सरपंच की सहायता करते हैं।

ग्राम पंचायत का मंत्री :

ग्राम पंचायत का मंत्री सरकार द्वारा नियुक्त कर्मचारी है। मंत्री ग्राम पंचायत का रिकॉर्ड रखने उसकी संभाल करने, बजट, अनुमान और रिपोर्ट तैयार करने में पंचायत को सहायता करता है। इसके अलावा ग्राम पंचायत के वित्तीय हिसाब रखने और उन हिसाबों पर सरपंच के हस्ताक्षर लेना भी उसका कार्य है। सरपंच और पंचायत के अन्य पदाधिकारी सरकारी नियमों के अधीन रहकर कार्य करते रहें, यह भी देखना होता है।

ग्रामसेवक अथवा ग्राम स्तर का कार्यकर्ता :

इसे ग्राम विकास अधिकारी कहते हैं। जो पंचायत की अलग-अलग योजनाएँ तैयार करने में सहायता करता है और विभिन्न विकास कार्यक्रमों के विषय में जानकारी देता है। कृषि के लिए लोन प्राप्त करने में किसानों की सहायता करता है। बीज और खाद जैसी वस्तुएँ मिलती रहें, इसका प्रबंध करता है और आधुनिक कृषि प्रणाली किसानों को सिखाता है। तहसील पंचायत को योजनाओं की प्रगति और लक्ष्यों की उपलब्धि की रिपोर्ट देता है।

ग्राम पंचायत के कार्य :

ग्राम पंचायत को गाँव के सर्वांगीण विकास के लिए अनेकविध कार्य करने होते हैं। गाँव की मूलभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए उसके दो मुख्य कार्य हैं :

(1) नागरिक कार्य : नागरिक कार्यों में सफाई, स्वच्छता, जलापूर्ति, मार्गों का निर्माण और देखरेख, प्रकाश व्यवस्था, स्मशान की व्यवस्था, प्राथमिक शिक्षा, कुएँ–तालाब जैसे सार्वजनिक स्थानों, धार्मिक स्थानों आदि का निर्वाह और देख–रेख करना।

(2) विकासात्मक कार्य : सहकारी प्रवृत्तियों को वेग देना, कमजोर वर्गों के विकास के लिए विशिष्ट प्रबंध करना, गाँव के युवाओं, महिलाओं, बालकों आदि के विकास के लिए प्रवृत्तियाँ करनी, गाँव के मेलों और बाजार की व्यवस्था करना आदि विविध कार्य ग्राम पंचायत को करने होते हैं।

आय के स्रोत : ये कार्य करने के लिए ग्राम पंचायत कई स्थानीय कर लगाकर वित्त एकत्रित करती है। इसके अलावा सरकारी अनुदान, लोगों की सहायता, जिला पंचायत, तहसील पंचायत की आर्थिक सहायता आदि साधनों से ग्राम पंचायत को वित्त मिलता है।

(2) तहसील पंचायत (द्वितीय स्तर)

तहसील पंचायत का स्थान ग्राम पंचायत और जिला पंचायत के बीच है। एक लाख की जनसंख्या तक तहसील पंचायत के 15 सदस्य होते हैं। 25 हजार की जनसंख्या बढ़ने पर 2 सदस्यों की वृद्धि होती है। कुल सीटों में से एक तिहाई सीटे स्त्रियों के लिए आरक्षित रखी जाती हैं। इसके अलावा जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लिए स्थान आरक्षित रखें गए हैं। तालुका पंचायत का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है।

तहसील पंचायत का ढाँचा (रचनातंत्र) :

तहसील पंचायत के रचनातंत्रीय अंग निम्नानुसार हैं :

- **निर्वाचित सदस्य :** तहसील के सभी गाँवों के मतदाता सीधे निर्वाचन में तहसील पंचायत के सदस्यों को गुप्त मतदान पद्धति सें चुनते हैं ये निर्वाचित सदस्य तहसील पंचायत के प्रमुख और उपप्रमुख को चुनते हैं।
- **सहसदस्य और आमंत्रित सदस्य :** तहसील पंचायत में निर्वाचित सदस्यों के अलावा सहसदस्य और आमंत्रित सदस्य होते हैं। ये सदस्य तहसील पंचायत की मीटिंग में शामिल होते हैं, चर्चा में भाग लेते हैं, परामर्श दे सकते हैं; लेकिन उन्हें मतदान का अधिकार नहीं है।
- **तहसील पंचायत की समितियाँ :** तहसील के गाँवों का विकास कार्य करने के लिए तहसील पंचायत अपने सदस्यों में से कार्यकारिणी समिति और सामाजिक न्याय समिति की रचना करती है। इसके अलावा आवश्यकतानुसार ऐच्छिक समितियों की रचना करती है।

(1) कार्यकारी समिति : तालुका पंचायत के सदस्य अपने में से 9 सदस्यों तक की कार्यकारी समिति की रचना करती है। ये सदस्य अपने में से एक सदस्य को कार्यकारी समिति के अध्यक्ष के रूप में चुनते हैं। इस समिति का कार्यकाल दो वर्ष का होता है।

(2) सामाजिक न्याय समिति : तालुका पंचायत में इस समिति की रचना करनी अनिवार्य है। इस समिति के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक पाँच होती है और यह तालुका पंचायत निश्चित करती है।

तहसील पंचायत का प्रमुख (अध्यक्ष) :

तालुका पंचायत के निर्वाचित सदस्य अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं। अध्यक्ष तहसील की ग्रामीण प्रजा का प्रतिनिधित्व करता लोकतांत्रिक नेता है।

तहसील विकास अधिकारी (TDO) :

तहसील विकास अधिकारी तहसील पंचायत का व्यवस्थापन कार्य करने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी है। सरकारी और प्रशासनिक कार्य करने के लिए पंचायत के अध्यक्ष को मार्गदर्शन देता है।

तहसील पंचायत के कार्य :

(1) **स्वास्थ्य और सफाई :** इस क्षेत्र में तहसील पंचायत ग्रामीण पानी की पूर्ति, जल का प्रदूषण रोकना, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, चिकित्सालय, प्रसूतिगृह और परिवार नियोजन से जुड़े कार्य करने होते हैं।

(2) **शिक्षा :** तहसील पंचायत तहसील के गाँवों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना और उनका संचालन, प्राथमिक विद्यालयों का भवन निर्माण, खेल के मैदान बनाने, माध्यमिक शिक्षा से जुड़े कार्य करना तथा समाज शिक्षा से जुड़े कार्यों में अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़शिक्षा संबंधी कार्य करने होते हैं।

(3) **निर्माण कार्य :** तहसील के गाँवों को जोड़ते मार्ग, गाँव के मार्ग बनाना और उनका देखरेख करने का कार्य होता है। इसके उपरांत तहसील के मार्गों के दोनों तरफ वृक्षारोपण का कार्य करना होता है।

(4) **ग्रामीण आवास :** तहसील पंचायत को तहसील के गाँवों के क्षेत्र का विकास और गाँव के आवास का आयोजन करने का कार्य करना होता है।

(5) **खेती-बाड़ी :** तहसील पंचायत को तहसील के क्षेत्र में खेती-बाड़ी में सुधार, सिंचाई कार्य के लिए निर्माण, जमीन सुधार, जमीन संरक्षण, कृषि और सिंचाई के कर्ज की व्यवस्था, किसानों के प्रशिक्षण केन्द्रों और विस्तरण कार्यक्रमों, वोटर शेड के कार्य तथा गोदामों की स्थापना और उनकी देखभाल से संलग्न कार्य करने होते हैं।

(6) **पशु संवर्धन :** तहसील पंचायत को पशु चिकित्सालय चलाने, पशुओं के कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों को चलाने तथा डेरी विकास से संलग्न कार्य करने होते हैं।

(7) **ग्रामोद्योग :** ग्रामोद्योग के विकास के लिए तहसील पंचायत उत्पादन-सहतालीम केन्द्रों की स्थापना, खादी ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योगों का विकास करना तथा टेक्निकल और व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों को चलाने के कार्य करने होते हैं।

(8) **सहकार क्षेत्र :** तहसील पंचायत तहसील क्षेत्र में सहकारी प्रवृत्तियों का विकास करने के लिए सहकारी स्तर पर कर्ज, बिक्री, उद्योग, सिंचाई संबंधी विविध मण्डलियाँ स्थापित करने का कार्य करना होता है।

(9) **राहत कार्य :** तहसील पंचायत को प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, आग, भूकंप, महामारी, दुष्काल के समय तहसील क्षेत्र में ग्रामीणों को राहत कार्य करना होता है।

(10) **समाज कल्याण और सुरक्षा :** तहसील पंचायत को तहसील के गाँवों में अस्पृश्यता निवारण, समाज के कमजोर वर्गों, विकलागों, वृद्धों, निराधार, विधवा, परित्यक्ता कल्याण की योजनाओं का निर्माण तथा उनका अमल करना होता है तथा अनाथाश्रम और गरीबों के लिए आश्रयस्थलों का निर्माण और चलाने के कार्य द्वारा जरूरतमंदों को समाजसुरक्षा प्रदान करने का कार्य करना होता है।

(3) जिला पंचायत (तृतीय स्तर)

पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना में जिला पंचायत सबसे ऊपरी स्तर की संस्था है। 4 लाख की जनसंख्या तक जिला पंचायत 17 सदस्यों से बनी होती है। उसके बाद प्रति एक लाख की जनसंख्या दो सदस्यों की वृद्धि होती है। जिला पंचायत की कुल सीटों के एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित रखी गई हैं। जनसंख्या के अनुपात में अनुचित जातियों और आदिवासियों के लिए सीटें और अध्यक्ष पद आरक्षित रखे गए हैं। बक्षीपंच (अन्य पिछड़ा वर्ग) के लिए 10 % सीटें और अध्यक्ष पद आरक्षित रखा गया है।

जिला पंचायत का ढाँचा (रचनातंत्र) :

जिला पंचायत की संरचना के आधार पर अंग निम्नानुसार हैं :

(1) **निर्वाचित सदस्य :** जिले के गाँवों के मतदाताओं द्वारा सीधे चुनाव से जिला पंचायत सदस्य चुनते हैं। ये निर्वाचित सदस्य जिला पंचायत के प्रमुख और उपप्रमुख को चुनते हैं।

(2) **सहसदस्य और आमंत्रित सदस्य :** जिला पंचायत के सीधे चुनाव से निर्वाचित सदस्यों के अलावा मनोनीत सदस्य नियुक्त सदस्य और को-ऑप्ट सदस्य होते हैं। निर्वाचित सदस्यों की तुलना में इन सदस्यों के अधिकार मर्यादित हैं। उन्हें मतदान का अधिकार नहीं है।

(3) **जिला पंचायत की समितियाँ :** जिला पंचायत को जिले के गाँवों के विकास से संलग्न अनेक कार्य करने होते हैं। इन कार्यों को करने के लिए जिला पंचायत के सदस्यों सें बनी लगभग 10 समितियों की रचना की जाती है। प्रत्येक समिति के सदस्य अपने में से किसी एक सदस्य को समिति के अध्यक्ष के रूप में चुनते हैं। अध्यक्ष के मार्गदर्शन में समिति कार्य करती है।

(4) जिला पंचायत का प्रमुख : जिला पंचायत का प्रमुख लोकतांत्रिक ढंग से चुना हुआ नेता होता है और वह जिला पंचायत के अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। पंचायती राज में प्रमुख पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्रमुख जिले की ग्रामीण प्रजा का प्रतिनिधि है। पंचायती राज की सफलता तथा ग्रामीण विकास की सफलताओं का आधार प्रमुख के कार्य पर रहता है।

(5) जिला विकास अधिकारी (DDO) : जिला विकास अधिकारी जिला पंचायत का प्रथम वर्ग का सरकारी अधिकारी होता है। उसे जिला पंचायत के कार्यालय में व्यवस्थापन की जिम्मेदारी संभालनी होती है। सरकारी अधिकारी के रूप में जिला पंचायत के चुने हुए सदस्यों और प्रमुख को सरकार के नियमों की जानकारी और मार्गदर्शन देता है।

जिला पंचायत के कार्य :

जिला पंचायत अपनी निगरानी में सभी तहसीलों और गाँवों के सर्वांगी विकास के कार्यों के लिए मार्गदर्शन देती है। जिला पंचायत के कुछ कार्य निम्नानुसार हैं :

(1) समग्र जिले के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की नीतियाँ बनाकर तहसील और ग्राम पंचायत से उन्हें लागू करवाती है।

(2) जिले के विविध तहसीलों तथा गाँवों को जोड़ते मार्ग बनाने तथा जिले के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को वाहनव्यवहार की सुविधा प्रदान करता है।

(3) जिले का कृषि उत्पादन बढ़े इसके लिए कृषि विषयक सभी सुविधाएँ जैसे सिंचाई, बीज, खाद, जंतुनाशक दवाएँ, कृषि की नई पद्धति आदि उपलब्ध कराती है।

(4) जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी घटे इसके लिए छोटे आधारभूत उद्योग हस्त उद्योगों की स्थापना तथा गाँवों के बेकार लोगों को रोजगारी के अवसर मिले, ऐसे कार्यक्रम बनाकर तहसील पंचायत से उन्हें लागू करवाएँ।

(5) ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का स्वास्थ्य सुधरे जिसके लिए ग्राम स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्रों, मातृ और बाल कल्याण केन्द्रों की स्थापना करने का कार्य जिला पंचायत करती है। गाँवों में छूत के रोग उत्पन्न हों तब जिला केन्द्र से उपचार के साधन, डॉक्टरों का दल, दवाएँ आदि तात्कालिक गाँव में पहुँचाने का कार्य जिला पंचायत का है।

(6) जिले के गाँवों से निरक्षरता दूर करने के लिए जिला पंचायत विशिष्ट कार्य करती है। प्रत्येक गाँव में प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने, वित्तीय य सहायता करने, शैक्षणिक साधन भेजने, ग्राम्य क्षेत्रों के विद्यालयों में शिक्षकों की भर्ती तथा बदली करने, विद्यालयों की जाँच करते शैक्षणिक सुधार के निर्देश, निरक्षर प्रौढ़ों को अक्षरज्ञान प्राप्त हो ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध करवाने का कार्य करती है।

(7) जिले के ग्राम्य क्षेत्रों में बसे कमजोर वर्ग के लोग जैसेकि अनुसूचित जाति, आदिवासी, कृषि मजदूरों आदि के उत्कर्ष के लिए योजनाएँ बनाना, तहसील पंचायत से भी योजनाएँ बनवाना तथा उन्हें कार्यान्वित करने का कार्य जिला पंचायत करती है।

(8) जिले के ग्राम्य क्षेत्रों में सांस्कृतिक प्रवृत्तियों तथा खेल-कूद की प्रवृत्तियाँ विकसित हों, पुस्तकालयों की स्थापना, युवक विकास और महिला विकास के लिए संगठनों की स्थापना हो ऐसे तहसील और ग्राम पंचायत के कार्यों में जिला पंचायत सहायक बनती है। इसके लिए साधन तथा आर्थिक सहायता भी देती है।

संक्षिप्त में जिला पंचायत पंचायती राज की जिलास्तर की सर्वोच्च लोकतांत्रिक संस्था के रूप में ग्राम्य क्षेत्रों के सर्वांगी विकास के लिए प्रयास करती है। इसलिए कुछ वित्त, राज्य सरकार की तरफ से ग्रान्ट के रूप में मिलता है। इसके अलावा जिला पंचायत को महसूल, स्थानीय कर आदि से भी आय होती है। जिला पंचायत अपनी आय के लिए अन्य साधन भी खड़े कर सकती है।

पंचायती राज के सामाजिक प्रभाव

पंचायती राज की स्थापना का उद्देश्य लोकतांत्रिक रूप से सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना तथा गाँवों के सर्वांगी विकास के प्रयास करने हैं। इन उद्देश्यों को देखकर पंचायती राज के ग्रामीण समाज पर सामाजिक प्रभाव मुख्यत: निम्नानुसार दिखाई देते हैं :

(1) लोकतंत्र के मूल्यों का प्रसार : भारत की अधिकांशतः जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। पंचायती राज के अमल से ग्रामीण समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसारण को वेग मिला है। गाँवों के मतदाताओं को अपने मत का उपयोग करके प्रतिनिधि चुनने का अवसर मिलता है।

(2) नए नेतृत्व का प्रभाव : परंपरागत ग्रामीण समाज में सामान्य रूप से वयोवृद्ध व्यक्ति को वंशानुगत रूप से नेतृत्व पद मिलता था। पंचायती राज के कारण निर्वाचन में गाँव के युवक और शिक्षित वर्ग को उम्मीदवारी करने और चुने जाने का अवसर मिलता है। जिसके परिणामस्वरूप युवा शिक्षित और गतिशील नेतृत्व उद्‌भव हुआ है।

(3) सत्ता के ढाँचे में परिवर्तन : पंचायती राज की स्थापना होने से सत्ता का विकेन्द्रीकरण संभव हुआ। गाँव के लोगों के हाथों में सत्ता आई। वे स्वयं ही अपने प्रतिनिधि पसंद करके विकास कार्यों के आयोजन, अमल और प्रशासन की जिम्मेदारी संभालते हैं। पंचायती राज से समानता तथा स्वातंत्र्य की दिशा में सत्ता का बँटवारा होने लगा।

(4) सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि : पंचायती राज के कारण सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि होने लगी है। पंचायत के तीनों स्तरों में आरक्षण के प्रावधान से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को पंचायत में चुने जाने और सत्ता प्राप्त करने का अवसर मिला, परिणामस्वरूप परंपरागत रूप से निम्न स्थान पर मानी जानेवाली जातियों के सदस्यों के राजनैतिक और आर्थिक-सामाजिक स्तर में सुधार या ऊपर उठाने का अवसर मिला है। इस तरह राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई।

(5) राजनीतिक जाग्रति : पंचायतों के चुनावों ने राजनैतिक जागृति लाने में भूमिका निभाई है। चुनाव के समय अलग-अलग राजीतिक दलों के नेता गाँवों में जाते हैं। वहाँ सभा करके अपनी पार्टी के चुनावी वादे करते हैं। परिणामस्वरूप लोग राष्ट्रीय दलों, दलप्रथा, दलों की सामाजिक, आर्थिक नीति आदि राजनीतिक समस्याओं से परिचित होते हैं। जिससे राजनीतिक समझ और समानता ग्रामीण लोगों में विकसित होती है।

(6) बिन सांप्रदायिकता : पंचायत के चुनाव में खड़े हुए उम्मीदवारों को अलग-अलग जातियों का सहयोग लेना पड़ता है। चुनाव के बाद पंचायत के सदस्य, पंचायत की कार्यवाही में भी जाति या कौम के भेद-भाव के बिना साथ मिलकर विचार-विमर्श करके निर्णय लेने के लिए एक-दूसरे का सहयोग लेना पड़ता है। इस तरह ग्राम समाज का परंपरागत साम्प्रदायिकता का विचार कमजोर पड़ता है और बिन सांप्रदायिकता के मूल्यों का प्रचार-प्रसार होता है।

(7) सामाजिक अंतर में कमी : पंचायतीराज के कारण गाँवों की विविध उच्च-निम्न जातियों, पुरुष और स्त्री, किसान और कृषि मजदूर आदि वर्गों के बीच परंपरागत सामाजिक अंतर कम होने लगा है। पहले के समय में इन सभी वर्गों के बीच एक प्रकार का सामाजिक अंतर था; परन्तु अब पंचायती चुनावों में उसकी कार्यवाही गाँव के सार्वजनिक विकास के कार्यों में प्रत्येक वर्ग के सदस्य को परस्पर आंतरक्रिया और सामाजिक संपर्क करना अनिवार्य है। इससे धीरे-धीरे उनके बीच सामाजिक अंतर घटने लगा है।

(8) जन भागीदारी में वृद्धि : पंचायतीराज की स्थापना के पीछे ग्राम विकास के कार्यक्रमों में लोगों की भूमिका बढ़ाना था। जिसमें सफलता प्राप्त हुई है। यह अनेक अध्ययनों से जान सकते हैं। अब गाँवों में पंचायत का भवन, गोबरगैस प्लान्ट, वॉटरवर्क्स, सार्वजनिक शौचालय, मार्गों पर लाइट और वृक्ष आदि सुविधाएँ हुई हैं। इसी तरह के गाँवों में लोगों के योगदान तथा सरकार से सहायता प्राप्त करके बिजलीकरण किया गया है। लोग स्वैच्छिक श्रम के रूप में गाँव के विकास में योगदान देकर मार्ग भी बनाते हैं।

पंचायती राज के कई नकारात्मक सामाजिक प्रभाव भी पड़े हैं। जो संक्षिप्त में इस प्रकार दर्शाए गए हैं :

(1) वर्गवाद और पक्षपात : पंचायती राज के चुनावों ने गाँवों में भी पक्षपात और वर्गवाद को उत्तेजना दी है। चुनाव के समय गाँव में अलग-अलग राजनीतिक दल सक्रिय बनकर अपने उम्मीदवारों के लिए सहयोग प्राप्त करने हेतु वर्ग खड़े करते हैं। परिणामस्वरूप कई बार गाँवों में कड़वाहट के स्थायी बीज रोपे जाते हैं।

(2) जातिवाद को प्रोत्साहन : पंचायती चुनावों में विविध जातियाँ अपनी संख्या के आधार पर उम्मीदवार खड़ा करती हैं। जिससे कई बार उम्मीदवार की व्यक्तिगत योग्यताएँ गौण बन जाती हैं और चुनाव जीतने

के लिए जाति का सहयोग निर्णायक बनता है। इस प्रकार जो अधिक संख्याबल वाली जाति का उम्मीदवार व्यक्तिगत योग्यता से दूसरे उम्मीदवार से कमजोर होने पर भी वह जाति के सदस्यों का सहयोग प्राप्त करने के लिए चुनाव प्रचार में जाति के हितों को प्रधानता देता है और अपनी जाति को आगे लाने का वचन देता है इससे गाँवों में जातिवाद को प्रोत्साहन मिलता है और जातिप्रथा को समाप्त करने के संविधान के आदर्श को नकारा जाता है।

(3) **अंतरजातीय संघर्ष :**जातिवाद अंतरजातीय संघर्ष उत्पन्न करता है। विविध जातियों के बीच के हित संघर्ष और वर्गवाद उनके बीच संघर्ष पैदा करते हैं। पंचायत के चुनाव के बाद कई गाँवों में विविध जातियों के बीच झगड़े मार-पीट, संघर्ष के कारण बनते हैं, इस प्रकार पंचायती राज पद्धति की कई सीमाएँ भी दिखाई देता है।

पंचायती राज 73वें संवैधानिक सुधार की विशेषताएँ

ग्रामसभा को पंचायती राज प्रणाली का आधार माना गया है। ये ग्रामसभाएँ राज्य विधानमंडल द्वारा सोपे गए कार्य तथा अधिकारों का उपयोग करेगी।

ग्राम मध्यवर्ती और जिला स्तरों पर पंचायतों को तीन स्तरों में बाँटे हैं। 20 लाख की जनसंख्या वालें राज्यों को यह अधिकार होगा कि वे चाहें तो मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत की रचना न करें। अनुच्छेद 243 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए विशेष व्यवस्था के अंतर्गत भी सदस्य बन सकते हैं। प्रत्यक्ष रूप से तीनों स्तरों पर सदस्यों का चुनाव होगा। ग्राम पंचायतों का अध्यक्ष मध्यवर्ती संस्थाओं का सदस्य बन सकेगा। इसी तरह मध्यवर्ती स्तरों के सदस्य जिला संस्थाओं के भी सदस्य बन सकेंगे।

प्रत्येक स्तर पर पंचायत का कार्यकाल 5 वर्ष होगा और कार्यकाल पूरा हो उससे पहले ही चुनाव किए जाएँगे। पंचायत को भंग करने की स्थिति आए तो छः महीने के अंदर चुनाव करवाना अनिवार्य होगा।

प्रत्येक स्तर पर पंचायतों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें आरक्षित रखी जाएँगी। कुछ सीटों के एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगी। इसी तरह पंचायत में प्रत्येक स्तर पर अध्यक्ष पद की कुल संख्या में कम से कम एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे। राज्यों की जनसंख्या में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में जनसंख्या का जो अनुपात है उसी प्रकार इनके लिए आरक्षित पद का अनुपात होगा। इसके अलावा राज्यों के विधानमंडलों द्वारा पंचायत में किसी भी स्तर अथवा अध्यक्षों के पद में किसी भी स्तर पर पिछड़ी जातियों के नागरिकों के लिए पद आरक्षित रखे जा सकते हैं।

24 अप्रैल, 1993 से अर्थात् 73वें संवैधानिक संशोधन को लागू करें उसी तारीख से एक वर्ष के अंदर और उसके बाद पाँच वर्ष की समाप्ति के बाद सभी राज्यों में एक वित्त आयोग की रचना की जाएगी, उस राज्य और सभी स्तरों की पंचायतों के बीच वित्तीय संसाधनों का वितरण तथा हस्तांतरण के नियंत्रित सिद्धांतों और पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुधारने के उपायों पर विचार करेगा।

विकास योजनाएँ लागू करने को लिए पंचायतों को पर्याप्त मात्रा में वित्त उपलब्ध करवाया जाएगा।

पंचायत को कर एकत्रित करने की मंजूरी देना अथवा महसूल का कुछ भाग पंचायती राज की संस्थाओं को देना या नहीं देना है यह राज्य सरकार स्वयं ही निश्चित करेगी।

पंचायतों की मतदाता सूची तैयार करना और प्रत्येक चुनाव करवाने का कार्य राज्य चुनाव आयोग करेगा। जिसकी रचना सभी राज्यों में की जाएगी।

यदि कोई भी व्यक्ति राज्य विधानमंडल के चुनाव के किसी कानून द्वारा या फिर राज्य के अन्य किसी कानून द्वारा अयोग्य घोषित किया जाए तो वह व्यक्ति पंचायत का सदस्य नहीं बन सकता।

अंत में 29 मतोंवाली ग्यारहवीं अनुसूचि अनुच्छेद 243 जी जोड़ी गई। जिसके द्वारा स्थानीय महत्त्वपूर्ण कार्यों की योजना बनानी और लागू करने में पंचायती राज संस्थाओं को महत्त्वपूर्ण भूमिका दी जाती है। ये मुद्दे निम्नानुसार हैं :

(1) कृषि के अंतर्गत कृषि क्षेत्र में वृद्धि करना

(2) भूमि सुधार को लागू करना।

(3) लघु सिंचाई, जल प्रबंध और जलविकास।

सामुदायिक विकास के लिए लोक भागीदारी और नियमानुसार कार्य करना जरूरी है; परन्तु यदि उसमें किसी स्तर पर विचलित व्यवहार या मानक भंग हो तो सामुदायिक विकास पर उसके विपरीत प्रभाव होने की संभावना को नकार नहीं सकते। ऐसे मानक भंग के व्यवहार की जानकारी अब आगे की पाठ में देखेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से लिखिए :

(1) पंचायती राज का अर्थ और उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

(2) पंचायती राज के त्रि-स्तरीय ढाँचे को समझाइए।

(3) पंचायती राज के सामाजिक प्रभावों का वर्णन करें।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर मुद्दासर दीजिए :

(1) ग्राम पंचायत के कार्य।

(2) जिला पंचायत के ढाँचे (रचना) को स्पष्ट कीजिए।

(3) पंचायती राज के नकारात्मक प्रभाव समझाइए।

(4) '73 वाँ संवैधानिक संशोधन' स्पष्ट कीजिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में दीजिए :

(1) ग्रामसभा की संक्षिप्त में जानकारी दीजिए।

(2) तहसील पंचायत की सामाजिक न्याय समिति को समझाइए।

(3) ग्रामसेवक के कार्य संक्षिप्त में बताइए।

(4) पंचायती राज की व्याख्या दीजिए।

(5) तहसील पंचायत की समितियों के नाम लिखिए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :

(1) ग्राम पंचायत के विकासात्मक कार्य कौन-कौन से हैं ?

(2) तहसील पंचायत का प्रमुख कौन बनता है ?

(3) जवाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज के विषय में क्या कहा है ?

(4) TDO का पूरा नाम लिखिए।

(5) DDO का पूरा नाम लिखिए।

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) 'पंचायती राज की स्वतंत्रता नींव से शुरू होनी चाहिए', यह विधान किसका है ? ☐

(अ) जवाहरलाल नेहरू (ब) महात्मा गाँधी

(क) लॉर्ड मेयो (ड) बलवंतराय मेहता

(2) पंचायती राज अर्थात्........ ☐

(अ) सत्ता का विकेन्द्रीकरण (ब) सत्ता का केन्द्रीकरण

(क) तटस्थ सत्ता (ड) सत्ताविहीनता

(3) पंचायती राज में स्त्रियों का आरक्षण कितने प्रतिशत होता है ?

(अ) 22 % (ब) 33 % (क) 44 % (ड) 40 %

(4) गाँव के विकास और प्रशासन का मुख्य कार्य कौन करता है ?

(अ) सरपंच (ब) ग्रामसभा

(क) पंचायती कर्मचारी (ड) कार्यकारणी समिति

(5) 73वाँ संवैधानिक सुधार कब लागू किया गया ?

(अ) 24 अप्रैल, 1993 (ब) 22 मार्च, 1994

(क) 1 दिसम्बर, 1990 (ड) 1 जनवरी, 2000

(6) पंचायत का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है ?

(अ) पाँच वर्ष (ब) तीन वर्ष

(क) एक वर्ष (ड) दो वर्ष

(7) पंचायती राज का त्रि-स्तरीय ढाँचा किस समिति ने दिया ?

(अ) सेवक समिति (ब) बलवंतराय मेहता समिति

(क) मेटकाफ समिति (ड) ब्रिटिश समिति

(8) लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के सिद्धांत किस वर्ष में निश्चित किए ?

(अ) 1882 (ब) 1801

(क) 1909 (ड) 1947

क्रिया-कलाप

- किसी भी एक गाँव के पंचायतघर की मुलाकात कीजिए।
- पंचायती राज के त्रि-स्तरीय ढाँचे के अनुसार कक्षा में विद्यार्थियों को बैठाइए।
- तहसील और जिला पंचायत की मुलाकात कीजिए।
- पंचायतों की चुनाव प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करने के लिए विद्यालयों में मोकपोल का आयोजन कीजिए।
- गाँव में पंचायतों के कार्य का मूल्यांकन करके एक लेख तैयार कीजिए।

9 सामाजिक मानक भंग, बाल अपराध और युवा बेचैनी

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, पाठ 8 में हमने पंचायती राज के त्रिस्तरीय ढाँचे की जानकारी प्राप्त की। पंचायती राज को प्रभावकारी रूप से लागू करने के लिए तीनों स्तरों पर सदस्यों को निष्ठापूर्वक भूमिका निभाना अनिवार्य है। सदस्य अपने पद के अनुसार सही ढ़ंग से भूमिका निभा सके इसके लिए मानकों की संरचना होनी चाहिए। मानक का ढाँचा व्यक्ति को भूमिका निभाने के लिए मार्गदर्शन देते हैं। जब कोई सदस्य संरचना में दर्शाए मानकों के विरुद्ध व्यवहार करता है तब मानक भंग की परिस्थिति उत्पन्न होती है। विद्यार्थी मित्रो, इस इकाई में मानक भंग का व्यवहार किसे कहते हैं और उसके लक्षण कौन से हैं इस संबंध में जानकारी प्राप्त करके बाल अपराध और युवा बेचैनी की चर्चा करेंगे।

समाज में प्रवर्तमान नियमों के लिए समाजशास्त्र में 'सामाजिक मानक' शब्द का उपयोग किया गया है। सामाजिक मानक सार्वत्रिक रूप से विश्व के सभी समाजों में पायें जाते हैं। किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व का आधार सामाजिक मानक है। ये मानक ही समाज के सदस्यों को व्यवहार करने के लिए मार्गदर्शन देते हैं। सामाजिक मानक समाजव्यवस्था के आधार हैं और समाज की व्यवस्था मानकों के आधार पर रची गई इमारत है। विद्यार्थी मित्रो, कल्पना कीजिए की आप जिस विद्यालय में अध्यन करते हो, उस विद्यालय के कोई नियम ही न हो तो विद्यालय का अस्तित्व क्या संभव है ? सामाजिक मानक द्वारा समाज के सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करके एकता, सुग्रथन और सातत्य बना रहे इसके लिए प्रयत्न करते हैं। ऐसा प्रयत्न समाज में सामाजिक जीवन के वातावरण का सर्जन करता है और सामाजिक संबंध बनाने में तथा आवश्यकताएँ पूर्ण करने में सहायक हो ऐसा व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

सामाजिक मानकों का पालन करने के संदर्भ में समाज में दो प्रकार का व्यवहार दिखाई देता है :

(1) मानक के अनुरूप व्यवहार (मानक अनुरूपता)

(2) मानक के विरुद्ध व्यवहार (मानक भंग अथवा सामाजिक विचलन)

प्रत्येक समाज के अपने विशेष मानक होते हैं। इन मानकों में लोकरीतियाँ, रिवाज़, मूल्य, ट्राफिक के नियम और राज्य निर्मित कानून आदि का समावेश होता है। प्रत्येक समाज के सदस्य अपने समाज में प्रवर्तमान सामाजिक मानकों को स्वीकार कर, मानकों की मर्यादा में रहकर, उसके अनुसार अपना व्यवहार रचे तो उसे मानक के अनुरूप व्यवहार कहते हैं। समाज के सभी सदस्यों द्वारा हमेशा मानकों के अनुरूप व्यवहार होता ही है, ऐसा नहीं है। समाज के कुछ सदस्यों द्वारा कभी जाने-अनजानें में मानकों के विरुद्ध व्यवहार होता ही है। ऐसे सामाजिक मानक के विरुद्ध व्यवहार अर्थात् सामाजिक मानक भंग का व्यवहार या सामाजिक विचलन। यदि समाज में मानक भंग के व्यवहार की मात्रा और अनुपात में वृद्धि हो तो वह समाज के लिए चुनौती स्वरूप और समस्या बनती है। समाज की एकता और सुग्रथन खतरे में पड़ती है। इसलिए समाजशास्त्र में मानक भंग के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक मानक भंग आचरण की व्याख्या

होर्टन और हंट – 'सामाजिक मानक भंग का अनुसरण करने की कोई भी निष्फलता अर्थात् सामाजिक मानकभंग।'

मार्शल क्लिनार्ड – 'समाज द्वारा अमान्य या प्रतिबंधित दिशा में सदस्यों का सामाजिक व्यवहार-आचरण की सीमा के बाहर जाए, उसे सामाजिक मानक भंग कहा जाता है।'

समाजशास्त्री रोबर्ट मर्टन के अनुसार समाज मान्य मानकों के विरुद्ध व्यक्ति का व्यवहार अर्थात् सामाजिक मानकभंग। मर्टन ने सामाजिक मानकभंग का विचार अधिक स्पष्ट करने के लिए एनोमी का सिद्धांत दिया है। जब हर्बट बेकर, मानकभंग को समाज द्वारा स्वीकार किए गए नियमों के भंग के रूप में पहचानते हैं। संक्षिप्त में सामाजिक मानकभंग अर्थात् समाज द्वारा रचित या प्रस्थापित किए गए मानकों के विरुद्ध व्यवहार या मानकभंग करता व्यवहार।

समाज व्यवस्था को बनाए रखने के लिए दो प्रकार के मानक दिखाई देते हैं : (1) सकारात्मक मानक अर्थात् व्यक्ति को कैसा व्यवहार करना यह दर्शाते मानक। उदाहरण - बड़ों का सम्मान करना और (2) नकारात्मक मानक अर्थात् व्यक्ति को कैसा व्यवहार नहीं करना यह दर्शाते हैं वे मानक। उदाहरण - चोरी नहीं करनी।

संक्षिप्त में ऐसा कह सकते हैं कि सामाजिक मानक व्यक्ति का कौन–सा व्यवहार उचित है और कौन–सा व्यवहार अनुचित है, कौन–सा व्यवहार योग्य है और कौन–सा विचार अयोग्य है इसकी स्पष्टता करते हैं। सामाजिक मानकों के निर्माण में व्यक्ति और समाज दोनों परस्पर गहन रूप से जुड़े हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि जिन मानकों को समाज या समूह का समर्थन मिलता है, ऐसे मानकों को सामाजिक मानक कहते हैं। सभी प्रकार के मानको को सामाजिक मानक नहीं कह सकते हैं। समाज द्वारा रचे गए या गठित इन मानकों का पालन करके व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में योगदान देता है।

सामाजिक मानक भंग के व्यवहार की प्राथमिक जानकारी प्राप्त करने के बाद अब हम उसके लक्षणों के बारे में परिचय प्राप्त करेंगे।

सामाजिक मानक भंग के व्यवहार के लक्षण :

(1) सामाजिक मानकभंग का व्यवहार वार्तनिक है :

समाज में प्रस्थापित मानक व्यक्ति के व्यवहार में अभिप्रेत होते हैं। मानको के संदर्भ में जो व्यक्ति समाज में अपना आचरण–व्यवहार करता है। इस अर्थ में मानक अनुरूपता और मानकभंग वार्तनिक घटना है।

(2) सामाजिक मानक भंग का व्यवहार सार्वत्रिक घटना है :

विश्व का कोई समाज चाहे वह साधारण हो या विकसित समाज, उसमे अधिक–कम मात्रा में मानकभंग का व्यवहार पाया ही जाता है। सामान्यत: समाज का प्रत्येक सदस्य मानकों का पालन करके व्यवहार करे यह इच्छनीय होता है; परन्तु हमेशा समाज में सभी सदस्यों को प्रत्येक परिस्थिति में मानकों का पालन करना संभव नहीं होता और उसी से ही मानकभंग की घटना घटित होती है। इस अर्थ में सामाजिक मानकभंग एक सार्वत्रिक घटना है ऐसा कहा जा सकता है।

(3) सामाजिक मानकभंग का व्यवहार सापेक्ष है :

सामाजिक मानकभंग का आचरण सापेक्ष है। एक समाज में जो आचरण–व्यवहार मानक भंग माना जाता हो, वह दूसरे समाज में मानक नहीं भी माना जाता है। जैसे गुजरात में मद्यपान करना मानकभंग है, जबकि महाराष्ट्र में वह मानकभंग नहीं माना जाता है। किसी भी समाज के मानकों का उस समाज की संस्कृति और मूल्यों के साथ सीधा संबंध होता है। मूल्यों और संस्कृति में अंतर होने के कारण उस समाज के मानक अन्य समाज से अलग होते हैं। इस अर्थ में सामाजिक मानक सापेक्ष होते हैं।

(4) सामाजिक मानकभंग के व्यवहार में वैविध्य :

जाति, वर्ण, धर्म, गाँव, शहर जैसी बहुविविधता वाले भारतीय समाज में मानकों में विविधता पाई जाती है। मानकों का ऐसा वैविध्य मानकभंग के आचरण को बढ़ाता है। इसलिए मानकभंग के व्यवहार के साथ संतोषजनक व्यवहार की सीमा का विचार समझना आवश्यक है। इस विचार के अनुसार जहाँ तक समाज के सदस्य मानक की संतोषजनक सीमा या मर्यादा में रहकर आचरण–व्यवहार करें तब तक उस व्यवहार को मानक भंग नहीं माना जाता है; परन्तु जब व्यक्ति या समूह समाज द्वारा नियत की गई यह संतोषजनक–सीमारेखा का उल्लंघन करे तब सामाजिक उद्देश्य प्राप्ति के लिए चुनौती बनती है। इसमें व्यक्ति या समूह का ऐसा व्यवहार मानकभंग का व्यवहार बनता है।

(5) सामाजिक मानकभंग व्यवहार सामाजिक अपेक्षाओं के विरुद्ध व्यवहार है :

प्रत्येक समाज अपना अस्तित्व टिकाए रखने, व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए मानक रचने पड़ते हैं। जिससे स्वभाविकरूप से ही सामाजिक मानकों के साथ सामाजिक अपेक्षाएँ जुड़ी हुई होती हैं। सामाजिक व्यवस्था बनी रहे, सामाजिक संवादिता टिकी रहे और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति सरल बने इसके लिए समाज अपने सदस्यों से मानकों के अनुरूप व्यवहार की अपेक्षा रखता है। समाज की इस अपेक्षा के विरुद्ध का व्यवहार सामाजिक मानकभंग के रूप में पहचाना जाता है।

(6) सामाजिक मानकभंग का व्यवहार अनिच्छनीय सामाजिक व्यवहार है :

व्यक्ति या समूह के व्यवहार से सामाजिक व्यवस्थातंत्र बाधित हो, ऐसी स्थिति समाज के अधिकांश भाग के लोगों के लिए हमेशा अनिच्छनीय होता है। कौमी दंगे, नक्सलवाद नशीले द्रव्यों की हेराफेरी जैसी अनेक परिस्थितियाँ अधिकांश लोगों के लिए अनिच्छनीय होती हैं। मानकभंग के व्यवहार से उत्पन्न होती अराजकता के विरुद्ध वे नाराजगी व्यक्त करते हैं। इस तरह देखें तो सामाजिक मानकभंग का व्यवहार अनिच्छनीय सामाजिक व्यवहार है।

किसी भी समाज के व्यक्ति के मानकभंग के व्यवहार के लिए अनेक कारण जवाबदार हैं। कमजोर सामाजीकरण, मानकों का कमजोर अमल, कमजोर सत्तापद्धति, मानकों का अस्पष्ट विस्तार, भ्रष्टाचार मानकों के बीच विसंवादिता, प्रचार प्रयुक्तियाँ और संचार माध्यम जैसे कारक मानकभंग के व्यवहार की स्थिति निर्माण करने

में सहायक बनते हैं। सामान्य संजोगो में सामाजिक मानकभंग का व्यवहार समाज के लिए भी हानिकारक होता है। ऐसा माना जाए तब एक बात ध्यान में नहीं रखी जाती वह यह है कि मानकभंग की घटना समाज में कभी भी परिवर्तन को जन्म देकर समाज के लिए लाभदायक बनती है। समाज में प्रवर्तमान कुछ मानक उस समाज के विकास में अवरोधक बनकर समाज में जड़ता फैलाते हैं तब उस मानकभंग करनेवाला व्यवहार समाज के लिए रचनात्मक भूमिका भी निभाते हैं। जैसेकि राजा राममोहनराय का सतीप्रथा का विरोध या गाँधीजी द्वारा की गई दाँडी यात्रा। इस प्रकार सामाजिक मानकभंग व्यवहार की घटना खंडनात्मक और रचनात्मक दोनों स्वरूपों में पाई जाती है।

मानकभंग के व्यवहार में अपराधी आचरण और समाज विरोधी व्यवहार इन दोनों का समावेश होता है। समाज में कोई व्यक्ति अथवा समूह राज्य निर्मित कानूनों का उल्लंघन करता है, तब उसे अपराध कहा जाता है। उदाहरण, 1961 में निर्मित दहेजप्रथा प्रतिबंधित कानून के विरुद्ध का व्यवहार यद्यपि अपराध की परिभाषा समयांतर में बदलती रहती है। किसी एक आचरण के लिए जब किसी समय कानून बनाया जाए तो कानून बनने से पहले उसके व्यवहार को अपराध नहीं माना जाता; परंतु कानून बनने के बाद अपराध माना जाता है। उदाहरण, 2005 से पहले घरेलू हिंसा अधिनियम। जब व्यक्ति या समूह समाज में प्रस्थापित लोकरीति-रिवाज, रूढ़ियाँ जैसे मानकों का उल्लंघन करता है तब व्यक्ति या समूह के इस व्यवहार को समाज विरोधी व्यवहार मान सकते हैं। उदाहरण - आंतरजातीय या आंतरधर्मीय विवाह।

विद्यार्थी मित्रो, मान भंग व्यवहार की जानकारी प्राप्त करने के बाद अब हम बाल अपराध के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

बाल अपराध

मानवजीवन के प्रारंभिक चरण में ही बालक समाज के मानकों, मूल्यों जैसी सांस्कृतिक बातों को जीवन में आत्मसात करने के लिए प्रयत्नशील होता है। विशेषकर अन्य के अनुकरण सें सीखकर भावी जीवन में समझदार व्यक्ति के रूप में भूमिका निभाने के लिए तैयार होता है। बाल्यावस्था में बालक में अज्ञानता, नासमझ, चंचलता होती है। इस अवस्था में समाज या कानून के मानक के विरुद्ध व्यवहार दिखाई दे तब ऐसा व्यवहार करने वाले बालकों के आचरण को बाल अपराध के रूप में हम जानते हैं।

बाल अपराध को अंग्रेजी में 'Juvenile Deliquancy' के रूप में पहचान जाता है। बाल अपराध का विचार उम्र के साथ संलग्न है। सामान्य रूप से 7 वर्ष से 18 वर्ष के बीच की उम्र के व्यक्तियों का गैरकानूनी आचरण को बाल अपराध के रूप में और गैरकानूनी व्यवहार करनेवाले बालक को बाल अपराधी कहा जाता है। समाज में पाया जानेवाला और बढ़ते जानेवाले बाल अपराध की व्यापकता में समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया है। वर्तमान समय में भारत में बाल अपराध बढ़ने और उमर को ध्यान में लेकर संसद ने कानून पास किया जिसके अनुसार जुवेनाइल (किशोर) जस्टिस एक्ट की कलम 2(12) ता. 31-12-2015 से अमल में आया 'बालक अर्थात् जिसकी उम्र 18 वर्ष तक हो।' इस उम्र तक के बालक द्वारा जब मानकों के विरुद्ध आचरण हो उसे बाल अपराध और ऐसा व्यवहार करनेवाले बालक को बाल अपराधी कहा जाता है।

बाल अपराध की व्याख्या

पारिभाषिक कोष-समाजशास्त्र : विशाल अर्थ में बाल अपराध किसी उमर से नीचे की उमर के बालकों और किशोरों के ऐसे समाज विरोधी कृत्य सूचित करता है कि जो स्पष्ट रूप से कानूनी तौर पर प्रतिबंधित होता है अथवा कानून में जिस कृत्य का अर्थघटन अपराध के रूप में करके, उसके विरुद्ध कोई दंडात्मक कदम निश्चित करने में आये हों ऐसा कृत्य।

डॉ. हंसा शेठ - 'समाजशास्त्रीय संशोधन में 'बाल अपराधी शब्द' केवल ऐसे बालकों को सूचित करता है कि जिन बालकों के विरुद्ध पुलिस अधिकारी या अदालती प्राधिकारी आधिकारिक रूप से कोई भी कदम उठाए हो।'

शेठना - ''बाल अपराध यह किसी प्रदेश के कानून द्वारा परिभाषित हुए छोटी उमर के बालकों द्वारा किया जानेवाला विचलित व्यवहार है।''

संक्षेप में बालकों द्वारा किया जानेवाला ऐसा आचरण कि जो समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के विरुद्ध हो और समग्र समाज के विघटन के लिए जवाबदार हो अर्थात् बाल अपराध और ऐसा करनेवाले बालक अर्थात् बाल अपराधी।

बाल अपराध के कारण

सामान्य रूप से किसी भी घटना के लिए मात्र एक ही कारण जिम्मेदार नहीं होता है। यह वास्तविकता बाल अपराध के लिए भी इसी तरह लागू पड़ती है। बाल अपराध के लिए पाए जानेवाले कारणों की एक विशेषता

यह है कि उन्हें अलग–अलग दर्शाना मुश्किल है। बाल अपराध के लिए जिम्मेदार कारणों को हम मुख्य दो विभागों में बाँट सकते हैं :

(1) सामाजिक और आर्थिक कारण :

बालक के मानकभंग के व्यवहार के लिए सामाजिक–आर्थिक कारणों का प्रबल असर दिखाई देता है। सामाजिक–आर्थिक कारणों में परिवार, विद्यालय, समवयस्क वर्ग, संपर्क माध्यम आदि का समावेश होता है। यहाँ इन कारणों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

(1) परिवार :

परिवार सामाजिकीकरण करने की मूल इकाई है। माता–पिता और बालकों के बीच त्रुटियुक्त संबंध, परिवार का आकार, माता–पिता द्वारा बालक के व्यवहार के लिए उपयोग आनेवाली नियंत्रण शैली, परिवार का शिक्षण, परिवार की सामाजिक–आर्थिक स्थिति जैसे अनेक विध कारण बालक के सामाजिकीकरण पर प्रभाव डालते हैं। परिवार द्वारा बालकों को मिलता प्रेम, लगाव, गर्मजोशी के द्वारा बालक की शारीरिक–मानसिक आवश्यकताएँ संतुष्ट होती हैं। इन आवश्यकताओं का संतोष बालक में सामाजिक–मानसिक सुरक्षा का भाव उत्पन्न करता है। यदि परिवार में बाल्यावस्था के चरण में पति–पत्नी के बीच या माता–पिता और संतानों के बीच संबंध त्रुटियुक्त हो तो बालक का भावात्मक विकास अवरुद्ध होता है। पारिवारिक संबधों में इस प्रकार की विसंवादिता बालक में तिरस्कार और असुरक्षा की भावना उत्पन्न करती है। परिवार के सदस्यों के साथ तादात्मय के अभाव के कारण बालक अपना अधिकांश समय घर के बाहर गुजारने को प्रेरित होता है। ऐसे समय में यदि उसे घर के बाहर भी उचित वातावरण न मिले तो वह अपराधी प्रवृत्ति की तरफ धकेला जाता है।

यदि गरीब परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक हो तो उसका सीधा असर बालक पर पड़ता है। ऐसे परिवार में बहुत ही छोटी उम्र में बालक को आर्थिक प्रवृत्ति में जुड़ना पड़ता है। परिवार के बुजुर्ग भी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यस्त होने के कारण बालकों के लालन–पालन पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते हैं। ऐसे संयोगों में बालक अपराधिक प्रवृत्तियों की तरफ खिंचता है।

परिवार में बालक के साथ नियंत्रणशैली भी बालक के सामाजिकीकरण को विकृत करती है। माता–पिता द्वारा सख्त और कड़क नियंत्रण या शिथिल नियंत्रण अथवा नियंत्रण का अभाव, विरोधाभासी नियंत्रण पद्धति बालक के व्यक्तित्व विकास में अवरोधक बनती है। कभी बालक की उचित आवश्यकताओं की माँग को भी कड़क रूप से दबा दिया जाता है, तब बालक अनुचित प्रवृत्ति करने के लिए प्रेरित होता है। उदाहरण – घर से भाग जाना, छोटी–छोटी चोरियाँ करना आदि। बालक के व्यवहार को नियंत्रित करने की माता–पिता दोनों की पद्धति समान होनी चाहिए। यदि उनकी पद्धति में विरोधाभास होगा तो बालक किसी एक निश्चित व्यवहार का ढंग से विकास नहीं होता। ऐसे संयोगों में बालक परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य किसी को प्रेरणास्रोत बनाकर उसके जैसा व्यवहार करने के लिए प्रेरित होता है, जिससे विचलन की संभावना बनती है। इसके अलावा, तलाक या मृत्यु जैसे कारणों से उत्पन्न हुए विवाह परिवार में बालक वंचितता अनुभव करता है जो उसके सामाजिकीकरण पर प्रभाव डालती है।

(2) विद्यालय :

परिवार की तरह विद्यालय भी बालक के सामाजिकीकरण पर प्रभाव डालनेवाला एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। विद्यालय जीवन के अनुभव बालक के व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विद्यालय स्तर पर जो अनुचित व्यवहार होता है या बालक को जाने–अनजाने में बारंबार दण्ड या सजा भोग बनना पड़ता है, या मानसिक तनाव दिया जाता हो ऐसे मानक विद्यालय में प्रवर्तमान हो तो बालक विद्यालय और शिक्षण से विमुख होता है। ऐसी परिस्थिति से दूर रहने के प्रयत्न में बालक विद्यालय से पलायन करने या भाग जाने को उचित मानता है। विद्यालय और घर से लंबे समय तक दूर रहने के कारण यदि बाहर उसे सही वातावरण न मिले तो जानते हुए भी उससे विचलित व्यवहार होने की संभावना बढ़ जाती है।

(3) समवयस्क समूह :

समव्यस्क समूह अर्थात् समान उम्र के व्यक्तियों का बना समूह। यह समूह बालक के विकास और व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अपनी ही उम्र के मित्रों के साथ संपर्क और सहवास, उस समूह के प्रति बालक का तादात्मय और आत्मीयता बढ़ती है। अलग–अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आनेवाले इस समूह के मित्रों के आचार–विचार का सीधा प्रभाव बालक के मानस पटल पर पड़ता है। ऐसे समय में खराब मित्रों की संगत उसे मानकों के विरुद्ध व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है।

(4) जनसंचार के माध्यम :

चलचित्र, समाचारपत्र, टेलिविजन, मोबाइल और इन्टरनेट जैसे माध्यमों के प्रभाव से जाने–अनजाने में गुनाहित

प्रवृत्ति की तरफ बढ़ता है। इन संचार माध्यम से दिन-ब-दिन प्रसारित होते अपराधी आचरण के समाचार और अश्लीलता बालक के मानस पर विकृत प्रभाव डालते हैं। जिज्ञासा, क्कुतूहल, अज्ञानता और अच्छे-खराब विवेक का अभाव जैसे कारक बालक को मानकभंग की तरफ खींचते हैं।

(5) शहरी वातावरण :

शहरी वातावरण बालक को कुछ अंशों तक अपराधी व्यवहार के लिए उत्तेजित करता है। शहरी समुदाय एक दूरवर्ती समुदाय है। शहरों के अपराधिक वातावरण की छाप पड़ सकती है ऐसे होने से बालक को अपनी पहचान का भय कम रहता है। गंदी बस्ती जनसंख्या घनत्त्व जैसे कारकों से सामाजिक नियंत्रण का प्रभाव घटता है। शहरों का ऐसा वातावरण बालक की अपराधी प्रवृत्ति में वृद्धि करने का एक या दूसरी तरह भूमिका निभाता है और बालक को मानकभंग के आचरण की ओर धकेलता है।

(2) व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक कारण :

बाल अपराध के लिए व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक कारण भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जो बालक योग्य-अयोग्य का विचार करने में असमर्थ हो, वह बालक विचलन की तरफ मुड़ता है। इसके अलावा विद्रोह करने का भाव, मनमौजी, असुरक्षा का भाव, डरपोक, आत्मनियंत्रण का अभाव, लघुताग्रंथि, सहानुभूति का अभाव, हताशा, निराशा और हिंसात्मक प्रवृत्ति जैसे अनेक कारणों की उपस्थिति बालक को समाज विरोधी या मानक विरुद्ध व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है।

संक्षिप्त में एक बात निश्चित है कि कोई भी बालक जन्म से अपराधी नहीं होता; किन्तु उस बालक के आसपास का वातावरण और व्यक्तिजन्य कारक उसे अपराधी बनाने और मानकभंग का व्यवहार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इससे यह कह सकते हैं कि व्यक्तित्व, संस्कृति की सीपी में पकता मोती है।

इस प्रकार उपर्युक्त कारक बालक के सामाजिक और मानसिक विकास पर प्रभाव डालता है। इन कारणों में से किसी एक कारक में न्यूनता उत्पन्न हो तो उसका सीधा प्रभाव बालक के व्यवहार पर होता है, जो उसको विचलन करने के लिए प्रेरित करता है।

बाल अपराध सुधार

बाल अपराध की समस्या किसी भी समाज के लिए चुनौती स्वरुप है। देश के कल के अंधकार के समान इन बालकों में रही अपराधी वृति को सजा के माध्यम से नहीं; परन्तु सुधार के माध्यम से रचनात्मक बनाना यह मूलभूत आवश्यकता है। इन बालकों को ध्यान में रखकर भारत के संविधान में बालकों के लिए कई संस्थाओं की स्थापना की गई है, जिसका संचालन सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा होता है। राज्य को इन संस्थाओं की आर्थिक और व्यवस्थापन की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इनमें से महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ इस प्रकार हैं :

(1) बाल अदालत :

देश की सामान्य अदालत से बाल अदालत अलग होती है। भारत में कोलकाता में 1941 में प्रथम बाल अदालत की स्थापना की गई। बाल अदालत में सामान्य रूप सें 16 वर्ष से कम उम्र के बालक जो अपराधी प्रवृत्ति कर चुका है, उसके विरुद्ध कार्यवाही की जाती है। बाल अदालत के न्यायाधीश कानून के दक्ष और मनोविज्ञान के प्रशिक्षण प्राप्त होते हैं। बाल अदालत का वातावरण सहानुभूतिपूर्ण होता है। बाल अदालत बालक द्वारा किए गए अपराधी आचरण के कारणों से संपूर्ण जानकारी प्राप्त करके, बालक को सजा नहीं; परन्तु सुधारने के लिए सुधारगृह में भेजती है।

(2) प्रोबेशन :

प्रोबेशन अर्थात् अजमायशी मुक्ति, जब कोई बालक प्रथम बार अपराधी प्रवृत्ति या व्यवहार करे और वह बालअदालत में साबित हो जाए तब अदालत उसे प्रोबेशन पर भेजती है। प्रोबेशन के समय में बाल अपराधी के परिवारिक-सामाजिक जीवन के संबंध यथावत चालू रहते हैं; परन्तु बाल अदालत जो समय-अवधि निश्चित करती है, उस समय तक बाल अपराधी को प्रोबेशन अधिकारी की देखरेख के अधीन रहना होता है। जहाँ प्रोबेशन अधिकारी बाल अपराधी को प्रत्येक क्षेत्रों जैसे कि परिवार, मित्र, पड़ोस और समूह के साथ उसके व्यवहार का निरीक्षण करता है। संक्षिप्त में प्रोबेशन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य बाल अपराधी के सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवन को बनाए रखकर बाल अपराधी का सुधार करना है।

(3) सुधार विद्यालय :

जिन राज्यों में बाल कानून अमल में नहीं आए, उनमें 1987 में रिफोंमेटरी स्कूल एक्ट के प्रावधान के अनुसार

सुधार स्कूल स्थापित किए गए हैं। बालक का अपराध सिद्ध होने पर अदालत उसे सुधार विद्यालय भेजती है। 15 वर्ष से कम उम्र के किसी बालक द्वारा गंभीर अपराध किया गया हो ऐसे बालक को 3 से 7 वर्ष की समयावधि तक इस विद्यालय में रखा जाता है। इस सुधार विद्यालय में बालक को योग्य वातावरण और जीवन की आवश्यक सुविधाएँ देकर सुधार के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। साथ ही साथ भावी जीवन में स्वावलंबन प्राप्त कर सकें और आजीविका प्राप्त कर सकें इसके लिए बालकों को विशेषकर शिक्षण और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था की जाती है।

(4) बोस्टल विद्यालय :

बोस्टल विद्यालय की सर्वप्रथम स्थापना सन् 1902 में इंग्लैण्ड के बोस्टल नामक शहर में की गई थी, इसलिए यह विद्यालय बोस्टल विद्यालय के नाम से पहचाना गया। कानूनी व्यवस्था के अनुसार भारत में भी ऐसे विद्यालयों की स्थापना की गई है। इस विद्यालय में 15 से 21 वर्ष की उम्र तक के किशोरों और युवक अपराधियों को सुधारने के लिए विशिष्ट व्यवस्था का प्रबंध किया गया है। जिस राज्य में बाल अपराध का कानून अमल में है। वहाँ 15 से 21 वर्ष तक के बाल अपराधियों को इस विद्यालय में रखा जाता है। बोस्टल विद्यालय दो प्रकार के हैं : (1) बंद बोस्टल विद्यालय (2) मुक्त बोस्टल विद्यालय।

दोनों विद्यालयों में बाल अपराधी की उम्र अनुसार लड़के और लड़कियों को औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण में लड़कों को कृषि कार्य, उद्योग और निर्माण कार्य आदि का प्रशिक्षण और लड़कियों को रसोईगृह विषयक कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है।

सामान्य रूप से इस विद्यालय में अपराधी को दो से तीन वर्ष की समयावधि के लिए रखा जाता है। फिर भी बालकों के संपूर्ण व्यवहार को ध्यान में रखकर इस विद्यालय से पहले भी मुक्त करने का निर्णय इस संस्था के अधिकारी कर सकते हैं। बोस्टन विद्यालय से मुक्त किए गए बालक का निरीक्षण और उस बालक को योग्य व्यवसाय से जोड़ने की जिम्मेदारी प्रोबेशन अधिकारी को सौंपी जाती है।

(5) प्रामाणिक विद्यालय :

जिन राज्यों में बाल कानून का अमल होता है, उन राज्यों में बाल अपराधियों को सुधारने के लिए ऐसे विद्यालयों की स्थापना की गई है। ऐसे विद्यालयों को निजी संस्थाओं द्वारा और सार्वजनिक फण्ड की मदद से चलाया जाता है। इन विद्यालयों में बालक की देखभाल उपचार और सुधार किया जाता है। सामान्य रूप से प्रामाणिक विद्यालय दो प्रकार के हैं : (1) जूनियर प्रामाणिक विद्यालय (2) सीनियर प्रामाणिक विद्यालय। 12 वर्ष से कम उम्र के बाल अपराधियों को जूनियर प्रामाणिक विद्यालय और 12 से 16 वर्ष तक के किशोर अपराधियों को सीनियर प्रामाणिक विद्यालय में रखा जाता है। यहाँ उन्हें सामान्य शिक्षा के साथ टेक्निकल शिक्षण दिया जाता है। प्रामाणिक विद्यालय से मुक्त हुए बालक की देख-भाल की जवाबदारी स्थानीय कार्यकर्ता या प्रोबेशन अधिकारी को सौंपी जाती है जो, उस बालक का निरीक्षण करने का कार्य करता है।

(6) पालक गृह :

प्रामाणिक विद्यालय में न भेजा जा सके ऐसे 10 वर्ष से कम उम्र के बाल अपराधियों के लिए पालक गृहों को चलाया गया है। इन पालक गृहों में बालक को पारिवारिक वातावरण मिलता है ऐसे प्रयत्नों के साथ उसे सुधारने के प्रयत्न किए जाते हैं। ऐसे पालक गृह सरकार की आर्थिक सहायता और निजी संस्थाओं द्वारा चलाए जाते हैं।

(7) बाल संरक्षण गृह (रिमान्ड होम) :

बाल अपराधी को सुरक्षित रखने का एक स्थान अर्थात् रिमाण्ड होम। बाल धारा के अनुसार किसी बालक को हिरासत में रखा जाए और उसका केस बाल अदालत में पूर्ण न हुआ हो तब तब ऐसे बालक को बाल संरक्षण गृह में रखा जाता है। यहाँ बालकों के साथ तालमेल स्थापित करके आवश्यक ऐसी जानकारी एकत्रित करके बाल आचरण का निरीक्षण और वर्गीकरण का कार्य किया जाता है। बाल संरक्षण गृह सामान्यत: निजी संस्थाओं द्वारा चलाए जाते हैं और सरकार उन्हें आर्थिक सहायता करती है।

इस प्रकार ये संस्थाएँ अपराधी बालकों के व्यवहार में सुधार करके उनमें समाज के मानक और मूल्यों का आंतरिकीकरण करती हैं। इस तरह देखें तो एक आदर्श युवा नागरिक तैयार करने में इन संस्थाओं का योगदान बहुत महत्तवपूर्ण है।

युवा बेचैनी

वर्तमान जगत युवा केन्द्रित होता जा रहा है। युवकों को स्वतंत्रशक्ति के रूप में स्वीकारा जाने लगा है। भारत युवाओं का देश बन रहा है, क्योंकि 65 % जनसंख्या युवक हैं। ऐसे युवकों को कल के समाज और राष्ट्र का भविष्य माना जाता है। यदि उनकी सर्जनात्मकता का लाभ लिया जाए तो गौरवशाली समाज और समृद्ध राष्ट्र का निर्माण संभव है।

राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी और समाज के महत्त्वपूर्ण घटक युवा क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, उनके समक्ष कैसी चुनौतियाँ हैं, यह जानकार उन्हें सही मर्गदर्शन दिया जाए तो राष्ट्र और समाज दोनों को लाभ होगा। इसीलिए हम यहाँ युवा अर्थात् क्या ? युवा बेचैनी अर्थात् क्या ? और उसके कारण क्या है? इसकी विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

युवा अर्थात् क्या ?

युवा बेचैनी

युवा अवस्था जैविक परिबल है। जैविकीय पक्ष को लक्ष्य में लें तो कह सकते हैं कि 15 से 35 की उम्रवाले व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त शब्द अर्थात् 'युवा'।

प्रसिद्ध युवा अध्यनकर्ता डॉ. भूपेन्द्र ब्रह्मभट्ट कॉलेज के युवाओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन में युवाओं के लक्षणों को दर्शाते हुए कहते हैं कि युवा अर्थात् चहकते-थिरकते, आदर्शवादी, जल्दी गुस्सा करनेवाले जल्दी भूलनेवाले, अधिक कार्यरत, वाचाल, उत्साही, उद्धत, हिंसक तथा शक्तिशाली होते हैं। इसके अलावा तेजी से संबंध तोड़ देते हैं। वे अत्यंत आशावाद से गहन निराशावाद का दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे हमेशा नई टेक्नोलॉजी और अनजाने में रुचि लेने की वृत्तिवाले होते हैं।

युवा बेचैनी अर्थात् क्या ?

किसी भी देश के विकास का आधार उस देश के युवा (युवक-युवती) पर होता है। युवाओं की शक्तियाँ समाज को एक नई दिशा में ले जाने में सक्षम होती हैं। नई दृष्टि शारीरिक और मानसिक शक्ति से सुसज्ज युवाओं को उनकी कल्पनाशक्ति, तर्कशक्ति, निश्चित किए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने की लालसा उन्हें अनेक प्रवृत्तियाँ करने की ताकत और प्रेरणा देती हैं। आज के युवाओं में युग परिवर्तन के साथ अनेक उद्देश्य अपेक्षाओं, इच्छाओं और महत्त्वाकांक्षाओं ने जन्म लिया है। महत्त्वाकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए युवा मेहनत और उत्साह के साथ कटिबद्ध भी हुए हैं। वर्तमान स्पर्धात्मक युग में अपने आप में सुमेल साधकर इच्छा, अपेक्षा की संतुष्टि के लिए स्पर्धा करने लगे हैं। नई शिक्षा प्रणाली और टेक्नोलॉजी के उपयोग के साथ सुमेल साधकर इच्छित उद्देश्य प्राप्ति की दिशा मे कार्य करने लगे हैं। ऐसे संयोगों में वे जीवन में इच्छाओं, अपेक्षाओं या उद्देश्य प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा या अवरोध का अनुभव करते हैं। तब उसका प्रभाव उनके मानसपटल पर होता है। आचार और विचार ये एक सिक्के के दो पहलू हैं। युवा वर्ग के मानस में उद्देश्य प्राप्ति की वंचितता का जो प्रभाव उद्‌भव होता है वह असंतोष है। युवाओं का यह असंतोष अर्थात् युवा बेचैनी।

युवाओं में यह असंतोष समग्र समाज या उसके किसी एक भाग या भागों का होता है। इस असंतोष की अभिव्यक्ति अलग-अलग रूप में व्यक्त होती है। कई बार युवाओं की अभिव्यक्ति समाज में खंडनात्मक अथवा हिंसात्मक स्वरूप में भी पाई जाती है। जो समाज के लिए चुनौती स्वरूप होती । युवाओं का ऐसा व्यवहार समाज में सुरक्षा, सलामती और व्यवस्था के लिए चिंता का विषय बन जाता है।

युवाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति न हो और समस्याओं का समाधान न हो पाये तब युवा जो व्यवहार करते हैं तब उस व्यवहार में उनकी भावनाओं माँगों और असंतोष की अभिव्यक्ति होती है उसे युवा बेचैनी कहा जाता है। ऐसी अभिव्यक्ति संगठित रूप से आंदोलन, घेराव, जुलूस या हड़ताल के रूप में दृष्टिगोचर होता है। विशेषकर शिक्षा संस्था के साथ संलग्न विद्यार्थियों की बैचेनी की स्थिति को युवा बेचैनी कह सकते हैं।

युवा शक्ति अणु विस्फोट जैसी है। यदि उसका सदुपयोग किया जाए तो विश्व कल्याण हो जाए और यदि दुरुपयोग किया जाए तो विश्व विनाश। युवावर्ग में अशांति अथवा असंतोष देश और समाज के उज्ज्वल भविष्य में बाधक है। युवा बेचैनी का फैलाव पिछले कुछ समय से बढ़ता जा रहा है, जो समग्र समाज व्यवस्था के लिए समस्या है।

युवा बेचैनी के कारण

समाज की किसी भी समस्या के लिए अनेक कारक जवाबदार होते हैं। वैसे ही युवा बेचैनी के लिए भी अनेक कारण जवाबदार है। इन कारणों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :

(1) सामाजिक कारण :

(1) परिवार :

युवा बेचैनी के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक कारण परिवार है। आधुनिक युग में अनेक कारणों से परिवार संस्था में परिवर्तन लाए हैं। संयुक्त परिवार के स्थान पर छोटे-छोटे विभक्त परिवारों की संख्या बढ़ी है। जिसने पारिवारिक जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं। प्रतिदिन पति-पत्नी के बीच संघर्ष, तलाक, विवाह परिवार जैसे कारकों का युवा मानस पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा मंहगाई के इस युग में पारिवारिक जीवन के निर्वाह हेतु पति-पत्नी दोनों को नौकरी या व्यवसाय में जुड़ना पड़ता है। ऐसे संयोगो में वे अपनी संतानों के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पाते। परिवार की ऐसी स्थिति में युवाओं को माता-पिता से जो प्रेम और उष्माबल की अपेक्षा होती है वह संतुष्ट नहीं होती और वे अकेलापन और असंतोष का अनुभव करते हैं। यह परिस्थिति युवा बेचैनी के लिए महत्त्वपूर्ण और पूरे जोर पर होती है।

(2) मूल्य संघर्ष :

समाज में प्रस्थापित मूल्य व्यक्ति को व्यवहार करने के लिए मार्गदर्शन देते हैं। माना कि ये मूल्य कमजोर पड़े अथवा उनमें मूलभूत परिवर्तन आए तब युवाओं के मानस में मूल्य संघर्ष उत्पन्न होता है। आगे जाकर मूल्यों का ऐसा संघर्ष युवाओं में असंतोष, अशांति और बेचैनी उत्पन्न करता है। यह बेचैनी की स्थिति युवाओं को विद्रोह या आंदोलन करने की तरफ धकेलती है।

(3) परिवर्तित उद्देश्य :

वर्तमान समय में युवाओं के उद्देश्यों में बदलाव आया है। विशेषकर जीवन के सभी क्षेत्रों में तीव्रता से सफलता प्राप्त करना यह आज के युवाओं का जैसे जीवनमंत्र बन गया है। उच्च शिक्षण, सख्त और सतत मेहनत के बदले येन-केन प्रकारेण मात्र सफलता प्राप्त करने की दिशा में उनकी मृगतृष्णा तथा ऊँचे जीवन की अपेक्षा और कभी विचारी हुई सफलता न मिलने का भय, उनमें बेचैनी उत्पन्न करता है।

(4) पीढ़ी के बीच का अंतर :

दो पीढ़ियों के बीच लगभग 20 वर्ष का अंतर होता है। दो पीढ़ियों के बीच दो दशकों के इस समयांतर में अनेक कारणों से परिस्थिति में हुआ बदलाव नई और पुरानी पीढ़ी के बीच मतभेद उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसा इन दो पीढ़ियों के बीच मतभेद पीढ़ी अंतर (जनरेशन गेप) के रूप में भी पहचाना जाता है। समाज के सभी क्षेत्रों में पीढ़ी अन्तर पाया जाता है। बुजुर्ग सोच-समझकर शांति से कार्य करने में विश्वास करते हैं, जबकि युवा प्रत्येक बात को उतावले होने के उपरांत क्रांतिकारी विचारोंवाले होने से उनके बीच संघर्ष पैदा होता है। यह पीढ़ी अंतर युवा बेचैनी के लिए जवाबदार है।

(2) शैक्षणिक कारण :

युवा अर्थात् परिवर्तन के वाहक। ये परिवर्तन के वाहक शिक्षा में भी जड़मूल से परिवर्तन चाहते हैं। शिक्षण पद्धति, पाठ्यक्रमों और परीक्षा पद्धति में बड़ा बदलाव न आने से युवा हताश होते हैं। उदाहरण : आज की युवा पीढ़ी 3G - 4G के सेलफोन द्वारा दुनिया को मुट्ठी में कर लेती है तब चॉक-डस्टर, पेन और पेन्सिल द्वारा दिया जानेवाला शिक्षण उनमें असंतोष उत्पन्न करता है।

समाज में विकास का आधार शिक्षण पर निर्भर करता है। शिक्षण में विकास के साथ शिक्षित युवा अपनी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर रोजगार प्राप्त हो, इसे सही अर्थों में विकास मानतें है; परन्तु वर्तमान स्थिति कुछ अलग है। प्रवर्तमान समय में शैक्षणिक क्षेत्र में सूचना का विस्फोट हुआ है। शिक्षित यवाओं की संख्या में दिन-प्रतिदिन उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। शिक्षा में वृद्धि के साथ रोजगार स्तर में भी वृद्धि होनी चाहिए; परन्तु रोजगारी के स्तर में अभाव शैक्षणिक (शिक्षित) बेकारी की संख्या में वृद्धि करता है। रोजगार न प्राप्त कर सकने की स्थिति युवाओं में हताशा-निराशा को जन्म देती है, जो युवाओं में बेचैनी उद्भव करने का कारण है।

युवाओं को जीवन में जिनमें सही शैक्षणिक मार्गदर्शन प्राप्त होना भी जरूरी है। परिवर्तित होती समाज व्यवस्था और शिक्षण के विविध पाठ्यक्रमों से तथा प्रवाह की पसंदगी करने में उचित मार्गदर्शन का अभाव युवाओं में बेचैनी, हताशा और व्यग्रता उत्पन्न करता है। यदि माता-पिता युवाओं की ये आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकते हैं तो कई मामलों में युवा गलत राह की तरफ मुड़ जाते हैं।

शिक्षण व्यवस्था युवाओं के जीवन में दो प्रकार के कार्य करती है : (1) युवाओं को शिक्षण देना जिससे वे जीवन निर्वाह कर सकें और (2) सामाजिकीकरण करना है। युवा उच्च शिक्षण प्राप्त करके अच्छी स्थिति के लिए प्रयत्न करते हैं तब शिक्षण की तुलना में निम्न दर्जे की नौकरी मिले अथवा नौकरी के अवसर न मिले तो वह उसकी महत्त्वाकांशा के लिए झटके के रूप में साबित होती है। परिणामस्वरूप शिक्षण व्यवस्था के प्रति युवाओं में असंतोष, आक्रोश और हताशा का उद्भव होता है। शिक्षण व्यवस्था युवाओं में सामाजिक मूल्यों, लोकतांत्रिक मूल्यों, राष्ट्रीय एकता के मूल्यों का सिंचन हो, ऐसा वातावरण देकर आदर्श युवाओं का निर्माण करने में गहराई तक उतरती है, तब ये दोनों स्थितियाँ युवाओं में बेचैनी उत्पन्न करती है।

(3) जैविक और मनोवैज्ञानिक कारण :

बालक जब किशोर अवस्था से युवावस्था में प्रवेश करता है तब उसके शरीर में अंत:स्राव बदलते हैं, जिसका सीधा प्रभाव उसकी मनोस्थिति पर पड़ता है। इस अवस्था में बहुत अधिक जानने और समझने की जिज्ञासा होती है; परन्तु परिवार और समाज की तरफ से इस स्थिति में योग्य समय पर योग्य मार्गदर्शन न मिलने पर उत्पन्न होनेवाली द्विधात्मक स्थिति में बेचैनी अनुभव करता है।

इस अवस्था में उसमें अति भावुकता, जवाबदारी का अभाव, पूर्णं समजशक्ति का अभाव होता है। इस अवस्था में उसे योग्य मार्गदर्शन मिले तो वह समझपूर्वक सही व्यवहार करने लगता है और यदि योग्य मार्गदर्शन न मिले तो समाज के लिए खंडनात्मक व्यवहार करने लगता है। इस उम्र में उसमें स्वतंत्रता की भावना प्रबल होती है जिससे वे सत्ता का विरोध करने का ज्ञान रखते हैं। इस समय में युवा बाह्य जीवन में अनेक व्यक्तियों अथवा संस्थाओं या माध्यमों के संपर्क में आता है, इन बाह्य कारकों के प्रभाव से उसमे नवीन विचारों का उद्भव होता है। ऐसे विचारों की शृंखला उसकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति को प्रभावित भी करती है। इस प्रकार परिपक्वता की उम्र में नवीन विचार उसमें असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न करते हैं, जो असंतोष को जन्म देता है।

युवा ऐसी मान्यता रखते हैं कि जबतक वे अपनी माँग के लिए प्रबल प्रस्तुति नहीं करेंगे तब तक उसे स्वीकार नहीं किया जाएगा। उसके उपरांत लोकतंत्र में स्वतंत्रता संबंधी (यहाँ स्वतंत्रता का अर्थ मनमौजी व्यवहार) गलत अर्थघटन के कारण वे अयोग्य व्यवहार द्वारा अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हैं। सतत मस्ती में रहते और हमेशा किसी की भी रोकटोक बिना स्वतंत्रता की इच्छा रखनेवाले युवाओं का मानस चंचल है। ऐसे युवक कहते हैं कि हमारी चिंता करके हमें डरपोक मत बनाइए। हम भूल करेंगे परन्तु उससे सीखकर जवाबदार भी बनेंगे। इसलिए युवाओं के साथ बातचीत करके, चाहा-अनचाहा महसूस करके उन्हें सहारा देना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में ऐसा कह सकते हैं कि उनकी समस्याओं को समझकर उन्हें मार्गदर्शन देना पड़ेगा।

इस प्रकार मानकभंग के लिए अनेक कारक जिम्मेदार होते हैं। समाज का सुग्रथन और सातत्य टिका रहे इसके लिए समाज के प्रत्येक सदस्य प्रस्थापित मानकों और मूल्यों को आत्मसात करके उसकी व्यवहार की आदत को समाजमान्य आचरण रीति में परिवर्तित करे, यह जरूरी है। मानकों और मूल्यों को आत्मसात करने में निष्फलता मानकभंग की स्थिति उत्पन्न करता है। मानकभंग की ऐसी स्थिति समाज में अनेक समस्याएँ उद्भव करने के लिए जिम्मेदार है। अब आगे की इकाई में हम सामाजिक समस्या की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से दीजिए :

(1) बाल अपराध की व्याख्या देकर बाल अपराध का अर्थ विस्तार से समझाइए।

(2) बाल अपराध के कारण विस्तार से समझाइए।

(3) बाल अपराधी को सुधारने वाली संस्थाओं में से कोई पाँच विस्तार से समझाइए।

(4) युवा बेचैनी का अर्थ स्पष्ट करके उसके कारण समझाइए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर मुद्दासर दीजिए :

(1) बाल अदालत

(2) प्रोबेशन

(3) बोस्टल विद्यालय

(4) युवा बेचैनी

(5) सामाजिक मानकभंग के व्यवहार के लक्षण

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर दीजिए :

(1) सामाजिक मानक भंग की व्याख्या दीजिए।

(2) बाल अपराध की व्याख्या दीजिए।

(3) समाज विरोधी व्यवहार किसे कहते हैं ?

(4) प्रोबेशन अर्थात् क्या ?

(5) युवा बेचैनी का अर्थ दीजिए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए :

(1) रोबर्ट मर्टन सामाजिक मानकभंग किसे कहते हैं ?

(2) अपराध किसे कहते हैं ?

(3) बाल अपराधी किसे कहते हैं ?

(4) बोस्टल विद्यालय की सर्वप्रथम स्थापना कहाँ हुई ?

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) मानकभंग की व्याख्या देनेवाले विद्वान कौन थे ? ☐

(अ) होर्टन और हन्ट (ब) डॉ. हंसा शेठ (क) फिडलेन्डर (ड) कार्ल मार्क्स

(2) दहेजप्रथा अधिनियम कब बनाया गया ? ☐

(अ) 1951 (ब) 1961 (क) 1965 (ड) 1972

(3) बाल अपराधी को सुरक्षित रखने का स्थान अर्थात्... ☐

(अ) बाल अदालत (ब) रिमान्ड होम (क) पालकगृह (ड) प्रोबेशन

(4) भारत में बाल अदालत की स्थापना कब की गई ? ☐

(अ) 1931 (ब) 1941 (क) 1947 (ड) 1950

(5) घरेलू हिंसा अधिनियम कब लागू किया गया ? ☐

(अ) 2004 (ब) 2005 (क) 2006 (ड) 2007

क्रिया-कलाप

- समाज में पाए जानेवाले बाल अपराध की घटनाओं का वर्णन करके सूची तैयार कीजिए।
- बाल अपराध में संचार माध्यमों के प्रभाव के संबंध मे शाला में चर्चा सभा का आयोजन कीजिए।
- आपके आस-पास के क्षेत्र में घटती मानकभंग के व्यवहार की घटनाओं के सामाजिक प्रभावों के संबंध में एक लेख तैयार कीजिए।

●

10 सामाजिक समस्याएँ

प्रस्तावना

विद्यार्थी मित्रो, पाठ 9 में आपने मानकभंग के व्यवहार का अर्थ और लक्षणों की जानकारी प्राप्त की। मानकभंग का व्यवहार सामाजिक समस्या के उद्भव का महत्त्वपूर्ण कारण है। इस इकाई में हम सामाजिक समस्याओं का अर्थ और लक्षणों की जानकारी प्राप्त करके संपूर्ण भारत में प्रवर्तमान अलग-अलग तीन समस्याओं की चर्चा करेंगे।

विश्व के प्रत्येक समाज के अपने सामाजिक उद्देश्य होते हैं और उन्हें हासिल करने के लिए समाज प्रयत्नशील होता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति ही किसी भी समाज का थर्मामीटर है। इन उद्देश्यों को सिद्ध करने के लिए प्रत्येक समाज में सामाजिक मानकों और सामाजिक मूल्यों की एक व्यवस्था विकसित होती है और समाज के सदस्य इन मानकों और मूल्यों के अनुसार व्यवहार करें ऐसी उनसे अपेक्षा रखी जाती है; परन्तु ऐसा होने पर भी समाज के सभी सदस्य इस अपेक्षा के अनुसार व्यवहार करें, ऐसा हमेशा नहीं होता। कभी जाने या अनजाने में वे इन अपेक्षाओं के विरुद्ध व्यवहार करते हैं। समाज के सदस्य जब उनसे की जानेवाली सामाजिक अपेक्षाओं के विरूद्ध व्यवहार करता है तब सामाजिक समस्याओं का उद्भव होता है।

मानव समाज के इतिहास पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि आदिम समाज हो या आधुनिक विकसित समाज, वह कभी भी समस्याओं से मुक्त नहीं था। जैसे-जैसे युग बदलते गए वैसे-वैसे सामाजिक समस्याओं का स्वरूप भी बदलता गया। दूसरे शब्दों में ऐसा कह सकते हैं कि जैसे-जैसे सामाजिक समानता या सामाजिक जाग्रति का विकास होने लगा वैसे-वैसे नई सामाजिक समस्याएँ भी दृष्टिगोचर होने लगीं। भौगोलिक और पर्यावरणी परिवर्तन, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, विज्ञान और तकनीकि के क्षेत्र में तीव्र विकास और नए-नए व्यक्तिवादी मूल्य जैसे परिवर्तन लानेवाले कारकों ने भी अनेक नई सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। ऐसे संयोगों में सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने के लिए समस्याओं पर नियंत्रण प्राप्त करके, उनके निवारण के लिए वैज्ञानिक अध्ययन अनिवार्य होता है।

आधुनिक समाजशास्त्र की विषयवस्तु में सामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन अधिक महत्त्व रखता है। सामान्यरूप से समस्याओं के प्रति समाज के अलग-अलग वर्गों के लोग घृणा या अपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं; परन्तु समाजशास्त्री ऐसी समस्याओं का पूर्वग्रह रहित विश्लेषण करके उसके कारणों और परिणामों को खोजने में अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं को समाज केन्द्रित करते हैं। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं को समाज के प्रवर्तमान सामाजिक मानकों और मूल्यों के सामने चुनौती स्वरूप परिस्थितियों को रूप में माना जाता है। समाजशास्त्री अन्य स्वरूप में मानव व्यवहार का जिस तरह अध्ययन करते हैं उसी वैज्ञानिक दृष्टिबिन्दु से वे सामाजिक समस्याओं का भी अध्ययन करते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य सामाजिक समस्याओं के कारणों की जानकारी प्राप्त करना, सामाजिक व्यवहार के अन्यक्षेत्रों के साथ सामाजिक समस्या क्या और कैसा संबंध रखती है, ऐसा विश्लेषण करना है।

सामाजिक समस्या की व्याख्या

विद्यार्थी मित्रो, सामाजिक समस्या के परिचय में देखा कि कोई भी समाज समस्या से मुक्त नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र या समाज की अपनी विशिष्ट समस्याएँ होती हैं; परंतु ये समस्याएँ हमेशा एक समान नहीं होती हैं। सामाजिक मानकों, सांस्कृतिक मूल्यों और प्रादेशिक विशेषताओं के कारण एक समुदाय या राष्ट्र की समस्याएँ अन्य समुदाय या राष्ट्र से अलग होना संभव है। ऐसी सामाजिक जटिलता के कारण सामाजिक समस्या की सर्वमान्य व्याख्या देने का कार्य कठिन है। फिर भी अलग-अलग विद्वानों ने सामाजिक समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा उसका सर्वमान्य अर्थ द्वारा जानकारी देने का प्रयत्न किया है।

अमेरिका की मिशिगन युनिवर्सिटी के विद्वान रिचार्ड सी. फूलर और रिचार्ड मायर्स, 'Some Aspects of Theory of Social Problems' ने सामाजिक समस्या की व्याख्या देते हुए कहा है, कि सामाजिक समस्या अर्थात् व्यवहार के ऐसे पक्ष या परिस्थितियाँ, जिसे समाज या समूह के अधिकांश लोग अनिच्छनीय मानते हों। समाज के ये लोग ऐसी मान्यता रखते हैं कि ऐसी अनिच्छनीय परिस्थिति के निवारण के लिए और समस्या की व्यापकता को कम करने के लिए सुधारवादी नीतियों, कार्यक्रमों और सेवाओं की आवश्यकता उत्पन्न होती है।

अमेरिकन विद्वान पी. बी. होर्टन और जी. आर. लेस्ली 'The Sociology of Social Problems' में लिखते हैं कि, 'सामाजिक समस्या ऐसी परिस्थिति है जो अधिकांश लोगों को अनिच्छनीय रूप से प्रभावित करती है और ऐसी परस्थिति और सामूहिक कदम द्वारा कुछ किया जा सके ऐसी है, इस प्रकार की मान्यता लोग रखते हैं।'

सामाजिक समस्याओं के लक्षण

सामाजिक समस्याओं की उपर्युक्त व्याख्याओं के आधार पर अनेक लक्षण निम्नानुसार दर्शाए जा सकते हैं।

(1) सामाजिक समस्या समाज में प्रवर्तमान एक प्रकार की आपेक्षात्मक स्थिति है।

(2) यह परिस्थिति समाज या समूह के अधिकांश लोगों को प्रभावित करनेवाली होती है। यद्यपि यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अधिकांश संख्या अर्थात् कितनी संख्या जिसका कोई निश्चित आंकड़ा नहीं है।

(3) यह परिस्थिति अधिकांश लोगों को अनिच्छनीय लगती है।

(4) इस अनिच्छनीय परिस्थिति को दूर करने के लिए कोई न कोई सामूहिक कदम उठाने चाहिए ऐसी लोकभावना उत्पन्न होती है।

(5) यह परिस्थिति स्थायी नहीं है; परन्तु उसे दूर कर सकते हैं, ऐसी मान्यता पायी जाती है।

(6) समाज के महत्त्वपूर्ण मानकों और मूल्यों के भंग होने का भय उत्पन्न होता है।

(7) सामाजिक समस्या व्यक्तिलक्षी नहीं अपितु समाजलक्षी होती है।

(8) सामाजिक समस्या के परिणाम सामाजिक होते हैं और उससे उसका प्रभाव समाज की अन्य बातों पर पड़ता है।

(9) सामाजिक समस्या एक प्रकार की सापेक्ष परिस्थिति है इसका अर्थ यह हुआ कि एक समाज में जो परिस्थिति सामाजिक समस्या मानी जाती है वह अन्य समाज में सामाजिक समस्या नहीं भी होती है।

विद्यार्थी मित्रो, सामाजिक समस्याओं के उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर सामाजिक समस्या किसे कहा जा सकता है, उसे आप समझ गए होंगे। अब हम भारतीय समाज में दिखाई देनेवाली अलग-अलग तीन सामाजिक समस्याओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

लैंगिक असमानता की समस्या

स्त्री और पुरुष समाजरूपी रथ के दो चक्र हैं। विश्व की किसी भी सामाजिक व्यवस्था को गतिशील रहना हो तो समाजरथ के इन दोनों चक्रों के बीच संतुलन होना अनिवार्य है। यदि इन चक्रों के बीच संतुलन गड़बड़ा जाए तो रथ में अन्य सुविधाएँ चाहे जितनी हों वह आगे नहीं बढ़ सकता।

विद्यार्थी मित्रो, लैंगिक असमानता की समस्या समाजरूपी रथ के इन दो चक्रों के बीच असंतुलन का निर्देश करता है। एक तरह से देखें तो व्यक्ति की लैंगिकता संपूर्णरूप से जैविकीय विषय है। व्यक्ति का स्त्री के रूप में जन्म लेना या पुरुष के रूप में जन्म लेना उसकी पसंदगी क्षेत्र की परिधि से बाहर है। ऐसे समय मन में यही प्रश्न उत्पन्न होता है कि लैंगिकता असमानता की समस्या सामाजिक समस्या क्यों है ?

असमान लिंगानुपात

इस प्रश्न के प्रत्युतर में ऐसा कह सकते हैं कि व्यक्ति के जन्म और मृत्यु का विषय प्रकृतिदत्त है; परन्तु प्रकृति के इस कार्य में मुनष्य की अथवा समाज की दखलंदाजी होती है तब वह सामाजिक समस्या का रूप धारण करती है। आधुनिक युग में विज्ञान टेक्नोलॉजी, संचार और परिवहन के साधन आदि के विकास के कारण भौतिक परिस्थिति बहुत ही तीव्रता से बदलती है; परन्तु उसके साथ-साथ व्यक्ति के विचार मान्यताएँ, मूल्य परंपराओं में उतनी ही तीव्रता से परिवर्तन नहीं आये हैं। जितने उत्साह से व्यक्ति नई खरीदी गई कार का आनंद व्यक्त कर सकता यह समाज का कड़वा सच है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के दुरुपयोग और जड़ परंपराओं का अनुसरण करने के कारण आज भारत में पुरुषों की संख्या की तुलना में स्त्रियों की संख्या घटी है। गुजरात भी उससे अलग नहीं है। सन् 2011 के सेन्सस के अनुसार गुजरात में 0 से 6 वर्ष की आयु वर्ग में प्रति हजार लड़कों की तुलना में मात्र 886 लड़कियाँ हैं। कुछ तहसीलों में तो यह संख्या 700 से 750 तक पहुँच गइ है, जो वास्तव में चिंता का विषय है।

स्त्री–पुरुष की लैंगिक अनुपात की असमानता अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। तब एक सामाजिक समस्या के रूप में उसके कारणों और विपरीत प्रभावों की जानकारी प्राप्त की, अब उसे हल करने के उपायों की जानकारी प्राप्त करें।

असमान लिंगानुपात अर्थात् क्या ?

लिंगानुपात अर्थात् प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या दर्शाता माप। असमान लिंगानुपात अर्थात् समाज में पुरुषों की संख्या की तुलना में स्त्रियों की कम संख्या होने का निर्देश करता है।

भारत और गुजरात में प्रति हजार पुरुषों की संख्या की तुलना में स्त्रियों की कम संख्या होने का निर्देश करता है।

भारत और गुजरात में प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों का अनुपात

क्रम	वर्ष	भारत	गुजरात
1.	1901	972	954
2.	1911	964	946
3.	1921	955	944
4.	1931	950	945
5.	1941	945	941
6.	1951	946	952
7.	1961	941	940
8.	1971	930	934
9.	1981	934	942
10.	1991	927	934
11.	2001	933	920
12.	2011	940	918

(स्रोत : Gender Composition of Population Provisional Population totals India, P.80)

असमान लिंगानुपात की समस्या के कारण

असमान लिंगानुपात की समस्या समग्र भारत की एक महत्त्वपूर्ण जनसंख्या विषयक सामाजिक समस्या है। सामाजिक विज्ञान के अध्ययनकर्ता के रूप में हमारा उद्देश्य इस समस्या के कारणों और प्रभावों को जानकर उसको हल करने के उपाय खोजना है। यहाँ सर्वप्रथम इस समस्या के कारणों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

(1) पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था :

लगभग सभी समाजों में पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था पाई जाती है, जो सत्ता और अधीनता के संबंधों पर निर्मित होती है। इस प्रकार की परिवार व्यवस्था में स्त्री से पुरुष का स्थान ऊचाँ होता है। ऐसे परिवार में वंश को आगे बढ़ाने, संपत्ति का उत्तराधिकारी निश्चित करने जैसे निर्णयों की सत्ता मात्र पुरुष के पास ही होती है। वह चाहे उसके अनुसार निर्णय लिए जाते हैं, परिणामस्वरूप ऐसे परिवारों में स्त्री से पुरुषों का प्रभाव अधिक होता है, इतना ही नहीं बालक को जन्म देना या नहीं इसका निर्णय भी पत्नी के रूप में स्त्री के निर्णय का कोई महत्त्व नहीं होता। इससे इस प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था असमान लैंगिकता में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

(2) लिंगभेद :

कई अध्ययन के आधार पर बताते हैं कि स्त्री–पुरुष में पाए जानेवाले अंतर के लिए जिम्मेदार जैविक लक्षण हैं। स्त्री–पुरुष की जन्मगत भूमिका में अंतर उसकी सबसे बड़ी समस्या है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्र लिंगभेद के बिना स्त्री–पुरुष सबके लिए समान रूप से खुले होने चाहिए। जिसे जो क्षेत्र अनुकूल लगे उसे विकास करने का अवसर देना चाहिए। डॉ. नीरा देसाई के निरीक्षण के अनुसार लिंगभेद के कारण स्त्रियों तथा पुरुषों के कार्य में भेदभावयुक्त आचरण पाया जाता है। अभी भी लिंगभेद के संबंध में समान नहीं; बल्कि दोहरे मापदंड देखने को मिलते हैं। प्रसिद्ध विद्वान **सिवार्ड** के मतानुसार स्त्री और पुरुष की शक्ति, रुचि और अभिरुचि के अंतर का उनके जैविक अंतर के साथ कोई संबंध नहीं है। लिंगभेद जैविक है। यह जैविक असमानता असंतुलित लिंगानुपात की समस्या उत्पन्न करता है।

(3) स्त्री–भ्रूणहत्या :

असमान लिंगानुपात की समस्या का मुख्य कारण स्त्री–भ्रूणहत्या है। भारतीय पितृसत्तात्मक परिवार में पुत्र जन्म का बहुत ही अधिक महत्त्व है, जबकि पुत्री का जन्म स्वीकार योग्य नहीं माना जाता है। धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से एक या अन्य रूप से पुत्र जन्म का महत्त्व बढ़ता गया इससे पुत्र प्राप्ति के चोंचले भी बढ़ गए हैं। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास के कारण अब सोनोग्राफी के माध्यम से गर्भ में रहे बालक के लिंग का परीक्षण हो सकता है। यद्यपि ऐसा लैंगिक परीक्षण कानून की दृष्टि से अपराध होने पर भी कुछ संजोगो में गर्भ में रहा बालक यदि स्त्री होने का पता चले तो गर्भपात द्वारा स्त्री–भ्रूणहत्या की जाती है। बालिका को दूध पीती करने का सदियों पुराने रिवाज के समान है। इस नवीन पद्धति के कारण स्त्रियों की संख्या में काफी कमी आई है।

(4) सामाजिक परंपरा और कुप्रथा :

असमान लिंगानुपात के लिए कुछ अंशों में सामाजिक परंपराएँ, कुप्रथाएँ और कुरिवाज भी माने जा सकते हैं। बालविवाह, दहेजप्रथा, सतीप्रथा, देवदासीप्रथा, विधवा पुनर्विवाह निषेध जैसी अनेक परंपराओं और कुप्रथाओं ने स्त्रियों के अस्तित्व के सामने अनेक प्रश्न खड़े किए हैं। पुत्री पराई अमानत मानी जाती है। ''पुत्री को गाय की तरह जिसके साथ भेजें उसके साथ चली जाती है।'' जैसी कहावतें स्त्रियों के संबंध में सामाजिक परंपराओं और कुप्रथाओं की साक्षी हैं। समाज के इस कुप्रथा की जाल में पुत्रियों को सबसे अधिक सहन करना पड़ता है। परिणामस्वरूप कन्या जन्म नहीं स्वीकारा जाता। इस प्रकार समाज की कुप्रथाएँ और कुप्रथाएँ लैंगिक असमानता को जन्म देता है।

(5) परिवार की आर्थिक स्थिति :

वर्तमान समय में गरीबी, बेकारी और मंहगाई जैसे आर्थिक कारक मात्र माध्यम और गरीब वर्ग को ही नहीं अपितु उच्च वर्ग के लोगों को भी बालकों के विकास में बाधक हो रहा है। बालक के जन्म से लेकर वह जहाँ तक आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा न हो तब तक सभी जिम्मेदारियाँ माता–पिता को निभानी होती हैं। ऐसे संयोगों में पुत्र जन्म की आशा में परिवार में बालकों की अधिक संख्या परिवार की हालत बिगाड़ के रख देता है। इन सभी कारणों से स्त्री–भ्रूण हत्या के मामलों की संख्या बढ़ गई है। दूसरी तरफ ऐसी कमजोर आर्थिक स्थिति में दंपती को परिवार में एक या दो बालक हो यह उचित लगता है। इस तरह देखें तो आर्थिक कारण अप्रत्यक्षरूप से लैंगिक असमानता का जिम्मेदार है।

(6) स्त्रियों की अकाल मृत्यु :

जीवविज्ञान की दृष्टि से स्त्रियाँ पुरुषों से मजबूत होने से पुरुषों से अधिक जीती हैं। परन्तु दोषयुक्त सामाजिक वातावरण में स्त्रियाँ अकाल मृत्यु की तरफ खिंचती हैं। भारत में स्त्रियों की अकाल मृत्यु के पीछे सबसे महत्त्वपूर्ण कारण दहेजप्रथा है। ससुराल द्वारा दहेज माँगने के आतंक के कारण स्त्रियाँ आत्महत्या का अंतिम कदम उठाती हैं। तो कई बार ससुरालवाले दहेज के लिए स्त्रियों की हत्या भी करते हैं। भारत में ई.स. 2012 में 18,233 स्त्रियों ने इस दहेजप्रथा के कारण मृत्यु प्राप्त की थी। इसका अर्थ यह होता है कि भारत में प्रति 90 मिनट में एक स्त्री दहेज के कारण मृत्यु प्राप्त करती है।

पिछले कुछ वर्षों से ओनर किलिंग के कारण स्त्रियों की मृत्यु के कारण ने सबका विशेष ध्यान आकर्षित किया है। स्त्री द्वारा हुए किसी कार्य अथवा प्रवृत्ति के कारण समग्र परिवार अपना गौरव गंवाया हो या शरमजनक स्थिति में डाला हो ऐसा अनुभव और परिवार के सदस्यों द्वारा ही स्त्री की हत्या की जाने जैसी घटनाओं को

ओनर किलिंग कहा जाता है। परिवार की इच्छा के विरुद्ध स्त्री द्वारा किया गया विवाह, प्रेम संबंध अथवा बलात्कार जैसी घटनाओं के कारण ओनर किलिंग में वृद्धि हुई है। भारत में पंजाब, हरियाणा, बिहार, राजस्थान, झारखंड, हिमाचल प्रदेश और मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में ओनर किलिंग की घटनाएँ विशेष पाई जाती हैं।

इसके अलावा तलाक, कुंवारी माँ, बालात्कार, सतत अपमान अथवा अवगणना, परिवार या ससुराल के सदस्यों द्वारा होनेवाला शोषण, जैसे कारणों से भी स्त्रियों को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करते हैं। स्त्रियों की अकाल मृत्यु के ये सभी किस्से लिंगानुपात में असंतुलन सर्जित करने में निर्णायक बनते हैं।

(7) **स्थलांतर :**

नौकरी धंधे, व्यवसाय, शिक्षा या ऐसे किसी न किसी कारण से एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में होनेवाला स्थलांतर लिंगानुपात में असमानता पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यक्ति अपने प्रदेश को छोड़कर अन्य प्रदेश में जाता है तब अपने प्रदेश की जनसंख्या और स्थनांतरित रूप से वह जहाँ बसता है उस प्रदेश की जनसंख्या इन दोनों में अंतर उत्पन्न करता है। यह अंतर उस राज्य के लिंगानुपात में असंतुलन उत्पन्न करता है। उदाहरण – डॉ. कौशिक शुक्ल के भावनगर के पास अलंग शीपब्रेकिंग यार्ड के एक अध्ययन के आधार में पाया गया कि यार्ड के कुल श्रमिकों में से अधिकांश श्रमिक परप्रांतीय पुरुष ही थे।

इसके अलावा आर्थिक विकास के लिए होनेवाला स्थलांतर लिंगानुपात की असमानता उत्पन्न करता है। भारतीय समाज में परंपारागत श्रमविभाजन इसी तरह होता है कि जिसमें पुरुषों को आजीविका प्राप्त करनी और स्त्रियों को गृहसंचालन, प्रजनन और बालकों की देखभाल करने का कार्य। सामान्य रूप से पुरुष आजीविका प्राप्त करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से जा सकता है। जबकि स्त्री के लिए यह बंधनकर्ता है। भारत में अनेक कृषि मजदूर एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थलांतर करते हैं। व्यापार–उद्योग जहाँ अधिक है वहाँ आजीविका के लिए स्थनांतर कर्ताओं की संख्या अधिक है। इस प्रकार एक राज्य से दूसरे राज्य में या एक प्रदेश में पुरुषों का स्थनांतर बढ़ा है। स्थलांतर की इस प्रवृत्ति में स्त्रियों को अपने ही गाँव में रहना पड़ता है। इसके कारण राज्यवार लिंगानुपात अलग पाया जाता है, जिसे हम लिंगानुपात असमानता कहते हैं।

असमान लिंगानुपात की समस्या के विपरीत प्रभाव

भारत में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का घटता अनुपात अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है। सामाजिक रचनातंत्र में स्त्रियों–पुरुषों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। समाज के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, पारिवारिक और शैक्षणिक विकास में पुरुषों के साथ स्त्रियों का योगदान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। बालक को जन्म देकर और उसका पालन–पोषण करके स्त्री पारिवारिक विरासत का सातत्य बनाए रखती है। स्त्रियों का घटता अनुपात सामाजिक सातत्य को बनाए रखने में अवरोधक बन सकता है।

स्त्री–पुरुष का असमान लिंगानुपात विवाह पर भी विपरीत प्रभाव डालता है। पुरुषों से स्त्रियों की कम संख्या के कारण समाज में अविवाहितों की संख्या बढ़ने से अनिवार्य कुँवारापन बढ़ता है। पुत्री का विवाह न हो जब तक माता–पिता दुविधायुक्त स्थिति में जीते हैं। स्त्रियों की कम संख्या के कारण कन्याविक्रय को वेग मिलता है अर्थात् पुरुषों को विवाह के लिए स्त्रियों को ऊँची कीमत चुकानी पड़ती है। इसलिए जिसके पास अधिक पैसा या संपत्ति हो वह ऊँची कीमत चुकाकर विवाह कर सकता है, जबकि गरीब और मध्यमवर्ग के युवकों के लिए पात्र पसंदगी का प्रश्न जटिल बनता है। कई बार उच्च डिग्रीवाली स्त्रियों को अपने से निम्न डिग्रीवाले पुरुष साथ या उच्च डिग्रीवाले पुरुष को अपने से निम्न डिग्रीवाली स्त्री के साथ विवाह करने की नौबत आती है। असमान लिंगानुपात के कारण वर के लिए कन्या ढूँढ़ने और विशेषकर जिस समूह में अपने ही समूह में विवाह करने का नियम हो ऐसे परिवार में बचपन में ही अपने परिवार की कन्या को कन्यापक्ष के युवकों को देनी पड़ती है। अर्थात् साटा पद्धति अपनानी पड़ती है। इस तरह देखें तो असंतुलित लिंगानुपात के कारण अनमेल विवाह की स्थिति का निर्माण होता है।

इसके अलावा पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम होने के कारण स्त्रियों पर अत्याचार बढ़ते हैं। भारत में विविध राज्यों में दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे छेड़छाड़, लैंगिक शोषण, बलात्कार इसके साक्षी हैं।

असमान लिंगानुपात की समस्या के समाधान के उपाय

असमान लिंगानुपात की समस्या को हल करने हेतु स्त्रियों के प्रति मान्यताओं, मूल्यों में परिवर्तन लाना पड़ेगा। इसके लिए सरकार, स्वैच्छिक संस्थाएँ, बुद्धिजीवियों, समाजिक चिंतकों, धार्मिक नेताओं और लोकसेवकों को मिलकर सामूहिक प्रयत्न करने चाहिए, इसके लिए,

- कन्या जन्म को प्रोत्साहन मिले इस प्रकार की नीतियों का निर्माण करना।
- स्त्री और पुरुष को संवैधानिक दृष्टि से कानून की दृष्टि से समान अधिकार मिलता है, वास्तविक सामाजिक जीवन में दोनों का समान महत्त्व माना जाए इसके लिए उचित कदम उठाना।
- जिन परिवारों में संतानों में मात्र एक पुत्री ही हो ऐसे परिवारों को दूसरे परिवार के लोगों को पुत्री के जन्म के लिए प्रोत्साहित करना।
- स्त्रियों को स्वयं ही जाग्रत और संगठित होकर अपने अस्तित्व के लिए लोकजाग्रति प्राप्त करना।
- प्रचार-प्रसार माध्यमों में असमान लिंगानुपात की समस्या को प्रसारित करके लोकजागृति लाना।
- पुत्र-पुत्री के सामाजीकरण में समानता के मूल्य आत्मसाहत हो, ऐसे प्रयत्न करना।
- भ्रूण हत्या को रोकना।
- गर्भपरीक्षण के कानून का कठोरता से पालन करवाना।
- लैंगिक असमानता के गंभीर प्रभावों से युवाओं को परिचित करवाना। इसके लिए विद्यालयों-कॉलेजों में सेमिनारों, कॉन्फ्रेन्सों का आयोजन करना।
- स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा इसके लिए रचनात्मक भूमिका निभाना।
- समाज के कुरिवाजों, कुप्रथाओं और रीतियों में परिवर्तन आए, ऐसे प्रयत्न करना।
- प्रत्येक प्रतिबंधक कानूनों का चुस्त अमल हो यह देखना।

एच.आई.वी. एड्स-एक सामाजिक समस्या

एच.आई.वी. एड्स एक वैश्विक सामाजिक समस्या है। विश्व में मुश्किल से कोई ऐसा देश होगा जिसमें एड्स के रोगी नहीं हों। एच.आई.वी.ग्रस्त पीड़ितों की संख्या दक्षिण अफ्रीका, नाईजीरिया के बाद भारत विश्व में तीसरे क्रम का देश है। NACO (National Aids Control Organization) के वर्ष 2013-14 के लेख के अनुसार भारत में वर्ष 2011 में 15 सें 49 वर्ष की उम्र के लोगों में एच.आई.वी.ग्रस्त रोगियों की संख्या 20.89 लाख थी। नेशनल एड्स कन्ट्रोल ऑर्गेनाईजेशन का यह अंक दर्शाता है कि भारत में एच.आई.वी.ग्रस्त लोगों में अधिकांश युवा हैं। इस तरह से देखें तो युवाओं के लिए एड्स की समस्या एक चुनौती है। अन्य देशों की तुलना में जब भारत में युवाओं का अनुपात सबसे अधिक है, तब एड्सग्रस्त युवा रोगियों की संख्या चिंता उत्पन्न करनेवाली है।

एच.आई.वी. एड्स

AIDS अर्थात् क्या ?

सरल शब्दों में ऐसा कह सकते हैं कि AIDS अर्थात् शरीर द्वारा प्राप्त रोगप्रतिरोधक शक्ति के विनाश के चिह्न। शाब्दिक अर्थ देखें तो AIDS अर्थात्

A - Acquired (प्राप्त)

I - Immuno (रोगप्रतिकारक शक्ति)

D - Deficiency (कमी)

S - Syndrome (चिह्न)

इस प्रकार एड्स अर्थात् मानव शरीर में रोगप्रतिकारक शक्ति की कमी से होनेवाले अनेक रोग। शरीर में HIV का वायरस प्रवेश करने के कुछ वर्षों बाद व्यक्ति को एड्स होता है। HIV अर्थात् Human Immuno Deficiency Virus। यह वायरस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करके धीमे-धीमे उसकी रोगप्रतिरोधक शक्ति का नाश करता है और परिणामस्वरूप एच.आई.वी. वायरस वाले व्यक्ति का शरीर अनेक रोगों का भोग बनता है। व्यक्ति के शरीर की यह परिस्थिति अर्थात् एड्स।

एड्स का सर्वप्रथम रोगी ई.स. 1981 में अमेरिका में दर्ज किया गया था। अमेरिका के लोस ऐन्जलस में सजातीय संबंधोंवाले पुरुषों में भी यह रोग धीमे-धीमे ड्रग्स के इन्जेक्शन लेनेवाले व्यसनियों में और उसके बाद विश्व के लगभग सभी देशों में खूब ही तेजी से फैल गया है।

भारत में ई.स. 1986 में चेन्नई में सर्वप्रथम डॉ. सुनीति सोलोमन ने एक सेक्सवर्कर को एच.आई.वी. होने की जानकारी दी की थी। इसके बाद के वर्षों में सेक्सवर्कर में इस रोग के चिह्नों का पता चला था। 1987 तक एच.आई.वी. के दूसरे नये 135 रोगियों को शामिल किया गया था, जिनमें 14 व्यक्ति तो संपूर्णरूप से एड्सग्रस्त थे।

एड्स किस तरह फैलता है ?

एड्स एच.आई.वी वायरस से फैलनेवाला रोग है। एच.आई.वी. वायरस का शरीर से बाहर बहुत ही आसानी से नष्ट होता है; परन्तु जब एक बार मानव शरीर में प्रवेश कर जाता है, उसके बाद उसका नाश करना मुश्किल है। एड्स का वायरस मानव शरीर में किस तरह प्रवेश करता है इसके संबंध में जानकारी डॉ. प्रकाश वैष्णव और डॉ. ब्रजलाल पटेल नें 'एड्स इस युग का महाकाल' पुस्तिका में दी है। उनके अनुसार एड्स का वायरस मुख्यत: नीचे दर्शाए चार माध्यमों द्वारा व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करता है :

(1) शारीरिक संबंध द्वारा
(2) खून (रक्त) द्वारा
(3) माता द्वारा
(4) जंतुयुक्त साधनों द्वारा

एड्स किस तरह नहीं फैलता ?

(1) एड्स के रोगी के साथ हाथ मिलाने से, साथ में उठने-बैठने से, साथ में खाना खाने से, गले मिलने से या चुंबन करने से एड्स का रोग नहीं लगता।
(2) तालाब, नदी या स्विमिंगपुल में साथ में स्नान करने से एड्स का रोग नहीं लगता।
(3) एड्स के रोगी के खाँसने या छींकने से एड्स नहीं फैलता।
(4) मक्खी, मच्छर या मकड़ी द्वारा एड्स नहीं फैलता।
(5) सार्वजनिक शौचालय का प्रयोग करने से एड्स नहीं फैलता।
(6) एड्स ग्रस्त व्यक्ति (रोगी) के आँसू या पसीने से एड्स नहीं फैलता।

एच.आई.वी. एड्स एक सामाजिक समस्या

विद्यार्थी मित्रो, एच.आई.वी.एड्स मात्र विश्व व्यापी जनस्वास्थ्य की ही समस्या नहीं; परन्तु वह सामाजिक मानकों और सामाजिक मूल्यों के उल्लंघन का भी परिणाम है। एड्स का भोग बना व्यक्ति और उसके परिवार से लेकर समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और जनसंख्या पर एड्स का विपरीत असर पड़ता है। इन सभी दृष्टिकोणों से देखें तो एच.आई.वी.एड्स जनस्वास्थ्य के साथ एक सामाजिक समस्या भी है। यहाँ एक सामाजिक समस्या के रूप में एड्स के कारणों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

(1) असुरक्षित शारीरिक संबंध :

एड्स होने के पीछे का मुख्य कारण है - असुरक्षित शारीरिक संबंध। एच.आई.वी. संक्रमित स्त्री या पुरुष एक-दूसरे के साथ असुरक्षित शारीरिक संबंध स्थापित करें तो एच.आई.वी. के वायरस एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करते हैं और असंक्रमित व्यक्ति को भी एच.आई.वी. का संक्रमण हो सकता है। इस तरह एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति को लम्बे समय बाद एड्स होता है। सेक्सवर्कर में शारीरिक संबंध की असुरक्षा विशेष पाई जाती है।

आधुनिक युग में विवाह से पूर्व लैंगिक पवित्रता और विवाह के बाद के संबंध के मानक कमजोर पड़ गए हैं। लैंगिक स्वेच्छाचार की मात्रा बढ़ी है। पति-पत्नी की परस्पर लैंगिक वफादारी पर टी.वी. सीरियलों से लेकर फिल्मों और सोशियल मीडिया ने विपरीत प्रभाव डाले हैं। इन माध्यमों द्वारा प्रस्तुत होनेवाले संदेशों के कारण लैंगिक जीवन ने विविधता को मोह का प्रमाण बढ़ा है। इन सभी के परिणामस्वरूप महानगरों से लेकर गाँवों में बलात्कार की घटनाओं की संख्या दिनप्रतिदिन बढ़ने लगी है। नेशनल क्राईम रिकोर्ड्स ब्यूरो के 2013 के वार्षिक लेख के अनुसार सन् 2015 समग्र भारत में 24,923 बलात्कार केस दर्ज हुए थे, जिसमें 98% किस्सों में बलात्कार करनेवाले व्यक्ति नजदीक के परिचित मालूम पड़े थे। आधुनिक युग में सजातीय संबंधों की संख्या भी बढ़ी है। गे रिलेशन और लेस्बियन रिलेशनशिप के कारण एड्स होने की संभावना सबसे अधिक है। अमेरिका, अफ्रीका और इंग्लैण्ड में ऐसे लैंगिक संबंध रखनेवाले लोगों की संख्या अधिक होने से और सरकार भी ऐसे संबंधों को मान्यता देती होने के कारण इन देशों में एड्स के रोगियों की संख्या अधिक है।

इस प्रकार असुरक्षित शारीरिक (लैंगिक) संबंध एड्स फैलाने में सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है।

(2) खून की अदला-बदली :

विद्यार्थी मित्रो, हमने देखा कि एड्स का वायरस बाहरी वातावरण में लंबे समय तक अपना अस्तित्व टिकाए नहीं रख सकता; परन्तु यदि यह वायरस शरीर में फल्युड (रक्त, वीर्य या योनिस्राव) के संपर्क में आए तो उसका अंत आ जाता है। इसका अर्थ यह है कि आकस्मिक संयोगों में रक्त की आवश्यकता उत्पन्न हो तब एच.आई.वी. ग्रस्त व्यक्ति का रक्त लेना जोखिमयुक्त है। एच.आई.वी. ग्रस्त व्यक्ति का रक्त एड्स फैलानेवाला मुख्यकारक है। कुछ लोग पैसे प्राप्त करने के लिए नियमित रूप से रक्त देते हैं। ऐसे व्यावसायिक रक्तदाता से परीक्षण किए बिना रक्त लेना एड्स होने की संभावना अधिक बढ़ाता है। दुर्घटना या आपातकालीन संयोगों में जब भी रक्त की आवश्यकता उत्पन्न होती है। तब परीक्षण किया हुआ रक्त लेना एड्स के सामने रक्षण देता है। इसके उपरान्त एच.आई.वी.ग्रस्त व्यक्ति की किडनी, आँख, श्वेतकण, रक्तकण या अन्य कोई भी अंग का प्रत्यारोपण अन्य किसी व्यक्ति के शरीर में करने से उस व्यक्ति को संक्रमण लग सकता है।

(3) माता द्वारा बालकों को :

एच.आई.वी. संक्रमित पुरुष या स्त्री जब एक-दूसरे के साथ असुक्षित शारीरिक संबंध बनाते हैं, और यदि स्त्री गर्भवती बने तो ऐसी स्त्री द्वारा गर्भ में रहे बालक एच.आई.वी. का संक्रमण लग सकता है। एड्स के वैश्विक फैलाव का यह तीसरा मुख्य कारण है। गर्भावस्था वाली स्त्री की देखभाल के अभाव में बालक को जन्म से पहले या जन्म के बाद एच.आई.वी. का संक्रमण लगने की संभावना 20 % जितनी रहती है। एच.आई.वी. संक्रमित स्त्री की प्रसूति के समय यदि सावधानी न रखी जाए तो बालक को एच.आई.वी. का संक्रमण लग सकता है। इसके उपरांत प्रसूति की कुछ परंपरागत पद्धतियों में भी स्वास्थ्य के मानकों का पालन न होने से माता द्वारा बालक को एच.आई.वी. का संक्रमण लगने की अधिक संभावना रहती है।

(4) नशीले पदार्थों का व्यसन :

नशीले पदार्थों के व्यसनियों की रोगप्रतिरोधक शक्ति बहुत कमजोर होती है। इसलिए ऐसे व्यक्ति को एच.आई.वी. का संक्रमण जल्दी लग सकता है। आधुनिक संशोधनों के लेख के अनुसार नशीले पदार्थों के अधिक व्यसनी एड्स के रोगी होने के सबूत मिले हैं। नशीले पदार्थों के व्यसनी नशा करनेवाला केफी द्रव्य इन्जेक्शन के माध्यम से लेते हैं और इस इन्जेक्शन में ली गई एक ही सूई वे एक-दूसरे के लिए उपयोग में लेते हैं। इससे एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति जब ऐसी सूई अन्य व्यक्ति को देते हैं तब वह व्यक्ति भी एच.आई.वी. का भोग बनता है। उत्तर-पूर्व भारत में यह एड्स फैलने का मुख्य कारण बना है।

इन दिखाई पड़ते कारणों के उपरांत भोगवादी विचार विवाह और इसके बाद के पारिवारिक जवाबदारियाँ निभाने से बचने की वृत्ति, लैंगिक जीवन संबंधी गलत मान्यताएँ, अधिक महत्त्वकाक्षांएँ, गरीबी, शिक्षण का अभाव, शहरीकरण जैसे समाज और संस्कृति के साथ संलग्न अनेक कारण एच.आई.वी. के उद्भव में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

एड्स के विपरीत प्रभाव :

विद्यार्थी मित्रो, एड्स के कारणों से आपके मन में एक बात स्पष्ट हुई होगी कि एड्स मात्र व्यक्तिगत समस्या नहीं है; परन्तु इसका सीधा संबंध व्यक्ति के उपरांत समाज और संस्कृति के साथ है। इस अर्थ में देखें तो एड्सग्रस्त रोगी की अधिक संख्या किसी भी राष्ट्र अथवा समुदाय पर विपरीत प्रभाव डालती है।

आगे देखा उसके अनुसार एड्स होने का मुख्य कारण असुरक्षित लैंगिक संबंध है। जब किसी व्यक्ति के रक्त परीक्षण में एच.आई.वी. की रिपोर्ट पोज़िटिव आए तब वह व्यक्ति एक प्रकार की शरम और संकोच अनुभव करता है। सामाजिक प्रतिष्ठा को आघात लगने के भय से अपनी बात किसी को कहने से घबराता है। यह परिस्थिति उसके लिए असह्य बनती है। इसके अलावा एड्सग्रस्त व्यक्ति के साथ लोग उपेक्षाभरा व्यवहार करते हैं।

एड्स के कारण होनेवाली मृत्यु में बाल मृत्यु दर और माता मृत्यु दर जनसंख्याशास्त्रीय परिवर्तन उत्पन्न करती है। विधवाओं की अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। एड्स का उपचार अत्यंत खर्चीला होने से व्यक्ति के परिवार से लेकर राष्ट्र के आर्थिक ढाँचें को नुकसान पहुँचाती हैं। पहले हमने देखा कि उसके अनुसार भारत में एड्सग्रस्त व्यक्ति अधिकतर 15 से 49 वर्ष की आयु वर्ग के हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्र के व्यापार, उद्योग और शिक्षण पर भी उसके विपरीत प्रभाव पड़ते हैं। इस रोग की कोई दवा या टीका खोजा नहीं गया है इसलिए उससे संबंधित संशोधन करने के लिए तथा सामाजिक जाग्रति लाने के प्रयास भी खर्चीले सिद्ध हुए हैं।

एड्स की रोकथाम अथवा नियंत्रण :

विद्यार्थी मित्रो, एड्स के कारणों और प्रभावों से हम समझ गए होंगे कि यदि इस समस्या को नियंत्रित नहीं किया गया तो इससे अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके साथ एड्स को दूर करने या समाप्त करने के लिए कोई दवा या टीके की अभी तक खोज नहीं होने से उसको नियंत्रित करने का कार्य कठिन है। ऐसे संजोगों में एड्स को फैलाने से रोकना यही इसका श्रेष्ठ इलाज है। लोगों में एड्स से संबंधित जाग्रति लाना और एड्स होने का खतरा घटे ऐसे कदम एड्स को फैलने से रोकते हैं। एड्स को फैलने से रोकने के लिए कौन-कौन-सी बातें प्रभावशाली हैं, उनकी जानकारी प्राप्त करें :

(1) एड्स होने के पीछे सबसे मुख्य कारण असुरक्षित शारीरिक संबंध है। इससे सुरक्षित शारीरिक संबंध एड्स को फैलने से रोकने का सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय है। एक ही वफादार साथी के साथ शारीरिक संबंध और शारीरिक संबंध के दौरान निरोध का उपयोग एड्स को रोकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(2) एच.आई.वी. ग्रस्त व्यक्ति रक्तदान करें तो उसके रक्त से अन्य व्यक्ति को एच.आई.वी. का संक्रमण लग सकता है। इससे आकस्मिक संयोगों में जब खून की आवश्यकता उत्पन्न होती है तब एच.आई.वी का परीक्षण किए हुए रक्त लेने का ध्यान रखना चाहिए।

(3) एच.आई.वी. के रोगी के उपयोग में ली गई इन्जेक्शन सिरिंज, सूई या अन्य उपचार साधन को स्वस्थ व्यक्ति के उपचार के लिए उपयोग में न लेना। टीकाकरण के कार्यक्रमों में अथवा चिकित्सा जाँच में भी जंतुमुक्त उपचार साधनों का ही उपयोग करना।

(4) अलग-अलग संचार माध्यमों द्वारा और संपर्क माध्यमों द्वारा इस रोग से संबंधित लोकजाग्रति और सामाजिक जाग्रति लाना। उदाहरण : प्रति वर्ष 1 दिसम्बर को 'विश्व एड्स दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

(5) एच.आई.वी. का नियंत्रण हो ऐसी दवा या टीका खोजने के लिए संशोधन करना।

इसके उपरांत एड्स को नियंत्रित करने के लिए सरकारी कार्य भी प्रशंसनीय रहा है। भारत सरकार द्वारा शुरू किए गए नेशनल एड्स कन्ट्रोल प्रोग्राम ई.स. 1992 में स्थापित नेशनल एड्स कन्ट्रोल ऑर्गेनाईजेशन (NACO), के अधीन HIV/AIDS कंट्रोल प्रोग्राम की शुरुआत 35 एड्स नियंत्रण सोसायटी, राज्य के चिकित्सालयों में शुरू किए गए चिकित्सा केन्द्रों के कारण एड्स को फैलने से रोकने में बहुत सफलता मिली है।

नशीले द्रव्यों के व्यसन की समस्या

विश्व के प्रत्येक समाज में मनुष्य की जीवनशैली का अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट होती है कि प्रत्येक समाज में प्रत्येक युग के लोग इन द्रव्यों का उपयोग करते थे अथवा जिससे निराशा, हताशा और मानसिक तनाव कम हो, जिनका सेवन करने से कोई असीम आनंद अनुभव होता हो तथा जिससे सुख-दुःख की अनुभूति में

वृद्धि या कमी होती है। इन द्रव्यों के सेवन से जो मानसिक अनुभूति होती है, उनमें से नीचे दिए अनुसार पाँच प्रकार के मनोऔषधीय प्रभाव उत्पन्न होते हैं और ये प्रभाव प्राप्त करने के लिए व्यक्ति इन द्रव्यों का सेवन करता है। ये पाँच प्रभाव इस प्रकार हैं :

(1) पीड़ा से मुक्ति

(2) अनिच्छनीय तथा कष्ट देनेवाली क्रियाओं और भावनाओं जैसे कि चिंता, अधीरता, उत्तेजना, कमजोरी आदि में कमी।

(3) शरीर में शक्ति तथा ऊर्जा में वृद्धि तथा निराशा और नींद न आने की स्थिति को दूर करना।

(4) नवीन चेतना तथा अनुभूति की प्राप्ति।

(5) सिर से कार्य का भार हल्का करना तथा प्रसन्नता की भावनाएँ जाग्रत करना।

विद्यार्थी मित्रो, ऊपर दर्शाए भ्रामक प्रभाव से प्रभावित होकर युवा नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं। ई.स. 1925 के पूर्व नशीले द्रव्यों के सेवन पर कोई प्रतिबंध नहीं था; परन्तु ई.स. 1925 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के जिनेवा ड्रग कन्वेंशन में इन नशीले द्रव्यों के व्यसन के गंभीर परिणामों पर विचार किया गया और राष्ट्रसंघ ने अपने सदस्य देशों को इन द्रव्यों की बिक्री तथा उपयोग पर प्रतिबंध लगाने की बात कही। संयुक्त राष्ट्र संघ की विश्व स्वास्थ्य संस्था ने नशीले द्रव्यों के व्यसन की विश्व व्यापी समस्या को नियंत्रित करने के लिए जो अभियान चलाया था उसके फलस्वरूप विश्व के सभी देशों में नशीले द्रव्यों के व्यसन को एक सामाजिक समस्या के रूप देखा

नशीले द्रव्य

जाता है और इस समस्या के नियन्त्रण और निवारण के लिए प्रयत्न किए जाते हैं।

नशीले द्रव्यों के व्यसन का अर्थ

विश्व स्वास्थ्य संगठन के विशेषज्ञों की समिति ने नशीले द्रव्यों के सेवन की व्याख्या देते हुए स्पष्टता की है कि ''आदी अर्थात् किसी प्राकृतिक या कृत्रिम नशीले पदार्थ या द्रव्य जिसका बारंबार सेवन करने के कारण पैदा होती कुछ निश्चित समयान्तर की नशायुक्त अवस्था, जो उस व्यक्ति और समाज दोनों के लिए विनाशक होती है। इस प्रकार नशीले पदार्थों का सेवन करने की सतत और अनिवार्य आवश्यकता इसकी मात्रा बढ़ाने की वृत्ति तथा उन पदार्थों पर शारीरिक, मानसिक अवलंबन आदि बातों का समावेश होता है।''

जॉन ए. क्लोसेन — नशीले द्रव्यों का सेवन सुखदायक प्रभाव पैदा करने के लिए या दुःख-दर्द से दूर रहने के लिए उपभोग किए गए रासायनिक पदार्थ के प्रति मनोशारीरिक प्रतिक्रिया है।

नशीले द्रव्यों के व्यसन के कारण :

नशीले द्रव्यों के व्यसन के लिए अनेक कारण जिम्मेदार हैं। इन कारणों की यहाँ संक्षिप्त में जानकारी प्राप्त करेंगे :

(1) सामाजिक परिवर्तन :

सामाजिक परिवर्तन अर्थात् सामाजिक संरचना में होनेवाला परिवर्तन। जब व्यक्ति बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के साथ तालमेल साध नहीं सकता तब उन नशीले द्रव्यों के सेवन की तरफ मुड़ता है। आज की युवा पीढ़ी नशीले द्रव्यों का व्यसन करना फैशन मानते हैं। इन द्रव्यों के सेवन से वे आधुनिक होने का दावा करते हैं। इसके उपरांत आज की युवा पीढ़ी टी.वी, फिल्मों में दर्शाए जानेवाले दृश्यों के अनुसार अपने आपको ढ़ालने का प्रयत्न करते हैं। इन सभी कारणों से व्यक्ति कई बार स्वयं अकेला पड़ गया हो या उसका कोई नहीं, इस प्रकार की भावना अनुभव करता है। अपने आप से और समाज से विमुख बने ऐसे व्यक्ति नशीले द्रव्यों की तरफ मुड़ते हैं। इस तरह सामाजिक परिवर्तन नशीले द्रव्यों के व्यसन का एक सहायक कारक है।

(2) एनोमी की परिस्थिति :

एनोमी की परिस्थिति अर्थात् सांस्कृतिक मानकों को भंग करने की परिस्थिति। सांस्कृतिक मानक, उद्देश्य और उसे प्राप्त करने के साधनों के बीच तनाव के कारण एनोमी की परिस्थिति उत्पन्न होती है। कोहेन और जेम्स दर्शाते हैं कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं कि जिनमें नैतिक मूल्यों का आंतरिकरण होता है; परंतु आवश्यक कौशलों का उनमें अभाव होता है। उनमें कोई अपराधिक प्रवृत्ति नहीं पाई जाती अथवा उन्हें कोई हिंसक वातावरण नहीं मिलता। इससे ऐसी दोहरी निष्फलता अनुभव करनेवाले व्यक्ति नशीले द्रव्यों की तरफ मुड़ते हैं।

(3) व्यक्ति में अपने या समाज के प्रति उदासीनता :

जब व्यक्ति अपने या समाज से एक प्रकार की उदासीनता का अनुभव करें तब उस परिस्थिति को सामाजिक विमुखता कहा जाता है। परिवार अथवा समाज के अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में भी कुछ व्यक्ति ऐसी उदासीनता या अकेलापन अनुभव करते हैं। स्वयं के ऐसे एकाकीपन के लिए वह समाज या सामाजिक परिस्थिति को जवाबदार मानता है। वह अपनी ऐसी एकलता या एकाकीपन को दूर करने के लिए नशीले द्रव्यों के व्यसन का सहारा लेता है। इस प्रकार के नशीले द्रव्यों के व्यसन से समाज विरोधी या राष्ट्रविरोधी बन जाता है।

(4) मित्र समूह या समवयस्क समूह का दबाव :

मित्र समूह या समवयस्क समूह ऐसे प्राथमिक समूह हैं कि जिनका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर सबसे अधिक पड़ता है। इन समूहों के सदस्य नशीले द्रव्यों के व्यसनी हों तो समूह में जुड़े व्यक्ति, मित्रों या समवयस्कों को नशीले द्रव्यों के सेवन के निवेदन से व्यसन करते हैं। ऐसा व्यसन करने के पीछे उनका उद्देश्य मात्र इस प्रकार के समूह में स्वीकृति प्राप्त करना होता है। इससे मित्रों या समवयस्कों के दबाव को वे मना नहीं कर सकतें और हमेशा के लिए नशीले द्रव्यों के व्यसनी बन जाते हैं।

(5) जिज्ञासा और अज्ञानता :

कई बार व्यक्ति नशीले द्रव्यों के सेवन करने से क्या असर होगा इससे अंजान होते हैं। तो कभी ऐसा भी होता है कि नशीले द्रव्यों के अनुभव सुनने के बाद अपने मन में भी इस प्रकार का अनुभव लेने की इच्छा जाग्रत होती है। नशीले द्रव्य किससे बने होते हैं, उसका सेवन करने से शरीर को क्या नुकसान होगा आदि के संबंध वे अनभिज्ञ होने पर भी मात्र प्रयोग करने के लिए वे नशीले द्रव्यों का सेवन करते हैं। परन्तु एक बार इन द्रव्यों का सेवन करने से उन्हें स्थायी रूप से उसकी लत लग जाती है। इस प्रकार कईबार इस प्रकार की जिज्ञासा और अज्ञानता नशीले द्रव्यों के व्यसन का कारण बनता है।

(6) औद्योगिकीकरण और शहरीकरण :

औद्योगिकीकरण के कारण होता स्थनांतर शहरीकरण की प्रक्रिया विकसित करता है। उद्योगों में काम करने वाले व्यक्ति सतत एक प्रकार का काम पूरे दिन करते हैं। सतत एक ही प्रकार का काम और वातावरण व्यक्ति को समाज से विमुख बनाता है। अधिक श्रम के कारण पूरे दिन की थकान को हल्का करने के लिए व्यक्ति नशीले पदार्थों के सेवन का मार्ग अपनाते हैं और दूसरी तरफ शहरीकरण की परिस्थिति ऐसे व्यसनों को खुला मैदान देती है। 'शहरों में उसे कौन पहचानता है ?' की भावना अपराधी आचरण को छुपाने के विपुल अवसर, असुरक्षा जैसी परिस्थिति व्यक्ति को नशीले द्रव्यों का व्यसन करने की तरफ मोड़ती है।

(7) आर्थिक परिस्थिति :

काम करने की इच्छा शक्ति होने पर भी व्यक्ति को काम न मिले तब ऐसे व्यक्ति की लघुग्रंथी से परेशान हो जाता है। ऐसी बेकारी के कारण व्यक्ति अपनी आर्थिक आवश्यकताएँ परिपूर्ण नहीं कर सकता इसलिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। बेकारी के कारण उसमें उत्पन्न हुई हताशा और निराशा जैसे मानसिक प्रभाव से मुक्त होने के लिए वह नशीले द्रव्यों के व्यसन की तरफ मुड़ता है। इसके अलावा समाज में ऐसे व्यक्ति भी होते हैं, जिन्हें काम तो मिल रहा है; परन्तु उसके सामने वेतन बहुत ही कम मिलता है। ये संयोग भी उसके लिए निराशा उत्पन्न करनेवाले होते हैं, इससे वे कई बार नशीले पदार्थों के सेवन करने लग जाते हैं।

बेकारी और कम आय की परिस्थिति से परिवार की संपन्नता की परिस्थिति अलग होती है। आर्थिकरूप से साधनसंपन्न परिवार के नवाबजादे अपने शौक पूरे करने के लिए मँहगे नशीले पदार्थों का व्यसन करते हैं। समाचार माध्यमों में प्रसारित होनेवाले समाचार इस बात के साक्षी हैं।

(8) भारत का भौगोलिक स्थान :

नशीले पदार्थों की गैरकानूनी तस्करी की दृष्टि से भारत का भौगोलिक स्थान महत्त्वपूर्ण है। भारत की सीमा रेखा पर आए पंजाब, राजस्थान, आंध्रप्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर, बिहार जैसे राज्यों में इन पदार्थों की हेराफेरी का व्यापार विकसित है। दूसरे देशों में नशीले पदार्थों को पहुँचाने में भी भारत भौगोलिक दृष्टि से माध्यम बनता है। तो दूसरी तरफ इन द्रव्यों की तस्करी करनेवाले एजेन्टों, दलालों जैसे असामाजिक तत्त्वों द्वारा भारत के शहरों और महानगरों में नशीले द्रव्यों को आयोजनबद्ध रूप से घुसाया जाता है। इन सभी का परिणाम यह आता है कि भारत में युवा पीढ़ी इन द्रव्यों के व्यसन के चुंगल में फँसती है और उनका सामाजिक जीवन नष्ट होता है।

(9) अन्तरराष्ट्रीय राजनैतिक कारण :

भारत एक विकासशील देश है। भारत का विकास, विकसित राष्ट्रों तथा दुश्मन देशों को आँख में किरकिरी जैसे चुभता है। इससे अंतरराष्ट्रीय पटल पर खेली जानेवाली राजनीति भारत में नशीले द्रव्यों के व्यसन की समस्या को वेग देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत को आर्थिक रूप से तोड़ दिया जाए, उसकी सैनिक शक्ति कम हो, विशाल युवावर्ग इन द्रव्यों के सेवन की तरफ खिंचे, विकास की गति थम जाए जैसे अनेक कारणों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का रंग शामिल है, जो नशीले द्रव्यों के व्यसन की समस्या के लिए जवाबदार बनती है।

इस तरह नशीले द्रव्यों के व्यसन की समस्या व्यक्ति के व्यक्तिगत, पारिवारिक और आर्थिक जीवन पर और स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है। इससे इस समस्या का निवारण करना जरूरी है।

नशीले द्रव्यों के व्यसन की समस्या हल करने के उपाय

विद्यार्थी मित्रों, उपर्युक्त कारणों से आपको समझ में आया होगा कि, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर नशीले द्रव्यों के व्यसन की समस्या से किस विघटनकारी परिस्थिति का निर्माण होता है। यदि इस समस्या पर नियंत्रण नहीं पाया गया अथवा उसकी तस्करी पर प्रतिबंध लगाया न जाए तो समाज और राष्ट्र को उसके विघातक परिणामों का सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा।

(1) नशीले द्रव्यों के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने के कानून :

नशीले पदार्थों के व्यसन की समस्या को रोकने के लिए समय-समय पर अनेक महत्त्वपूर्ण कानून बनाए गए हैं।

- 1930 में डेन्जरस ड्रग्स एक्ट बनाया गया, जो नशीले द्रव्यों की संपूर्ण श्रृंखला पर नियंत्रण लगाने के विस्तृत कानूनी व्यवस्था का एक्ट था।
- बोम्बे प्रोहिबिजन एक्ट - 1949 की कुछ व्यवस्थाओं के अनुसार दारू के उत्पादन पर, दारू बनाने की भट्टी बनाने पर दारू की बिक्री नशा पैदा करते द्रव्यों का आयात-निर्यात, तस्करी, बिक्री, उत्पादन आदि पर, ताड़, अफीम, चरस आदि के उत्पादन, बिक्री पर प्रतिबंध लगाया गया।
- 1961 के सिंगल कन्वेन्शन की व्यवस्था के संदर्भ में चिकित्सा और वैज्ञानिक उपयोग के लिए खसखस के पौधों की बुवाई और अफीम के उत्पादन के क्षेत्र पर सतर्क नियंत्रण लगाया गया।
- 1978 में दी ओपियम एक्ट के अधीन अफीम के गैरकानूनी उत्पादन हेराफेरी, अफीम रखने पर उसके संग्रह और वितरण तथा बिक्री पर, उससे संलग्न कार्यवाही के संदर्भ में नियंत्रण लगाए गए थे।
- सन् 1985 में द नार्कोटिक ड्रग्स एण्ड सायकोझेपिक सबस्टन्सीज एक्ट बनाया गया। यह कानून नशीले पदार्थों की खेती पर प्रतिबन्ध लगाता है। यह कानून किसी भी नशीले पदार्थ के उत्पादन, बिक्री, कब्जा, खरीदी, हेराफेरी, संग्रह, उपयोग, आयात-निर्यात पर प्रतिबंध लगाता है। इस कानून के उल्लंघन पर 10 वर्ष की सख्त केद जिसे 20 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। इसके उपरांत इस कानून के अंतर्गत एक लाख दंड की रकम को 2 लाख रूपए तक बढ़या जा सकता है।

(2) उपचारात्मक कदम :

मारवाह समिति ने अलग-अलग उपचारात्मक कदम दर्शाए हैं, जो निम्नानुसार हैं :

- राष्ट्रीय विकास योजनाओं के साथ संकलित ऐसे मद्यपान और नशीली दवाओं के दुरुपयोग विरोधी शैक्षणिक योजना बनाई।
- विद्यार्थी मित्रो, युवकों, मजदूरों स्थनांतरकर्ताओं, आदिवासियों आदि को इस समस्या संबंधी जानकारी देना।
- नशामुक्ति केन्द्रों की स्थापना करनी और मद्यपान तथा नशीली दवाओं के व्यसन की समस्या को से संबंधित समिति की रचना करनी।
- जनसंख्या के विविध समूहों में नशीले द्रव्यों और मद्यपान उपयोग से जुड़े प्रवाहों का तथा समस्या निवारण के कदमों का सातत्यपूर्ण मूल्यांकन करना।

इसके उपरांत भारत सरकार के नार्कोटिक कंट्रोल ब्यूरो द्वारा निर्मित एक्शन प्लान में समस्या के निवारण के लिए मुख्यत: गैरसरकारी संगठनों की सेवा, व्यसनियों का पुर्नवास, जनजागृति और सार्वजनिक स्वास्थ्य जागृति, युवाओं में एल्कोहल और ड्रग डिमान्ड कम करनी तथा इस दूषण से युवाओं को सूचित करने के उपायों का समावेश होता है।

विद्यार्थी मित्रो, इस प्रकरण में हमने सामाजिक समस्याओं का अर्थ और लक्षणों का परिचय प्राप्त करके भारत में प्रवर्तमान असमान लिंगानुपात एड्स और नशीले द्रव्यों के व्यसन के कारणों, विपरीत प्रभाव और उन्हें हल करने के उपायों के संबंध में जानकारी प्राप्त की। सामाजिक समस्याओं के संबंध में वैज्ञानिक अभिगम से हमारे आसपास के विश्व में उत्पन्न होती सामाजिक समस्याएँ देखने-समझने का आपका दृष्टि बिन्दु बदला होगा।

विद्यार्थी मित्रो, कक्षा 12 के समाजशास्त्र विषय की इस पाठ्यपुस्तक में इकाई 1 से 10 तक अभ्यासक्रम में सामाजिक जीवन से जुड़े सभी पक्षों का समावेश करने का प्रयास किया गया है। सामाजिक-सांस्कृतिक वैविध्य भारत की महत्त्वपूर्ण पहचान है। भारत की महत्त्वपूर्ण पहचान के समान सामाजिक-सांस्कृतिक वैविध्य का परिचय स्त्री-सशक्तिकरण, संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, उदारीकरण विविध सामाजिक आंदोलनों और संचार माध्यमों के सामाजिक प्रभाव जैसे समग्र प्रवाहों की समझ देती यह पाठ्यपुस्तक आपके समाजशास्त्रीय ज्ञान में अभिवृद्धि करेगी।

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) असमान लिंगानुपात के कारण समझाइए।

(2) एड्स के कारणों की जाँच (स्क्रीनिंग) कीजिए।

(3) नशीले पदार्थों के व्यसन के कारण विस्तार से समझाइए।

(4) 'एड्स एक सामाजिक समस्या है।' - विधान की यथार्थता की जाँच कीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर मुद्दासर दीजिए :

(1) सामाजिक समस्या के लक्षण।

(2) असमान लिंगानुपात के विपरीत प्रभावों का वर्णन कीजिए।

(3) असमान लिंगानुपात की समस्या को रोका जा सकता है - समझाइए।

(4) एड्स नियन्त्रण किस तरह कर सकते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

(5) नशीले द्रव्यों के व्यसन की समस्या को हल करने के उपचारात्मक कदम बताइए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

(1) सामाजिक समस्या की व्याख्या दीजिए।

(2) असमान लिंगानुपात अर्थात् क्या ?

(3) AIDS का पूरा नाम लिखिए।

(4) नशीले द्रव्यों के व्यसन का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

4. निम्नलिखित प्रश्नों के एक-एक वाक्य में उत्तर लिखिए :

(1) सामाजिक समस्या कब उद्भव होती है ?

(2) 2011 के सेन्सस के अनुसार गुजरात में लिंगानुपात बताइए।

(3) स्त्री-भ्रूण हत्या किसे कहते हैं ?

(4) ऑनर किलिंग किसे कहते हैं ?

(5) HIV शब्द का पूरा अर्थ लिखिए।

5. निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उत्तर लिखिए :

(1) वर्ष 2011 में भारत में स्त्रियों का अनुपात...... ☐

(अ) 920 (ब) 930 (क) 940 (ड) 950

(2) एड्स की समस्या में विश्व में भारत का कौन-सा स्थान है ? ☐

(अ) दूसरा (ब) तीसरा (क) चौथा (ड) पाँचवा

(3) एड्स का प्रथम रोगी किस देश में पाया गया था ? ☐

(अ) भारत (ब) इंग्लैण्ड (क) जापान (ड) अमेरिका

(4) 'विश्व एड्स दिवस' कब मनाया जाता है ? ☐

(अ) 1 दिसम्बर (ब) 11 दिसम्बर (क) 1 अक्टूबर (ड) 11 सितम्बर

(5) बॉम्बे प्रोहिबिशन एक्ट कब बनाया गया ? ☐

(अ) 1947 (ब) 1948 (क) 1949 (ड) 1950

क्रिया-कलाप

- आपके क्षेत्र में पाई जानेवाली सामाजिक समस्याओं की सूची बनाइए।
- असमान लिंगानुपात के विचार को अपने समाज के संदर्भ में जाँचकर एक लेख तैयार कीजिए।
- एड्स को रोकने के उपायों के संदर्भ में चर्चा सभा का आयोजन कीजिए।
- आपके क्षेत्र में युवाओं में पाए जानेवाले व्यसनों का अध्ययन करके नशीले द्रव्यों की व्यापकता पर लेख तैयार कीजिए।
- नशीले पदार्थों के प्रभावों से संबंधित समूहचर्चा कीजिए।

●

परिशिष्ट-1

भारत में लिंगानुपात (2011)

क्रम	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	लिंगानुपात
	भारत	**940**
1.	केरल	1084
2.	पांडिचेरी	1038
3.	तमिलनाडु	995
4.	आंध्रप्रदेश	992
5.	छत्तीसगढ़	991
6.	मणिपुर	987
7.	मेघालय	986
8.	ओडिशा	978
9.	मिजोरम	975
10.	हिमाचल प्रदेश	974
11.	कर्णाटक	968
12.	गोवा	968
13.	उत्तराखंड	963
14.	त्रिपुरा	961
15.	असम	954
16.	पश्चिम बंगाल	947
17.	झारखंड	947
18.	लक्षद्वीप	946

क्रम	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	लिंगानुपात
19.	नागालैण्ड	931
20.	मध्यप्रदेश	930
21.	राजस्थान	926
22.	महाराष्ट्र	925
23	अरुणाचल प्रदेश	920
24.	गुजरात	918
25.	बिहार	916
26.	उत्तरप्रदेश	908
27.	पंजाब	893
28.	सिक्किम	889
29.	जम्मू-कश्मीर	883
30.	अंदमान-निकोबार	878
31.	हरियाणा	877
32.	दिल्ली	866
33.	चंडीगढ़	777
34.	दादरा और नगर हवेली	775
35.	दमन और दीव	618

संदर्भ : जनगणना, भारत 2011

परिशिष्ट–2

भारत में राज्यानुसार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या (2011)

क्रम	राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश	जनसंख्या		कुल जनसंख्या में प्रतिशत
		कुल	आदिवासी	
1.	जम्मू–कश्मीर	12548926	1493299	11.89
2.	हिमाचल प्रदेश	6856509	392126	5.72
3.	पंजाब	27704236	0	0
4.	चंडीगढ़	1054686	0	0
5.	उत्तरांचल	10116752	291903	2.88
6.	हरियाणा	25353081	0	0
7.	दिल्ली	16753235	0	0
8.	राजस्थान	68621012	9238534	13.46
9.	उत्तरप्रदेश	199581477	1134273	0.57
10.	बिहार	103804637	1336573	1.29
11.	सिक्किम	607688	206360	33.96
12.	अरुणाचल प्रदेश	1382611	951821	68.84
13.	नागालैण्ड	1980602	1710973	86.39
14.	मणिपुर	2855794	902740	31.61
15.	मिजोरम	1091014	1036115	94.97
16.	त्रिपुरा	3671032	1166813	31.78
17.	मेघालय	2964007	2555861	86.23
18.	असम	31169272	3884371	12.46
19.	पश्चिम बंगाल	91347736	5296953	5.79
20.	झारखंड	32966238	8645042	26.22

क्रम	राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश	जनसंख्या		कुल जनसंख्या में प्रतिशत
		कुल	आदिवासी	
21.	ओडिशा	41947358	9590756	22.86
22.	छत्तीसगढ़	25540196	7822902	30.63
23.	मध्यप्रदेश	72597565	15316784	21.09
24.	गुजरात	60439692	8917174	14.75
25.	दमन और दीव	242911	15363	6.32
26.	दादरा और नगर हवेली	342853	178564	52.08
27.	महाराष्ट्र	112372972	10510213	9.35
28.	आंध्रप्रदेश	84665533	5918073	6.98
29.	कर्णाटक	61130704	4248987	6.95
30.	गोवा	1457723	149275	10.24
31.	लक्षद्वीप	64429	61120	94.86
32.	केरल	33387677	484839	1.45
33.	तमिलनाडु	72138958	794697	1.1
34.	पांडिचेरी	1244464	0	0
35.	अंदमान–निकोबार	379944	28530	7.51
	भारत	**1210854977**	**104281034**	**8.61**

(संदर्भ : भारत की जनगणना, भारत 2011)

परिशिष्ट-3

गुजरात में जिला अनुसार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या (2011)

क्रम	जिले का नाम	जनसंख्या		कुल जनसंख्या में आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत
		कुल	आदिवासी	
1.	कच्छ	2092371	24228	1.16
2.	बनासकांठा	3120506	284155	9.11
3.	पाटण	1343734	13303	0.99
4.	महेसाणा	2035064	9392	0.46
5.	साबरकांठा	2428589	542156	22.32
6.	गांधीनगर	1391573	18204	1.31
7.	अहमदाबाद	7214225	89138	1.24
8.	सुरेन्द्रनगर	1756268	21453	1.22
9.	राजकोट	3804558	24017	0.63
10.	जामनगर	2160119	24187	1.12
11.	पोरबंदर	585449	13039	2.23
12.	जूनागढ़	2743082	55571	2.03
13.	अमरेली	1514190	7322	0.48
14.	भावनगर	2880365	9110	0.32
15.	आणंद	2092745	24824	1.19
16.	खेड़ा	2299885	40336	1.75
17.	पंचमहल	2390776	721604	30.18
18.	दाहोद	2127086	1580850	74.32
19.	वडोदरा	4165626	1149901	27.6

क्रम	जिले का नाम	जनसंख्या		कुल जनसंख्या में आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत
		कुल	आदिवासी	
20.	नर्मदा	590297	481392	81.55
21.	भरुच	1551019	488194	31.48
22.	डांग	228291	216073	94.65
23.	नवसारी	1329672	639659	48.11
24.	वलसाड	1705678	902794	52.93
25.	सूरत	6081322	856952	14.09
26.	तापी	807022	679320	84.18
	गुजरात	**6 0439692**	**8917174**	**14.75**

(संदर्भ : गुजरात की जनगणना, भारत 2011)